वार्तान्‌की सैद्धान्तिक संगति

(राणाव्यासकी वार्तासु अहंकारव्यवस्था)

गोस्वामी श्याम मनोहर

।। वार्तान्की सैद्धान्तिक संगति ।।

(राणाव्यासकी वार्तासु अहंकारव्यवस्था)

गोस्वामी श्याम मनोहर

प्रकाशक : गोस्वामी श्याम मनोहर
६३,स्वस्तिक सोसायटी
४था रास्ता, जुहुस्कीम्
विले-पार्ला, मुंबई ४०००५६

सहयोग प्रकाशन : १. पारिबहन भाटिया कांदिवली.
२. इना नवरंग शाह
१६१,आर्बोरिड्ज, डॉ.फोर्क रिवर, न्यूजर्सी.

प्रथमसंस्करण : नवविलास प्रारंभ, वि.सं.२०७६, ऑक्टोम्बर् सन् २०२०

प्रति : ६००

निःशुल्कवितरणार्थ

मुद्रक : पूर्वी प्रेस,
१, लोहनगर, गोंडल रोड,
राजकोट. ३६०००२.

सम्पादकीय

चौरासी वैष्णवन्‌की वार्तामें आते श्रीमहाप्रभुके वचनन्‌को तात्पर्य और निबन्ध प्रकरणादि ग्रन्थन्‌को तात्पर्य, इन दोनोंमें कैसी संगति और एकवाक्यता हे वाकु उजागर करवेके हेतुसु किये गये प्रवचनमालामेंसु 'श्रीराणा व्यासकी वार्ता'को प्रसंग सन् २०१७में किशनगढ़में श्रीश्याममनोहरजीके द्वारा व्याख्यायित भयो हतो.

सृष्टिलीलामें नीर-क्षीरवत् प्रकृति-पुरुषसु प्रसूत चेतना (अहंता)-जीवन (ममता)को घालमेल ब्रह्मकी अद्भुत लीला हे. या लीलात्मक घालमेलको, किन्तु नीरक्षीरको विवेक या संवाद न होवेके कारण जीवन अव्यवस्थित या दुःखादि सु ग्रस्त रहे हे.

हर चेतनकी प्रवृत्ति सामान्यरूपसु दुःखाभाव और सुख की प्राप्ति के हेतु होवे हे जो लौकिक धर्मार्थकाममोक्षरूप हे. वोही पुरुषार्थ यदि शास्त्राज्ञासु करे तो अलौकिक पुरुषार्थ हो जावे और अलौकिक पुरुषार्थ भक्तिभावसु करें तो भक्ति हो जावे.

अपने जीवन और चेतना के घालमेलकु कैसे व्यवस्थित करनो वाकु महाप्रभुजीके सिद्धान्तवचनन्‌सु विस्तारसु समझायो हे. ऐसे ही 'श्रीवल्लभसुखधाम'में प्रतिवर्ष होते पुष्टिविधानमके अन्तर्गत साधन-प्रकरणमें आये वचन "अहंकारं न कुर्वीत"के विवेचनमें 'अहंकारमीमांसा' समझाई हती, जो पुस्तकके रूपमें (दो खंडमें) उपलब्ध हैं.

श्रीराणा व्यासकी कथा अपन् सबकी कथा और व्यथा हे. यामें अहंकारको समुचित प्रयोग न होवेकी व्यथा हे. अहंकारको अनुपयोग और अनुचित उपयोग, ये दोनों छोरन्‌सु बचनो हे. जीवनके कोई भी परिप्रेक्ष्यमें अहंता-ममताको संवाद स्थापित होवे वा हेतुसु स्वमार्गीय

एवं स्वेतमार्गीय को या ग्रन्थको पठन अत्यन्त उपयोगी होयेगो ऐसी सद्भावनासु.

या ग्रन्थकु लिपिबद्ध श्रीअतुल्य शर्माजीने कियो हे. या ग्रन्थसम्पादनमें श्रीअनिल भाटियाका सहयोग अविस्मरणीय हे. आवरकपृष्ठ श्रीमतीख्याति भुल्ला ने बनायो हे. मुद्रणोपयोगी उत्तरदायित्व श्रीप्रवीण डढाणीया और श्रीपीयूष गोंधिया ने निर्वाह कियो हे. इन सभीके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करते हें. आर्थिक सहयोगके लिये पारिबहन भाटिया और श्रीमतीइना नवरंग शाह के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करते हें.

मनीषा-परेश शाह

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठक्रम
[१]	
उपक्रम	१
अहंमें अन्यको असमावेश	२
अहं-मम अन्योन्याश्रित	२
जीवन और अहंता-ममता के संवादकी आवश्यकता	६
जीवन और चेतना की अद्भुत घाल-मेल	८
अहंता-ममतारूप थीम् और वाके अनेक ऍपीसोड्	१२
घाल-मेलके कारण चाहतकी नासमझी	१३
चाहनाकी व्यवस्था : शास्त्रोक्त पुरुषार्थव्यवस्था	१५
अहं-ममको लौकिकधर्मरूप व्यापार	१६
अहं-ममको लौकिकअर्थरूप व्यापार	१७
अहं-ममको लौकिककामरूप व्यापार	२०
अहं-ममको लौकिकमोक्षरूप व्यापार	२१
अहं-ममकी अलौकिकपुरुषार्थरूपता	२२
अहं-ममको लौकिकभक्तिरूप व्यापार	२३
अहं-ममको विवेक : षोडशग्रंथ	२५
अहंकारकी विभिन्न अवस्था	२६
[२]	
द्रष्टा-दृश्यके भेदसु सुख-दुःख	२८
सुख-दुःखको कारण अहंता-ममता	२९
अहंता-ममताकी सीढ़ी = उपादान→गुणधर्म→व्यवहार	२९
ब्रह्मको स्वरूप	३१
उपादानरूप प्रकृति	३१
उपादानरूप पुरुष	३२
प्रकृति-पुरुषकी सहभागिता	३३

गुणधर्मरूप अहंता-ममता और वाकी अदोषता ३३
गुणदोषदर्शनकी दोषरूपता-अदोषरूपता ३६
अहंता-ममताकी गुणधर्मरूपता ४०
अहंता-ममताकी व्यवहाररूपता ४१
चेतना-जीवनके सन्दर्भमें गुण-दोषकी लुका-छिपी ४२
सुख-दु:खकी मॅनेज्मॅन्ट् : पुरुषार्थव्यवस्था ४२
अहंता-ममताकी दोषरूपता ४३
अहंता-ममताकी साधकता-बाधकता ४६
"पंडित तो जीत्यो" : गुणधर्मात्मक अहंकार ५३
"अहंकार मति करियो" : अहंकारको विकृत-अविकृत स्वरूप ५५
अहंता-ममताकी उत्तरोत्तर विकृति ५९
अनुपातको विवेक पोषकरूप और अविवेक मारकरूप ६०
अहंता-ममताके ब्राह्मिक विचारसु भक्तिमार्ग ६१

[३]

प्रश्नोत्तर ६५
अहंकारकी गुण-दोषरूपता ६५
सेवाभावकी अहंतासु सेवाधिकार ७१
दृढ़ताको गुण-दोष ७२
अहंताकी दृढ़ता-अदृढ़ता और दृढ़ताकी अहंरूपता-दीनता ७७
सिद्धान्तसंगत वार्ताविचन प्रमाण, सिद्धान्त-असंगत वचन अप्रमाण ८१
चतु:श्लोकी और वार्ताकी संगति ८६
राणाव्यासको आत्महत्याको प्रयास : नशीली अहंता ८९
चेतना-जीवनके घाल-मेलके कारण सुख-दु:खाभावकी समस्या ९२
आधिभौतिक पुरुषार्थ : व्यक्तिगत-सामाजिक धर्मादिको समन्वय ९३
सुख-दु:खको परिवर्तन आध्यात्मिक पुरुषार्थमें बुद्धिके कारण ९४
धर्मादिकी सुख-दु:खरूपता अपने मनोभावके कारण ९६
विवेकहीन धर्मपुरुषार्थ ९७
आधिदैविक धर्मादिमें आध्यात्मिक-आधिभौतिकधर्मादिको अन्तर्भाव ९९

आधिदैविक पुरुषार्थ : पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं १००

[४]

सिंहावलोकन १०३
गीतोक्त वचनसु चेतना-जीव-प्राण-अहंको समन्वित अर्थ १०४
मन-बुद्धि-अहंमें सोवे-जागवेकी प्रक्रिया १०९
जीवकी क्षरता, चेतनाकी अक्षरता ११२
क्षर-अक्षर-पुरुषोत्तम ११४
पुरुषोत्तमकी परिभाषा ११८
अक्षरब्रह्म : प्रकृति-पुरुष-काल-कर्म-स्वभाव ११८
महद् ब्रह्म १२०
प्रकृति-पुरुष/ चेतनाको स्वरूप १२२
महदात्मक अहंकार : चेतनाकी स्विच् १२४
अहंकारकी त्रिगुणात्मकता और व्यक्तिगत अहंकार १२७

[५]

धार्मिक अहंकार १२९
अहंकारकी स्पन्दितरूपता १३०
अहंकारकी पुरुषार्थरूपता १३०
अहंकारकी क्षुद्रता १३३
जगत्के संविधानमें काल-कर्मादिकी परस्पर निर्भरता १३५
अहंकारको पोषक-मारकरूप १३७

[६]

प्राकृतिक अहंकार साधक, अप्राकृतिक अहंकार बाधक १४१
अहंकारको अतिरोहितरूप १४३
प्राकृतिक और अप्राकृतिक अहंकारको रूप १४६
गुणधर्मात्मक अहंकारकी बहुरूपता १४८
प्राकृतिक अहंकारको सदुपयोग अनुपयोग दुरुपयोग १४९
औपादानिक अहंकार १५१
गुणधर्मात्मक अहंकार १५३

क्रियात्मक अहंकार १५६
स्वस्थ अहंकारके प्रबन्धकी प्रक्रिया १५७
दर्शन-कर्तव्योपदेशमें चित्रकलावत् दृष्टि १५८
कृष्णभक्तिके चित्रमें राधावेशात्मिका पृष्ठभूमि १६०
रति और कामना को भेद १६१
पुष्टिभक्तिको मूल आत्मरति/पुष्टिशक्ति १६२
अहंकारकी सन्तुष्टि : कामकी सन्तुष्टि १६४
भक्तिमार्गमें क्रियात्मक अहंकारकी साधकरूपता : शरणागति १६५
ज्ञानमार्गमें शरणागति बाधक १६७
अहंकारकी साधकताके पहेलु, सहयात्रीसहिष्णुता और
मार्गावलम्बन सु १६८
स्वाभाविक कर्ममूलक अहंकृति १७२
स्वाभाविक कर्मको योजन भगवदर्थ १७४

[७]

अस्वाभाविक कर्मकी दोषरूपता १७७
सदोष सहजकर्मकी महत्ता १७७
क्रियात्मक अहंकारको सदुपयोग भक्तिमार्गमें १८०
क्रियात्मक अहंकारको सदुपयोग ज्ञानमार्गमें १८१
मार्गानुरूप अहंकारकी साधकता-बाधकता १८२
अस्वाभाविक अहंकारकी कथा १८३
असहजकर्मसु सहज विगुणकर्मकी महत्ता १८५
कामभाव और रतिभाव को अन्तर १८९
अर्जुन-कृष्णको सम्बन्ध रतिभावमूलक १९१
पुष्टि-प्रवाह-मर्यादाभेद एवं वचनामृतकी महत्ता १९२
रतिकी विविधताके प्रसंग १९५
विषयासक्तिकु चेनलाइज़् करवेसु भगवदासक्ति १९७
पुष्टिसौरभ गैरपुष्टिमार्गीयनूमें सम्भव १९७
कृष्ण कोईकी मोनोपॉली सहन नहीं करे १९८

[८]

अहंकारके सहस्र परिप्रेक्ष्य २००
गीताके आधारपे अहंकारको परिप्रेक्ष्य २०१
अहंकारकी व्यवस्था और अव्यवस्था में श्रद्धाकी महत्ता २०५
अहंकारके अनुभवपे विश्वास-निष्ठाको भी प्रभाव २१२
सात्त्विक यज्ञसु अहंकारको डायल्यूशन् २१५
अहंता-ममताकी मिस्मॅनेज्मॅन्ट् राजसयज्ञसु २१६
तामस यज्ञके कारण अहंकारकी जड़रूपता २१९
असत्कर्म-अज्ञान-अरतिके कांटाको सत्कर्म-ज्ञान-रतिके
गीतोक्त कांटासु उपचार २२२
गीतोक्त उपचार तीन लॅवलसु
क-१ रथी-सारथीको संवाद २३१
क-२ गुरु-शिष्य संवाद २३४
क-३ युयुक्षु-योगेश्वर संवाद २३६
"यज्ञे तपसि दाने च...'सद्'इति..." : शास्त्रोक्त मार्ग
"कर्म चैव तदर्थीयं...'सद्'इति..." : योगेश्वर मार्ग २३७
अहंता-ममताके मॅनेजमॅन्ट्की प्रक्रिया गीतामें २४१

[९]

कपिलगीताकी महत्ता २४३
'सत्'को त्रिगुणातीत-त्रिगुणात्मक अर्थ २४५
त्रिगुणात्मक-कर्मकी त्रिगुणातीतता २४९
ब्रह्मकी त्रिगुणातीतता-त्रिगुणात्मकता २४९
क्रियारूप अहंकार कार्यरूप कर्तव्यरूप और कारणरूप भी २५१
त्रिविध अहंकारके शॉकॲब्जॉर्बर् - श्रद्धा एवं शास्त्रोक्त मार्ग २५३
अहंकारके परिज्ञाताको रूप २५५
ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता कु कर्मविधि २५६
कर्मसंग्रह त्रिविध, कर्ता-करण-कर्मसु २५८
विभक्तमें अविभक्तको ज्ञान=सात्त्विक ज्ञान २६१

अविभक्तकु भूलके केवल विभक्तज्ञान = राजस ज्ञान २६२
विभागमें एकको ही ज्ञान = तामस ज्ञान २६३
अहंकारको स्वास्थ्य : विभक्त-अविभक्त ज्ञानके विवेकसु २६४
सृष्टिरूप अंबोड़ामें प्रकृति क्रियाशक्ति - पुरुष ज्ञानशक्ति गूंथी भयी हे २६६
प्रत्यक्षको प्राधान्य २६७

[१०]

प्रत्यक्ष प्रामाण्यवादी २६९
कर्म-ज्ञानको व्यर्थ झगड़ा २७१
श्रीशंकराचार्यको मत-ब्रह्मप्राप्ति ज्ञानसु होवे, कर्मसु नहीं २७३
सिद्ध-साधन और साध्य - साधन को हेतु चेतना २७५
ज्ञान-ज्ञेय-परिज्ञाताके लिए विधि प्रसक्त २७६
गीतामें या ब्रह्मवादमें सिद्ध-साध्यको झगड़ा नहीं २७७
ब्रह्मवादी दृष्टि २७९
ज्ञान-क्रियाको परस्पर अन्तर्भाव २८१
क्रियात्मक अहंकारके तीन रूप : शान्त-घोर-मूढ़ २८३
अहंकारके कारण भक्तिकी मूढ़ता २८४
अहंकारकु शुद्ध करवेकी मर्यादामार्गीय प्रक्रिया २८४
तदर्थ कर्म समर्पण : सिद्धसाधन २८६
अहंकारकु भगवदर्थ बनावेकी पुष्टिमार्गीय प्रक्रिया २८८

[११]

अपनी शरणागति और समर्पण, सिद्ध-साधन ही हे २९२
अहंकारके रिफाइनमेंन्टकी प्रक्रिया समझावेके लिये चतुःश्लोकी २९५
श्रीशंकराचार्यको मत - कर्मसु ब्रह्मकी अप्राप्ति २९६
मीमांसकन्को कर्मवाद २९६
व्यासजीको कर्मसिद्धान्त २९७
जैनन्-बौद्धन्को कर्मसिद्धान्त २९७
ज्ञान-क्रियाशक्तिको ब्रह्ममें एकीभाव २९८
वैश्विकचेतना या ज्ञानशक्ति की स्वीकृति विज्ञानद्वारा २९९

हर क्रियामें ज्ञान, ज्ञानमें क्रिया छिपी हे ३०२
ब्रह्म कर्मरूप और ज्ञानरूप भी ३०३
अहंकारके शोधनकी प्रक्रिया ३०७
शरणागति और समर्पण सिद्धसाधन हे ३०८
शरणागति और समर्पण को स्वरूप ३०९
सेवामें सिद्ध - साध्यसाधन ३१२
ज्ञानमार्गमें सिद्ध - साध्यसाधन ३१२
नवधाभक्तिमें सिद्ध - साध्यसाधन ३१३
अहंता-ममताको स्वास्थ्य भक्तिके कारण ३१४

[१२]

अहंकारके विभिन्न प्रसंग राणाव्यासकी वार्तामें ३१७
महाप्रभुजीके उपदेश अपने अहंकार और ममकार कु
रिमोल्ड् करवेवाले ३२२

[१३]

पुष्टिसौरभ ३२५
उद्धरणतालिका ३३०

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ॥

श्रीराणाव्यासकी वार्ता

(अहंकारव्यवस्थाके विचारसु)

[१]

(उपक्रम)

या बखत अपने राणा व्यासकी वार्तामें आतो वचनामृत जामें आचार्यचरण आज्ञा करे हें **"पंडित तो जीते परंतु अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो सोई वस्तुको नाश होयगो."** हर वार्तकि ॲपीसोड् होवें. जैसे टी.वी.में सीरियल्के अलग-अलग ॲपीसोड् होवें ऐसे राणाव्यासकी वार्तकि ॲपीसोड् हें. याकी समस्या और वा समस्याके जो समाधान हें, वैसी अपनी भी समस्या हें और वाके समाधान भी वोही हें. ये कोई अकेले राणा व्यासकी समस्या नहीं हे और यामें जो भी कुछ समाधान आयो हे, वो अकेले राणा व्यासको समाधान नहीं हे, वो अपनो भी समाधान हे. ये वचनामृत समझा रह्यो हे के **"अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको करेगो वा वस्तुको नाश होयगो."**

(अहंमें अन्यको असमावेश)

अहंकार सिर्फ केवल व्यक्तिकु ही नहीं पर ये सब धर्मनकु भी तकलीफ देवे. बुद्ध भगवान्ने याही लिए अहंकारसु त्रस्त होके ये कह्यो के **"आत्माग्रहो महामोहो हीदमेव प्रतारणः"**

अहंकारके कई अर्थ हें. एक तो साइकोलॉजिकल् अहंकार हे के जा अहंकारकु अपन् अपने घमंडके रूपमें ले हें. वो एक दूसरो लेवल् हे अहंकारको. वाको एक ग्राउंड्-लेवल् हे, वो अलग हे. जैसे एक पेड़ खिले, वाको एक मिट्टीको लेवल् हुए हे. अहंकारको ग्राउंड्-लेवल् अपनी सेल्फ्-अवेअरनेस् हे. 'मैं हूँ' या बातकी खूबसूरती

ये हे के याको बहुवचन नहीं होवे. 'तू-तू तुम', 'तुम-वो वे'. ऐसे 'मैं-मैं' होवे ही नहीं हे. मैं और तुम होवे हे, मैं और वो होवे हे. 'तू' और 'मैं' को बहुवचन होवे हे 'हम'. पर 'मैं'को कोई बहुवचन नहीं होवे. 'मैं' हमेशा अकेलो ही रहे हे. ये वाके अकेले होवेकी बहोत बड़ी हकीकत हे. क्योंके वाकी प्रकृति ही या तरहकी हे के वो अकेलो हे. अपन् 'तुम'में देखें तो कितने लोग समा जायें. जितने भी आप यहाँ बैठे हो, उन सबकु मैं 'तुम' केह सकूँ. पर जब भी अपन् 'मैं' अथवा 'अहं' कहेंगे तब मेरे 'मैं'में कोई समावे नहीं हे. मेरे 'मैं'में सिर्फ मैं ही हूँ और कोई नहीं हे. सगो बाप बेटा वाइफ् भाई बहन नहीं. मेरे 'मैं'में कोई नहीं समावे. मेरो 'मैं' सबको असमावेशी हे. जामें कोईको समावेश नहीं होतो होय ऐसो अपनो अनुभव, वा अनुभवको नाम 'मैं'. 'तुम'के अनुभवमें बहोतन्को समावेश हो जाय. 'हम'के अनुभवमें भी बहोतन्को समावेश हो सके और 'वे'में भी बहोतन्को समावेश हो सके हे. पर जा बखत अपन् 'अहं' अथवा 'मैं' कहे हें वा बखत कोई औरको समावेश होवे ही नहीं हे. सबको असमावेश ही रहे हे.

ये जो वाको कॅरेक्टर् हे, वा कॅरेक्टर्की एक और खासियत हे के यदि अहंमें कोई औरको समावेश नहीं हो रह्यो हे, तो जिनको समावेश नहीं हो रह्यो हे, उनसु खुदकु अपनेकु अलग रखनो चहिये. बौद्ध धर्ममें भी ये ही बात हे के ''तुम हो ऐसो सोच रहे हो. वाके लिए तुमकु लगे के तुम्हारो कुछ हे. यदि तुम ऐसो सोचनो शुरु करो के मैं कुछ भी नहीं हूँ, तो तुमकु ऐसो लगवे लगेगो के मेरो भी कुछ नहीं हे.'' बुद्ध भगवान् कहे हें के 'मैं' नहीं है.

(अहं-मम अन्योन्याश्रित)

भगवान् ऐसे केह रहे हें पर यामें समझवेकी एक बात हे

के कोई भी बच्चा जाने जन्म लियो वाकु पहले 'अहं'की अनुभूति होवे के पहले 'मेरे'की अनुभूति होवे? आज अपने पास वाको कोई परफॅक्ट् रॅकार्ड नहीं हे के क्या अनुभूति होवे.

पर बच्चाको जा तरीकेको व्यवहार हे, जनमवेके बाद और जनमवेके पहले पेटमें, उन दोनों व्यवहारन्में कोई एक प्रकारकी मुग्धाकारता हे. मुग्धाकारताके अर्थको चित्र साफ नहीं हे के 'मैं' क्या हूँ? और 'मेरो क्या हे?' जनमवेके बाद भी वाको चित्र साफ नहीं हे. क्योंके सगी माँ भी यदि वाकु पाले नहीं और कोई और पाले तो वाको 'मेरो' बदल जाय. सगी माँ पाले तो माँके कारण बाप भी मेरो लगे, भाई नाना-नानी दादा-दादी सभी मेरे लगे. सबसु पहले माँके साथ बच्चाको 'मेरोपन' हावी होवे. क्योंके जानवेकी प्रक्रियामें सबसु पहले वो माँकु जाने. और लोग यदि माँके हें तो वे फिर मेरे भी हें. वा प्रकारकी ममता जगे हे. माँ जा घरमें रेह रही हे, वो घर भी मेरो हे. फिर तो सभी कुछ मेरो मेरो हो जाय. पर वा माँमें ममता जगी वाके कारण वा बच्चामें अहंता जगे हे, वाके कारण ममता जगे हे, याको साफ-साफ चित्र अभी नहीं स्पष्ट हो पायो हे. क्योंके मोह हे. कुछ 'अहं' हे और कुछ 'मेरो' हे. जो 'मैं हूँ' और जो 'मेरो' हे, वामें बहोत कन्फ्यूजन् हे. ये बचपनामें तो होवे ही हे और वाको अपनेकु पता कैसे चले? बच्चाके सामने अपन् हसते होंय तो बच्चा मुस्कुरावे लग जाय. बच्चाके सामने रोते होंय तो बच्चाकु कोई तकलीफ नहीं हे पर बच्चा रोवे लग जाय. कोईकु रोते देखके या हसते देखके वाकु रोनो या हसनो क्यों आ रह्यो हे? माँ वा बच्चाकु देखके मुस्कुरावे तो बच्चाके चेहरापे भी मुस्कुराहट आ जावे. मतलब बच्चा अपने 'मैं' होवेके अहसासमें अपनी सराउंडिंग्को अहसास समावेश करके चल रह्यो हे.

पर वैसे अपन् देखें तो 'अहं' कोईको समावेश नहीं करे

हे. पर ममताके अँगलसु जाने तो क्या क्या चीजको समावेश नहीं करे हे. जैसे बुद्ध भगवान् वाकी कहानीकु सरल समझ रहे हते के "अहंकु हटा दो तो मम मिट जायगो" ऐसो सरल ये हे नहीं. ऐसे ही कई वैराग्यवादी सोचें के 'मम'कु मिटा दो. वे अहंकु नहीं मिटावें, ममकु मिटा दें. घरकु परिवारकु बिज़नेसकु माँ-बापकु अपनो मत मानो. ममकु मिटाओ. ममकु मिटा दोगे तो अहं अपने आप कंट्रोलमें आ जायगो. पर मम मिटावेसु अहंपे कंट्रोल् आवे नहीं हे और न अहं मिटावेसु ममपे सारो कंट्रोल् आवे हे. क्योंके ये दोनों एक-दूसरेसु ऐसे घुल-मिल गये हें के इनकु छुट्टे करके देखनो खुद अपनेकु तकलीफ देवे हे तो दूसरो तो वाकु समझ ही नहीं सके हे. क्योंके दूसरेकु समझावेके लिए पहले अपनो अहं समझनो आवश्यक हे और अपनो अहम् अपने अलावा और कोईकु समझ नहीं आवे. सच्चाईसु 'मेरो-मैं' क्या हे, याकु मेरे अलावा कोई समझ ही नहीं सके हे. अनुमान करते रहो, कुछ कल्पना दौड़ाते रहो के 'मैं' ऐसो होयगो. अब कोई बातमें अपन् घमंड करें तो सबकु लगे के इनकु या बातको घमंड हे. पर बहोत सारे घमंडन्की कहानी ऐसी होवे हे के वाको घमंड एक दिखावेको मुखौटा होवे हे. असलमें वाके ममको विस्तार इतनो ज्यादा होवे, वो प्रकट नहीं करवे देनो चाहे. यालिए वो मुखौटा अहंको पहर ले हे के जासु सब डरे भये रहे. वाकी लाचारी वाको मम होवे हे क्योंके ममकी लाचारी नहीं होय तो अहंको ऐसो मुखौटा पहरवेकी आवश्यकता ही नहीं हे.

जैसे अपने यहाँ रावणके दस माथा कहे जायें. ऐसो क्यों? क्योंके अपने अहंकी दश इन्द्रिय हें, पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय. दस माथा तो अपने अहंके भी हें के जिन-जिनमें अपनो अहं प्रकट होवे के मैं देख रह्यो हूँ, मैं सुन रह्यो हूँ, मैं खा रह्यो हूँ, मैं छू रह्यो हूँ, मैं दौड़ रह्यो हूँ. ये रावणके जैसे दस माथा

हो गये. रावणकी तरह अपने भी दस माथा हें. या तरीकेके अपने दस माथामेंसु अपनो कौनसो माथा सच्चो? अपनकु कुछ पता नहीं हे क्योंके दसके दस माथा अपनेकु अपने ही लग रहे हें. ये अहंकी तकलीफ हे. याके कारण वो अहं कैसे ममम छुप जावे हे और मम कैसे अहंमें छिप्यो भयो रहे हे!

जैसे पहाड़नपे पेड़ उगें, पहाड़ तो ढलवा होवे, पेड़कु गिरनो चहिये पर पेड़ क्या चालाकी करे के जो पहाड़की मिट्टी जमा भई होय वामें पत्थरनकु भी फसाके रखे. मिट्टी पत्थरकु फसावे, पत्थर मिट्टीकु रोके. मिट्टी और पत्थर कु पेड़की जड़ रोके. यासु वो टेढो पेड़ भी गिरे नहीं हे और खड़ो रहे हे क्योंके सब एक-दूसरेमें फसके खड़े भये हें. जब बरसात आयी और मिट्टीकी अच्छी धुलाई भयी, तो सबसु पहले वो मिट्टी जाने पत्थरकु पकड़के रख्यो हे, वो पत्थर सरके. पत्थर सरके तो मिट्टी ढीली होके और अधिक बहे. अब पेड़की जड़कु पकड़वेके लिए कुछ मिले नहीं हे तो वो गिर जावे. पर जब सब एक-दूसरेकु पकड़के खड़े भये हें तो काफी झुके होवेके बावजूद वे खड़े रहें, ये वाकी खूबसूरती हे. मैदानी पेड़की कथा तो अपन् समझ सके हें के क्यों खड़ो हे. क्योंके वाकु गिरावेवालो तो कोई तत्त्व हे नहीं. पहाड़के पेड़के गिरवेके सारे चान्स् हें और जाकी गिरवेकी सारी तैयारी हे, वो खड़ो एक-दूसरेके सहारे रहे हे. जैसे कमान एक-दूसरेके सहारे खड़ी रहे हे. या बाजुकी झुके तो ये रोकके रखे. वा बाजुकी झुके तो वो रोकके रखे. दोनों एक-दूसरेकु रोकके रखें तो दोनों टिकी रहे हें. या तरहसु अपनी अहंता, अपनी ममतापे टिकी भयी हे और अपनी ममता अपनी अहंतापे टिकी भयी हे. दोनों अन्योन्याश्रित होके जी रहे हें. यामें कोई भी ऐसो दावा नहीं कर सके के अहंताकु कंट्रोल्में ले लो तो ममता कंट्रोल्में आ जायगी. बहोत सारे ममता छोड़-छोड़के चले जायें पर उनकी ममता कंट्रोल्में नहीं आवे हे. बहोत अहंता

छोड़ देवे हें, उनकी अहंता कंट्रोलूमें नहीं आवे हे क्योंके ममता अहंतापे अन्योन्याश्रित टिकी भयी रहे हे.

(जीवन और अहंता-ममता के संवादकी आवश्यकता)

हर जीवकी अपनी निजी ज़िंदगीमें या फॅमिली-लाइफ्में या सोशियल्-लाइफमें या पॉलिटिकल्-लाइफ्में या स्पिरिच्युअल्-लाइफ्में भी ये अहंता-ममताको एक-दूसरेपे टिकके जीनेको जो कॅरेक्टर् हे, वा कॅरेक्टर्के साथ अपनो जब-तक संवाद नहीं होवे, तब-तक अपन् धर्मको कोई भी प्रोग्राम्; चाहे वो कर्मको होय, ज्ञानको होय, भक्तिको होय, वैराग्यको होय, ध्यानको होय, संन्यासको होय, अपन् ठीक तरहसु कर नहीं पावें. जब-तक अपन् अपनी अहंता-ममताकु ठीकसु नहीं सवारें, तब-तक वो ठीक तरहसु निभ नहीं पायगी क्योंकि जो भी अपन् साधना कर रहे हें, वो करेंगे काहेसु ?

सबसु पहले अपनकु अहंता होनी चहिये के कौनसी साधना मोकु करनी हे. कौन बतायगो आपकु के कौनसी साधना आपकु करनी हे? समझो के कोई बड़ेनूने बता दी, दो-चार लप्पड़ भी लगा दी, ''चलो! तुम्हारो ये ही कर्तव्य हे, ये ही धर्म हे.'' अब बड़ेन्की थप्पड़ खाके अपन् कोई धर्मकु अपनो धर्म मान भी लें पर वामें भी ममता अपनेकु ठग रही हे क्योंके बडेनूकु अपनूने अपनो मान्यो, करके अपन् वा थप्पड़कु अपनो धर्म-निर्णय कहे हें. कभी अपनकु बैठे-बिठाये अपनो निर्णय हो जातो होवे के ''मैं ये हूँ.'' वासु अपन् अपने धर्मको निर्णय करें. कोई बखत धर्मके निर्णयसु अपने अहंको निर्णय होवे. कोई बखत अहंके निर्णयसु अपने धर्मको निर्णय होवे. जैसे जो अनिश्चियकी अवस्था बच्चाकु होवे के ''मैं कौन और मेरी माँ कौन?'' कोई भी बच्चाके सामने दुःखसु थोड़ो मोंह बिगाड़ो, बच्चाकु कुछ भी नहीं पता हे के मोंहको दुःखके साथ क्या सम्बन्ध हे. पर तुम ऐसो करो तो बच्चा थोड़ी देरमें

रोनो चालू कर दे हे. क्या सुख तुमकु हो रह्यो हे के जाके कारण तुम हस रहे हो, बच्चाकु कुछ भी नहीं पता होवे. खाली वाके सामने मुस्कराओ तो बच्चा भी मुस्करावे लगेगो. तो बच्चाके अहं और वाके मम में कोई वॉटर्‌टाइट् कम्पार्टमँट् होवे नहीं हे. बच्चाके अहम् और मम एक-दूसरेमें घुले-मिले होवे हें.

ये जो घाल-मेल हे 'मैं' और 'मेरे' की, ये अपने जीवनके हर पहलुमें काम कर रही हे. अच्छे या बुरे अथवा न अच्छे न बुरे. कोई भी ये दावा नहीं कर सके हे के ये घाल-मेल नहीं हे! एक सामान्य बात बताऊँ के जैसे कोई कहे "तुम लोग अहंकारी हो, मोकु कोई अहंकार नहीं हे." अरे ये केहनो क्या कोई कम बड़ो अहंकार हे! यासु बड़ो अहंकार क्या होयगो? कैसे छिप्यो भयो रहे हे अहंकार, ये अपन् देख सके हें. कोई बखत ये अहंकार अपनी ममतामें छिप जावे हे और कोई बखत अपनी ममता अपने अहंकारमें छिप जावे हे. दरअसल जहांसु मार लगे, वहांसु छिटकके आदमी दूसरी जगह छिप जाय हे. अहंकु मार लगे तो अपनी अहंता, ममतामें छिप जाय और ममताकु मार लगे तो ममता आके अहंतामें छिप जाये. ये आखो चक्कर हे. ये चक्करकु अपन् समझें तो अपनेकु लगे के राणा व्यासकी वार्ताको ॲपीसोड कुछ अलग हे पर स्टोरी तो अपनी ही हे. राणा व्यासकी अकेलेकी नहीं हे. वो हर प्राणी मात्रकी कहानी हे. हर जीवकी अब चाहे वो पुष्टिमार्गी होय, मर्यादामार्गी होय, प्रवाहमार्गी होय, नीतिमार्गी होय, चाहे अनीतिमार्गी होय, चाहे प्रेमी होय, चाहे ज्ञानी होय, चाहे कर्मठ होय. अपन् सबकी स्टोरी तो ये ही हे के जा स्टोरीके घटनाक्रमपे अपनी चले भी हे और नहीं भी चले. जैसे नदीमें बहोत प्रवाह आ गयो तो जो आदमी नदीमें पड्यो होय हे, वो बहनो शुरु करे. बहते भये भी प्रवाहकी दिशामें कोई किनाराकी तरफ बहनो और जाके बचनो वो बात जुदी हे क्योंके बहवेवालेकु भी थोड़ी

फॅसिलीटी होवे ही हे. सीधो बहके प्रवाहमें तिरछो काट-काटके बहतो रहे और धीरे-धीरे किनाराकी तरफ जावे तो वो बच सके हे. प्रवाह बहा भी सके हे. प्रवाहको जो अपनो वेग और वा वेगके साथ मुकाबला करवेको अपनो पुरुषार्थ, वाको योग अपनेकु बचावे हे या डुबावे हे. यदि प्रवाहको वेग ज्यादा हे और बचवेके पुरुषार्थको वेग कम हे तो बह सको, मर सको हो. पर यदि बचवेको पुरुषार्थ वेगसु थोड़ो अधिक हे तो वामें बचवेके चान्स् पैदा हो जावे हे. वा प्रवाहमें अपन् बहते भी रहेंगे पर अपने थोड़े पुरुषार्थसु थोड़े तिरछे हाथ चलाके किनाराकी तरफ चले तो बच सके हें. इतनो तो अपनेकु अपने पुरुषार्थ और अपनेपे पड़ते प्रभाव में छूट मिले हे. कुछ प्रवाहको प्रभाव पड़ रह्यो हे जामें अपन् लाचार हें. कुछ अपनो पुरुषार्थ भी अपन् कर सके हें, जामें अपनी लाचारी नहीं हे. उन दोनोंन्को योग बराबर मिलनो चहिये. जैसे वर-वधूकी कुंडली मिलाई जाय, ऐसे पुरुषार्थकी और प्रभावकी कुंडली मिलाओ तो दशा अच्छी शुरु होवे और कुंडली नहीं मिले तो दशा मंगल या राहु की लागू हो जाय.

(जीवन और चेतना की अद्‌भुत घाल-मेल)

ये हकीकत न आत्माकी हे, न मुर्दाकी हे अपितु जीवनकी हकीकत हे. जीवनकी हकीकतको अर्थ क्या? जामें कोई आत्मा, देहमें हे और देह कोई आत्माकी तरह काम कर रह्यो हे, वो जीवन हे. जहाँ देह और आत्मा छुट्टे पड़े तो न कोई आत्माको जीवन हे और न कोई देहको जीवन हे. जीवनकी हकीकतमें या तरहको घाल-मेल हे. कैसो घाल-मेल हे? एक अपनी चेतना हे और एक अपनो जीवन हे. बहोत सारी चेतनाएं ऐसी हो सके हें के जामें जीवन नहीं हे पर चेतना हे. जैसे कॉमामें कोई आदमी होय तो वामें जीवन तो हे पर चेतना नहीं हे. जैसे अपन् सी.सी.टी.वी. कॅमराकु देखें तो इनमें चेतना तो हे. अपन् आवें तो अपनो फोटो

पाड़ ले, वाकु संभालके रखे, दिखानो होय तो दिखा भी दे. तो चेतना तो हे पर जीवन नहीं हे. कहीं चेतना हे तो जीवन नहीं हे, कहीं जीवन हे तो चेतना नहीं हे. मनुष्य जैसे जो अन्य प्राणी हें उनके साथ चेतना और जीवन को आपसमें घाल-मेल हो गयो हे. जब ये घालमेल हो गयो तो स्वभावसु अपनेकु लगे के जीवन मेरो हे, यदि चेतनाके अँगलसु जीवनकु देखें तो ये लगे के ये मेरो जीवन हे और जीवनके अँगलसु देखें तो लगे के चेतना मेरी हे. अब ध्यानसु सोचो के यामें 'मैं' कौन? यदि चेतना भी मेरी और जीवन भी मेरो तो फिर 'मैं' कौन? चेतना और जीवन कु छुट्टो कर दियो तो 'मैं कौन?' ये बताओ. अब दोनों 'मेरे' ही हो गये. यामें 'मैं' कहाँ है? हे के नहीं साइकोलॉजिकल् कन्फ्यूजन्! पर समझवेकी बात ये हे के दोनों 'मेरे'में 'मैं' तो पाछो छिप्यो भयो हे. और वो कौनसो मैं? चेतनाके 'मेरे' होवेमें जीवनको 'मैं' छिप्यो भयो हे और जीवनके 'मेरे' होवेमें चेतनाको 'मैं' छिप्यो भयो हे. तभी तो ये हो सके हे. नहीं तो अपन् दो बात एक साथ कैसे केह सके हें! यदि अपन् चेतनाकु 'मैं' मानते होंय और जीवनकु 'मेरो' मानते होंय तो तो बात साफ हे. एक बखत अपन् कहे के 'चेतना मेरी' तो फिर चेतना 'मैं' नहीं रेह जायगी. या दूसरी बाजु अपन् कहे के 'जीवन मेरो' तो जीवन भी 'मैं' नहीं रेह गयो. पर दोनोंमें मैं और मेरे छिपे भये हें. नहीं छिपे होंय तो ये घाल-मेल हो ही नहीं सके. ये जो घाल-मेल हो रही हे, ये बड़ी अद्भुत घाल-मेल हे.

और याकु अपने यहां गीतामें भगवान्ने, कपिलगीतामें कपिल ऋषिने या घालमेलकु स्पष्ट कियो हे. वाकु अपने महाप्रभुजी यों समझावें के चेतना मूलमें जीवन नहीं हे. वो एक अलग वस्तु हे. जैसे सी.सी.टी.वी. कॅमेरामें चेतना हे पर जीवन नहीं हे. सो चेतना मूलमें जीवन नहीं हे. और जाकु जीवन अपन् मूलमें केह

रहे हैं, वो क्या हे? सांस लेनो-छोड़नो जागनो-सोनो खानो-पढ़नो, बच्चा पैदा करनो ये सब जीवन हे. ये चेतनाको व्यापार नहीं हे. ये सब जीवनको व्यापार हे. जीवन हे तो ये सब होयगो. चेतनाके साथ ये सब व्यापार नहीं चल रहे हैं. पर जीवन और चेतना में घाल-मेल हे, यासु अपन् अपने आपकु देखें तो लगे के जीवन और चेतना एक चीज हे, दो चीज नहीं हैं. डिवाइड् करके देखें तो ही समझमें आ सके, जैसे डीप्-कॉमामें गयो भयो व्यक्ति, वहाँ जीवन हे पर चेतना नहीं हे. जैसे सी.सी.टी.वी. कॅमेरामें चेतना हे पर जीवन नहीं हे. जब-तक याकु डिवाइड् नहीं करे और जो घाल-मेल दिखलाई दे रही हे, वाकु ही अपन् निरखते रहें तो समझमें आनो मुश्किल हे के दोनोंन्में भेद क्या हे! क्योंके अपन् तो भेदके उदाहरण हें नहीं, अपन् तो घाल-मेलके ही उदाहरण हें. जाकु पुराने जमानामें नीर-क्षीर विवेक कहते हते. हंस-कछुवाकी जीभमें या तरीकेकी ताकत होवे के पानीमें दूध डालो तो पानीमेंसु दूध पी सके. यदि पानीमें दूध हे तो अपन् वाको प्रभेद नहीं कर सकें. अपने लिए वो फिर घाल-मेल ही हो जाय. तो अपनी चेतना जामें अपनी अहंता बोल रही हे, वामें जीवनकी कुछ ममता छिपी भयी हे और जीवनकी जो ममता हे वामें अपनी कुछ अहंता छिपी भयी हे. यासु हर व्यक्तिकु अपने जीवनके क्रिया-कलापको कुछ न कुछ तो अहंकार रहे रहे और रहे ही हे. लोकमें रहे ऐसे ही नहीं, शास्त्रमें भी रहे हे. जैसे भगवान्ने अर्जुनकु बतायो के गुरु होय, पिता होय के कोई भी होय पर आततायी बनके अपने जीवनकु खतम करवे आतो होय तो तु मार. कोई भी जीवित व्यक्ति दूसरे व्यक्तिकु आततायी बनवेको अधिकार नहीं दे सके हे. ''गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतं आततायिनम् आयान्तं हन्यादेव अविचारयन्'' (मनु.स्मृ.८।३५०) गुरु होय के पिता होय पर यदि मेरे जीवनकु खतम करवे आयो हे तो मोकु पूरो अधिकार हे वाकु मारवेको. वरना मोकु अधिकार नहीं हे कोईके जीवनकु खतम करवेको.

क्योंके 'आततायी' मतलब कईअन्के और मेरे भी जीवनकु खतम करवेवालो.

मेरे जीवनकु खतम करवेको अधिकार तो शास्त्रके हिसाबसु मोकु भी नहीं हे तो दूसरेको अधिकार मैं कैसे मान्य करूँ! कोईके भी जीवनकु खतम करवेको अधिकार तो कोईकु नहीं हे. मेरो जीवन तो मेरो हे पर यदि आत्महत्या करूँ तो शास्त्रके हिसाबसु वाको सूतक भी नहीं पालनो. क्यों नहीं पालनो? क्योंके सूतक वाको पाल्यो जाय हे जो मेरो हे. ये व्यक्ति तो ऐसो हे के जाकु स्वयंके साथ मेरोपन नहीं हे तो वाके साथ अपनो मेरोपन कैसे काम आयगो? यदि अपन् मेरोपन रख रहे हैं के ये आत्महत्या करवेवालो मेरो हे, पर वासु तो पूछो के वो स्वयंकु अपनो मान रह्यो हे? यदि वो मानतो होय के वो तुम्हारो हे, तो ये सोचके वाकु आत्महत्या नहीं करनी चहिये हती. वाकु सोचनो चहिये हतो के "मैं मेरो नहीं हूँ पर कोईको तो मैं हूँ. यदि मैं कोईको हूँ तो कोईसु पूछे बिना आत्महत्या करवेको अधिकार कहांसु मेरो हे?" यासु शास्त्र यों कहे हे के जो आत्महत्या करे वाको तो सूतक भी नहीं पालनो. पालो तो छू जाओ. आनन्दसु सेवा भी कर सको हो. पर यदि तुम सूतक पाल रहे हो तो तुम छू गये. अब पाछी शुद्धि करनी क्योंके जाने आत्महत्या करी वाको सूतक क्यों पाल्यो? सूतक तो पाल्यो जाय के जो मेरो हे वाको. वो तो तुमकु मान नहीं रह्यो हे. वो तो खुदके जीवनकु भी खुदको नहीं मान रह्यो हे तो तुमकु कैसे अपनो मानेगो!

जब वो तुमकु अपनो नहीं मान रह्यो हे तो तुमकु वाकु अपनो मानवेको अधिकार नहीं हे. क्योंके 'मेरो' कहांसु आवे? बात ध्यानसु समझोके एक रावणको मेरोपन हे के 'सीता मेरी हे' और एक रामको मेरोपन हे के 'सीता मेरी हे'. कौनको मेरोपन सच्चो

और कौनको खोटो. राम और रावण की कथाको चित्रण दूसरी बात हे पर सीधीसी बात यामें ये हे के राम यदि सीताकु 'मेरी' केह रह्यो हे तो सीता भी तो रामकु 'मेरो' केह रही हे. दोनों एक-दूसरेकु 'मेरो' कहते होंय तो ही तो एक-दूसरेके हें. रावण सीताकु 'मेरी' तो मान रह्यो हे पर सीता तो वाकु मेरो नहीं मान रही हे. जब वो नहीं मान रही हे तो सीता रावणकी कैसे हो सके? 'मेरो' सम्बन्ध आपसी सम्बन्ध ही होय हे. कोई सम्बन्ध इकतरफा सम्बन्ध हो नहीं सके. बैठे-बिठाये मैं आपसु सम्बन्ध कर लऊँ के आपको सब पैसा मेरो, मतलब रावण. अरे आप अपनो मानके दो तो मेरो, नहीं दो तो आपको. मैं नहीं दऊँ तो मेरो. बैठे-बिठाये अपन् कोईकु केह दें के ये घर तो बहोत अच्छो हे, आजसु ये मेरो. अरे! ऐसे केसे हो जायगो मेरो! हमकु एक न्यूजर्सीके वैष्णवने बतायो के वाके घर बालक उतरे. घर बहोत अच्छो हतो तो दो दिन वहां रहके बालकने आज्ञा कर दी के "अब ये घर तो मेरो हे, अब तुम जाओ यहांसु" अरे! घर ऐसे कैसे तुम्हारो हो गयो. दो दिन तुमकु उतरवेके लिए दियो हतो. कल तो तुम स्टेशनकु केह दोगे के मेरो, एअरपोर्टकु केह दोगे के मेरो. कहीं एअरपोर्टकु कहवेसु वो मेरो हो सके! इकतरफा सम्बन्ध रावण हे. दुतरफा सम्बन्धमें राम आवे. जब कोई तुमकु 'मेरो' मान रह्यो हे तो तुम वाके हो और वो तुम्हारो हे. जब कोई तुमकु अपनो नहीं मान रह्यो हे, तुमने बैठे बिठाये वाकु कैसे अपनो मान लियो! ये तो रावणपनो हो गयो. आजकी भाषामें कहे तो दादागिरी, गुंडागिरी, ऐसे रावणगिरी. एक रामगिरी हे.

(अहंता-ममतारूप थीम् और वाके अनेक ॲपीसोड्)

अहंता-ममताको या तरीकेको घाल-मेल हे. ये घाल-मेल राणा व्यासके जीवनकी ही कथा हे, ऐसो नहीं हे. वो हरेक जीवनकी कथा हे. यामें ॲपीसोड् अलग हो सकें. अपने ॲपीसोड् तो अपन्

ही जानें, दूसरो कोई जान नहीं सके. जब-तक अपनी कोई वार्ता लिखे नहीं तब-तक कोई कैसे जान सके, अपने ऍपीसोड् क्या हे? ऍपीसोड् अलग हो सके पर वाकी थीम् एक ही हे.

जैसे ''सास भी कभी बहु थी''के असंख्य ऍपीसोड् होते जायें. हीरो मर-मरके जिंदा हो जातो. ऐसे ही इन ऍपीसोड्में कौन मर्यो भयो जिंदो हो जाय और कौन जिंदो यामें मर जाय, वाकी कोई गॅरेन्टी नहीं. मैं बहोत जनरल टर्म्‌में बात कर रह्यो हूँ, आपकु आइडिया देवेके लिए. मरे भये जिंदे हो रहे हें मतलब कोईकी मरी भई अहंता जिंदी हो जा रही हे. कोईकी मरी भयी ममता पाछी जिंदी हो जा रही हे. ये ''मैं और मेरे''की तकलीफ हे, वाके ऍपीसोड् बहोत हें. वामेंसु एक मीठो ऍपीसोड् राणा व्यासको हे. वा ऍपीसोड्पे जावेसु पहले वाके थीम्‌कु अच्छी तरहसु समझ लेनो बहोत जरूरी हे. वा थीम्‌कु समझवेके लिए एक बात और ध्यानमें रखनी जरूरी हे. ये अपनी अहंता और ममता की घाल-मेल हे अपनी चेतना और अपने जीवन में. या घाल-मेलके कारण अपन् क्या चाह रहे हें और क्या चीजकु नहीं चाह रहे हें वाको कच्चो चिट्ठा अपने पास भी नहीं हे. क्यों? क्योंके अहंताके लेवल्‌पे अपन् कोई चीजकु नहीं चाहे हें, पाछी ममता वहाँ जुड़ जावे हे. ममताके लेवल्‌पे अपन् कोई चीजकु चाहते भी होवे पर अहंता वामें आड़े आ जावे. याकी बहोत सारी वॅराइटी हो सकें. ये जो वॅराइटी बन रही हें, वामें अपनकु कोई पूछे के ''तुम क्या चाह रहे हो?'' तो अपनकु केहनो भी मुश्किल हो जाय के सचमुचमें अपन् क्या चाह रहे हें.

(घाल-मेलके कारण चाहतकी नासमझी)

मैं अक्सर एक बात मजाकमें करतो होऊँ के अपन् भगवान्‌कु कितनो चाहें पर समझो के भगवान् अभी प्रकट हो जायें और

कहे के “चले हे तू मेरे साथ!” तो अपन् कहेंगे के “अरे, आपकु कोई और लेके जावेके लिए नहीं मिल्यो, मैं ही मिल्यो!” तो तुम चाह रहे हो के नहीं चाह रहे हो, खुलासा कैसे करनो याको. एक लेवल्पे केह रहे हें के हम चाह रहे हें भगवान्कु. पर समझो के भगवान् धांधल करे तो तो लेनेके देने पड़ जायेंगे. महाराज! भक्ति करवे गये और वो गुजरातीमें कहावत हे के *होम करता हाथ दाज्या.* होम करवे गये और हाथ जलाके बैठ गये. यदि भगवान् जल्दी लेवे आ जायें तो भक्ति नदारद हो जायगी. अपन् चाह भी रहे हें और केह नहीं पावें के नहीं चाह रहे हें. प्रकट हो जायें भगवान् तो तो केहनो ही पड़ेगो के “भगवान् अभी थोड़ी जल्दी हे. इतनी जल्दी नहीं.” ऐसी तो कौन संयुक्ता होयगी के पृथ्वीराज अपहरण करवे आयो और वो हो जाये. जब भगवान् अपनो अपहरण करवे आ रह्यो हे के “चल तोसु संसारमें नहीं रह्यो जा रह्यो हे तो चल मेरे साथ.” तो अब क्या करनो? क्या अपनी चेतना अथवा जीवन अपहरण होनो चाह रह्यो हे? नहीं. चाह रह्यो हे के नहीं चाह रह्यो, बहोत मुश्किल हे केहनो क्योंके ये सब घाल-मेल हे. अपनेकु ये नहीं पता हे के ‘मैं कौन हूँ.’ मेरो क्या हे? मैं क्या चाह रह्यो हूँ और क्या नहीं चाह रह्यो हूँ, वाको निर्णय हो पानो बहोत टेढी खीर हे.

जितनो अपन् समझे हें, उतनो सरल ये विषय हे नहीं. यहाँ तो पता नहीं हे पर मैं मुम्बईमें देखूँ के माँ-बापको लहू पी-पीके कॉलेजन्में डोनेशन् दे-देके बच्चाएं एडमिशन् लेवें. एडमिशन् मिलवेके बाद क्लास् अटेंड् नहीं करें. बाहर आके दोस्तन्के साथ गपशप करते रहे हें. तो चाह क्या रहे हें पता नहीं चले. अपन् बच्चान्सु पूछवे जायें तो वे भी नहीं बता पायेंगे. पढ़नो चाह रहे हो के अच्छी कॉलेज्में एडमिशन् लेवेको ईगो सॅटिस्फॅक्शन् चाह रहे हो! जब एडमिशन् लेनो हे तो माँ-बापकु जितनो ऐंठो जा सके, ऐंठके

एडमिशन् ले लें. पढ़वेकी बात जब आवे तो पाछो पढ़नो नहीं हे, मटरगश्ती करनी हे. अपन् समझ सके के अपन् क्या चाह रहे हैं, क्या नहीं चाह रहे हैं, वो स्वयंकु नहीं पता हे. खाली बच्चानकी स्थिति हे, ऐसो नहीं हे. हिन्दुकी, मुसलमानकी, ईसाईकी, पुष्टिमार्गकी, हम हवेली चलावेवाले महाराजन्की, तुम हवेलीमें भटकनेवालेन्की वही स्थिति हे. कुछ भी कर रहे हैं, कुछ भी चाह रहे हैं. जा वस्तुकी तत्कालमें जरूरत हो जाय बस वाकु चाह रहे हें. एक टॅम्पोरेरी ॲडहोक् ॲड्जस्टमॅंट् अपन् कर रहे हैं. तत्कालमें जाकी जरूरत हे वाकु चाह रहे हें. बाकी भविष्यमें जाकी जरूर होयगी वो देखी जायगी. अभी तो चलवे दो गाड़ी, जैसी चल रही हे. ये सबकी कथा हे. या कथाको प्रतिनिधि चरित्र राणा व्यास हे.

(चाहनाकी व्यवस्था : शास्त्रोक्त पुरुषार्थव्यवस्था)

यासु अपनी चाहनाके लेवलकु शास्त्रकारन्ने कई तरहसु क्लासिफाई कियो. हर प्राणीकु प्राईमरी लेवल्पे तो कुछ सुख चहिये और जो दुःख होय वो थोड़ो मिटनो चहिये. यासु अधिक प्राणीकु क्या चहिये? बच्चा भी जब कपड़ा गीलो कर दे तो वाकु दुःख होवे या लिए वो रोवे. वाके कपड़ा बदल दिये तो वो खुश हो जाय.

अभी हम अहमदाबादसु अजमेर आ रहे हते. रातकु बच्चा अपर बर्थपेसु नीचे गिर्यो. धूम-धड़ाक खूब आवाज़ आयी. दस-पंद्रह मिनिट रोयो इतनी देर घबराहट रही. पाछो सो गयो. सुबह तो पाछो हस-हसके बात कर रह्यो हतो. अपन् तत्काल निश्चय सुखकी तरफ हाथ करके लपलपाते होवे हें. जहाँ भी दुःखको सामना करनो पड़े तो वासु पीठ मोड़के भागनो चाहते होवे हें. इन सुख और दुःखाभाव की शास्त्रने और विस्तृत विवेचना करी. क्यों ये सुख और दुःख हो रहे हें? क्यों अपनेकु सुख हो रहे हें और क्यों अपने दुःख मिट नहीं रहे हें, वाकी कारण-मीमांसा करो. कारण-मीमांसा

करवेपे ये बात ख्यालमें आयी के सुख-दुःख अपने आपमें होवे नहीं हे, याके कुछ कारण हे जाके कारण सुख-दुःख हो रह्यो हे. इन कारणनकु यदि अपन् नहीं मिटावें तब तक ये सुख-दुःखाभाव अपनो हासिल नहीं हो सके. वो कारण क्या हे? जब याकी खोज-बीन शुरु भई, तो शास्त्रकारन्ने नक्की कियो के इन पुरुषार्थन्की व्यवस्था करो के धर्म क्या हे, अर्थ क्या हे, काम क्या हे और मोक्ष क्या हे.

(अहं-ममको लौकिकधर्मरूप व्यापार)

आज अपन् धर्मको मतलब ये समझ रहे हें के हिन्दुधर्म मुसलमानधर्म ईसाईधर्म इत्यादि. शास्त्रमें '**धर्म**'को मतलब धारण कर सकते हो वो धर्म हे. "**धारणाद् इति धर्मः**", "**धर्मः धारयते इति**" जा चीजकु आप धारण नहीं कर पा रहे हो, आपकु ये वहम हो सके के ये मेरो धर्म हे, पर धर्मकु ये वहम नहीं हे के आप धार्मिक हो. अब आप वहम पालके जीते हो तो जीयो भले. यालिए महाप्रभुजीने आज्ञा करी के "**स्वाधिकारानुसारेण मार्गः त्रेधा फलाय हि, निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया**" (त.दी.नि.१।१८) जा अधिकारसु जा कामकु अपन् धारण कर रहे हें तो अपनी वहाँ निष्ठा प्रकट हो रही हे. यदि निष्ठा प्रकट हो रही हे तो कोई भी साधना फलवाली हे. कोई चीजकु तुम कर रहे हो और वामें आपकी निष्ठा नहीं प्रकट हो रही हे, तो वाको फल मिलनो मुश्किल हे.

मैं अक्सर मजाकमें एक बात केहतो होऊँ के समझो के डाइबिटीज् हो गयी हे और डाइबिटीज्की गोलीकु यदि अपन् रसगुल्लाकी चाशनीमें खाएं तो डाइबिटीज् बढ़ेगी के मिटेगी! यदि अपन् वा गोलीकु बिना चाशनीके ले ही नहीं पा रहे हें तो ये तो नक्की हे के वो गोली लेनो आपको धर्म तो नहीं हे. आपको धर्म स्पष्ट हो गयो के आपकु चाशनी भा रही हे और आप चाशनीके ही अधिकारी

हो. चाशनीमें पैदा भये, चाशनीमें जीओगे और चाशनीमें मर जाओगे. बात मजाकके तौरपे केह रह्यो हूँ पर वाको अर्थ बहोत गंभीर हे.

जाकु धारण करवेकी अपनी क्षमता नहीं हे, अच्छी बात हो सके हे, सच्ची बात भी हो सके हे. अच्छी और सच्ची हे, वाको अर्थ ये नहीं हे के वाकु अपन् धारण कर सकें. अपन् धारण नहीं कर सक रहे हें तो होयगी कोईके लिए अच्छी और सच्ची पर अपने लिए तो न वो अच्छी हे और न वो सच्ची हे. अपने लिए तो वो ही अच्छी बात हे के जाकु अपन् धारण कर रहे हें. जूता कौनसो अच्छो? जो अपने पैरमें बैठे वो के जो बहोत महंगो हे पर पैरमें बैठ नहीं रह्यो हे वो? जो जूता पैरमें ही नहीं बैठ रह्यो होय, वो कितनो भी फिर कीमती होय अपनो नहीं हे. ऐसे ही जा ड्युटीकु तुम धारण कर नहीं सक रहे हो, वो ड्युटी तुम्हारी हो नहीं सके हे. धर्मको सबसु पहलो अर्थ ये हे. यामें अपनेकु अपनी अहंता-ममता छले हे. अहंतासु अपन् सोच ले हें के ये मेरो धर्म हे. मेरे बाप-दादा भी ये ही धर्म पालते हते. अरे! बाप-दादामें या धर्मकु धारण करवेकी सामर्थ्य हती. क्या तुममें वो सामर्थ्य हे? बाप-दादा करते हते, वो ठीक हे पर क्या तुम याकु धारण कर पा रहे हो? बाप-दादा तो पगड़ी पहरते हते, आज क्या अपन् पहन पा रहे हें. ब्याह-शादीमें भूले-चूके पहन लें वो बात अलग हे. पर दिन-भर पगड़ी पहरके फिरवेकी सामर्थ्य कौनमें हे आज? पगड़ी बांधवेको इतनो टाईम कहांसु लानो? शर्ट पहरते तो ट्रेन् पकड़वेकी धांधल होवे. वामें पगड़ी पहरवे कौन जायगो? तो पगड़ी पहरनो तुम्हारो धर्म नहीं रह्यो. क्योंके तुम वाकु निभा नहीं सकोगे. ये तो धर्मको पहलो अर्थ मैनें आपकु बतायो.

(अहं-ममको लौकिकअर्थरूप व्यापार)

ऐसे ही 'अर्थ'को पहलो अर्थ क्या? अपनी कुछ कामनाएं

हें. उन कामनानुकु पूरी करवेके लिए अपनुकु कुछ चहिये. कोई दूसरो व्यक्ति बता नहीं सके हे के कोई व्यक्तिकी कामनाएं क्या हें? वो तो खुदकु ही पता चले के मेरी कामानाएं क्या हें? खानो हे, पीनो हे, झगड़नो हे, स्नेहसु रहनो हे. ऐसे हजार कामनाएं हो सकें. उन कामनानुकु पूरी करवेके लिए अपने पास कोई जरिया होनो चहिये. means of satisfaction हे वो अपनो 'अर्थ' हे. 'अर्थ'को मतलब पैसा नहीं. क्योंके पैसा तो बहोत बादमें शुरु भयो. बार्टर सिस्टम् तो पहलेसु ही चलती हती. बार्टर सिस्टम्को अर्थ क्या के सारी वस्तुको लेन-देन वस्तुसु होतो हतो. मेरे पास कपड़ा हे, तुम्हारे पास गेहूँ हे तो तुम कपड़ा ले जाओ और वाके बदलेमें मोकु अनाज दे जाओ, ये 'बार्टर सिस्टम्'. यामें पैसा कहाँ हतो? तो अर्थ पुरुषार्थ हतो के नहीं?

हर व्यक्ति जो कर सकतो हतो वो करके अर्थ जमा करतो हतो और जब वाकु कोई दूसरी चीजकी कामना होवे तो वाके पास जो हे वासु अपनी कामनाकु पूरो करतो हतो. अपनी इच्छाकु पूरी करवेके लिए जा चीजकी आवश्यकता होय और जासु वो आवश्यकता पूरी होय, वा चीजको नाम 'अर्थ'. नोट और सिक्का को नाम अर्थ बहोत बादमें आयो. पहलो 'अर्थ'को अर्थ हे अपनी इच्छाकु पूरी करवेके लिए जा चीजकु साधन तरीके उपयोगमें लेनो हे वो अर्थ हे. अब कौनको क्या साधन हे, वामें कोई नियम नहीं हो सके. जैसे शहीदनुके लिए स्वतन्त्रता-प्राप्तिकी कामना हती. याको देखो एक्सट्रीम् एक्सटॅन्ट् समझा रह्यो हूँ. वा स्वतन्त्रता-प्राप्तिके लिए उनने अपने शरीरकु साधन मान्यो. उनको शरीर उनको अर्थ हो गयो. तो शहीदनुके लिए स्वतन्त्रता उनकी कामना भयी और उनको शरीर वा कामनाकी पूर्तिको साधन मानें अर्थ भयो. या हृद तक भी अर्थके मायने हो सके हे. एक बात समझो के बहोत सारे कॅन्सर् अथवा ऐसे रोग के जिनको ईलाज नहीं होतो होय, मरीज स्वयं

केहते होंय के हमकु बेहोशीको इन्जेक्शन् लगाके हमारी चेतनाकु सुला दो. क्योंके हमकु तकलीफ शरीर नहीं दे रह्यो हे. शरीर तो कॅन्सर्कु पाल-पोसके बड़ो कर रह्यो हे. कॅन्सर्की खूबसूरती ये हे के आपके शरीरमें वो घर करे और शरीर ही वाकु पाल-पोसके बड़ो करे, भाईकी तरह. वो कहे हे के मोकु खा-खाके तू बढ़तो चल्यो जा. तकलीफ शरीरकु नहीं, चेतनाकु हो रही हे. जब हम चेतनाकु सुलावेके लिए केह रहे हें तो चेतनाकु अर्थ बना रहे हें. अपने दुःखकु मिटावेके लिए अपनी चेतनाकु बार्टर् सिस्टम्में दे रहे हें. मेरी चेतना ले लो और दुःखकु खतम करो. बार्टर् सिस्टम्में अपन् कौनसी चीजको लेन-देन नहीं कर सकें, वाको आदि और अंत नहीं हे.

पुष्टिमार्गमें चार-चार, छह-छह, आठ-आठ पीढ़ीके घरमें बिराजते ठाकुरजी, ये खोटे अपरसके और नेग-भोग-रागके ढोंगके कारण बच्चानकु लग्यो के या तरहकी सेवा तो निभनी मुश्किल हे. अपन्ने रेडीमेड् फॉर्मूला अपनायो के जब या तरहकी सेवा नहीं निभ रही हे, तो ठाकुरजीकु ग्वालमंडलीमें पधरा दो. ग्वालमंडलीके वैष्णवन्के ठाकुरजी जब सौ-डेढसौ इकट्ठे हो जायें तो चोर-बाजारमें बिकवे चले जायें. हमारे मुम्बईमें चोर-बाजार मुसलमानी इलाकामें चले. वहाँ आठ-आठ पीढ़ी पुराने ठाकुरजी मिल रहे हें. उन मुसलमानकु अपनेसु अधिक पता हे, क्योंके उनको धंधा हे. अपन् सेवाकु अपनो धर्म नहीं बना पाये. वे धंधाकु अच्छी तरहसु करें. उनकु ये पता हे के कौनसो ठाकुरजी पुरानो हे, कौनसो नयो हे. नयेके थोड़े सस्ते दाम. कौनसे ठाकुरजीकी डिमांड् अधिक हे, वाको थोड़ो कसके दाम लेनो. कौनसे ठाकुरजी डिमांड् कम हे, वाकु थोड़े सस्तेमें पटानो. इन्वेस्टमॅन्ट् रिटर्न् तो होनो चहिये. पता नहीं यहाँ वैसी चोर-बाजारकी दुकान हे के नहीं. जयपुरमें तो होयगी ऐसी कबाड़की दुकान. वा कबाड़की दुकानमें अपने ठाकुरजी जा रहे हें और बिक रहे हें. हमारे बड़े मंदिरमें मेरे बचपनमें दो सौ ढाईसौ ठाकुरजी हते. सब बिक गये.

मैंने पूछी "कहाँ गये" तो कहे के "पता ही नहीं चल्यो के कौन बेच आयो." जिन ठाकुरजीकी अपन्ने छह पीढ़ी तक सेवा करी, वा ठाकुरमेंसु अपनी ममता टूट क्यों गयी? क्योंके अपनेमें वो अहंता नहीं रेह गयी हती के इतनी अपरस हम पाल सकेंगे. इतनो नेग-भोग-राग-शृंगार हम कर सकेंगे. क्योंके इतनी फुरसत आजके जीवनमें नहीं हे. जब फुरसत नहीं हे और इतने नियम जबरदस्ती लादे जा रहे हें तो सेवा कहाँसु होयगी!

जैसे गाय दूध देनो बंद कर दे तो किसान जो गायकु खरीदतो होय वाकु बेच दे. अपन् कहें के "गाय हमारी माता हे" पर बेचारो किसान क्या करेगो? किसान गायकु माता नहीं मानके अर्थ मान रह्यो हे. ऐसे हमारे यहाँ जो ठाकुरजी इकट्ठे हो रहे हें, उनकु हम ठाकुर थोड़े ही माने! ठाकुर होय तो बेच्यो जाय? हम बेच क्यों रहे हे? क्योंके हमकु वो अर्थ लग रह्यो हे. तुमने अपने ठाकुरजी क्यों पधरा दिये हमकु? क्योंके तुमकु ठाकुरजी दुःखरूप लग रहे हते. या ठाकुरके रहते इतनी अपरस पालनी पड़ेगी, इतनो नेग-भोग-राग करनो पड़ेगो. इतनो करें तो नौकरी करवे कौन जायगो, कमावे कौन जायगो, जीवन कैसे जीयेंगे. घरको ठाकुर जो परमानन्दरूप हे, वो परम दुःखरूप हो जाय. जब ऐसो होय तो अपनो पहलो रिऍक्शन् क्या होय के "नई आयी पुरानीको दूर करो." या तरह अहंकार और ममता के घाल-मेलसु अपनी पुरुषार्थ व्यवस्था चले.

(अहं-ममको लौकिककामरूप व्यापार)

अपन् जाकु काम केह रहे हें तो शास्त्रने ये भी नक्की कियो के कुछ दुःख अपनेकु अपने कामके कारण हो रहे हें. कुछ सुख भी अपनेकु अपने कामके कारण हो रहे हें. कोई चीजमें सुख हे. क्यों सुख हे? क्योंके अपनकु वाकी कामना हे. जाकी कामना नहीं हे वो चाहे कितनी भी अच्छी चीज होय, जो मेंपे जबरदस्ती

थोपी जा रही हे, वो सुखरूप होवेके बजाय दुःखरूप हो जाय. जैसे धर्मकी दो वॅराइटी हें, सुखकी और दुःखकी, ऐसे अर्थकी भी दो वॅराइटी हें सुख और दुःख की. कुछ दुःखद अर्थ हे कुछ सुखद अर्थ हे. कुछ सुखद धर्म हे कुछ दुःखद धर्म हे. ऐसे ही काम भी कुछ दुःखद होवे हे, कुछ सुखद होवे हे. जा बखत अपने काम अपनकु दुःख देवे लग जाय, वा बखत अपने कामकु अपन् छोड़ दे हें. अपन् धंधा करें जामें फायदा हे. पर वाकु भी छोड़के अपन् कम फायदाको शिक्षणको काम करनो चाहें. क्यों? काम भी कुछ दुःखरूप हें. अपन् कहे के या धंधामें अधिक कमाई हे. कोई कहे के कमाई हमकु नहीं चहिये. यामें हमकु अधिक जॉब् सॅटिस्फॅक्शन् मिल रह्यो हे. ऐसे यालिए के कुछ काम दुःखरूप भी होवे हें और दुःखसु अपनकु छटकनो हे, सुखकी तरफ अपनकु बढ़नो हे तो काममें भी वो ही प्रिन्सिपल् काम कर रह्यो हे.

(अहं-ममको लौकिकमोक्षरूप व्यापार)

'मोक्ष'को अपन्ने एक मतलब समझ्यो के कैलाशमें जानो, वैकुण्ठमें जानो, ब्रह्ममें मिल जानो. वे सब तो बहोत आगेकी कक्षाके मोक्ष हे. वासु पहली कक्षाको मोक्ष हे रिटायरमॅन्ट्. तुम्हारी जॉब्में बढ़ोतरी नहीं हो रही हे तो तुम वॉलेंटरी रिटायर् हो गये. बॉस् कोई ऐसो आ गयो हे के जो अधिक तकलीफ दे रह्यो हे तो आदमी क्या करे? रिटायरमॅन्ट् ले हे. मोक्ष भी कुछ सुखरूप होवे, कुछ दुःखरूप मोक्ष भी तो होवे ही हें. अपन् ऐसे नहीं केह सकें के सारे मोक्ष सुखरूप ही हें. या सारे मोक्ष दुःखरूप ही हे.

मेरे एक वकील दोस्त हते, वैष्णवपरिवारसु. उनको एक जैन मुनिजीसु सम्बन्ध बहोत गहरो हो गयो और उनकु जैन मुनिपे काफी भक्ति हो गयी. क्योंके वो मेरे साथ पढ़े हते यालिए मोसु हर बखत कहते के "एक बार तू जैन मुनिजीसु मिलवे चल." मैं

भी कहतो के ''कभी चलूंगो''. उन मुनिजीसु बात क्या करनी, ये मेरे समझ नहीं आ रही हती. एक दिन हमारे गाममें ही वो जैन मुनि पधारे. वो पीछे पड़ गयो मेरे.''अब श्याम तोकु चलनो ही पड़ेगो.'' अब मैं क्या करूँ. मुद्दा जैन मुनिको नहीं हतो. मुद्दा मेरे क्लासमेट्के बुरो मानवेको हतो, यालिए मैनें मंजूर कर लियो. वो मोसु केह रह्यो हतो के ''आज तुम दोनों जब मिलोगे तो ज्ञानकी तो गंगामें बाढ़ जैसी आ जायगी.'' मैं पौना घंटा जैन मुनिजीके पास बैठ्यो रह्यो पर जैन मुनिजी एक ही बात समझाते रहे के ''तुम्हारो वैष्णव धर्म बहोत अच्छो हे, लड्डू पूड़ी मोहनथाल खावेकु मिले. हमकु सात घरमें भिक्षा मांगवे जानो पड़े. आज-कल घी भी अच्छो नहीं लावे हैं. तेलकी पूड़ी तलके दे हें. फिर हमारे पैदल चलनो. वामें कितनी तकलीफ होवे हे. तुम्हारो वैष्णव धर्म क्या मस्त हे. सीरा मिले, पूड़ी मिले.'' क्या ये बात मैं जैन मुनिके पास करवे गयो हतो? पौना घंटाके बाद मोकु सफोकेशन् होवे लग गयो. मैनें कही के ''मार्ग तो अच्छो हे ही हमारो. अब आपकी आज्ञा होय तो जाऊँ.'' मोक्ष तो वहाँ भी नहीं भयो. पुष्टिमार्गीयकु देखते ही उनकु वैराग्य भुला गयो और लड्डू पूड़ी याद आ गये. उनकु ऐसो क्यों भयो? ये मोकु नहीं पता पर पौना घंटा तक एक ही लड्डू-पूड़ीकी कथा. मैं तो उनकी हांमें हां मिलातो गयो. मनमें सोचीके आपके महावीरने क्यों गृहत्याग कियो. उनके हिसाबसु महावीरके एक भाई कृष्णके छोटे भाई नेमीनाथजी हते. वो नेमीनाथजी नहीं होते और कृष्णके साथ महावीरजी होते तो द्वारकाकी मौज मारनी मिलती के नहीं! काहेकु उनने त्याग कियो! अब जो कियो हे तो वाकु तो भोगनो ही पड़ेगो. कर्मको बंधन तो हे ही.

(अहं-ममकी अलौकिकपुरुषार्थरूपता)

एक बात ध्यानसु समझोके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इन सब पुरुषार्थनूमें

सुख-दुःखको लफड़ा हे और हे ही. वा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकु पाछे महाप्रभुजी कैसे विभाजित करें के लौकिक धर्मार्थकाममोक्ष और अलौकिक धर्मार्थकाममोक्ष. अपन् समझें के लौकिक धर्मार्थकाममोक्ष दुःखरूप ही होंयगे. ऐसी बात नहीं हे. लौकिक धर्मार्थकाममोक्षमें भी कुछ सुखरूपता हे. और अलौकिकको प्रभेद कियो. "**अलौकिकास्तु वेदोक्ताः साध्य-साधन-संयुताः**" (बा.बो.३) वे सारे प्रभेद हें काहेकी वॅराइटी? कैसे सुख हासिल करनो और कैसे दुःखसु छुटकारा पानो. डिफ्रेन्ट् ग्रेड्झपे डिफ्रेन्ट लेवल्पे, अलग-अलग कक्षामें जैसे अलग-अलग पढ़ाईकी पुस्तक आती जायें, ऐसे अपने जीवनकी कक्षामें अलग-अलग लेवल्पे या तरहसु डॅवलपमॅन्ट् हे. वा डॅवलपमॅन्ट्के तहत महाप्रभुजी एक बात कहे हें के धर्मार्थकाममोक्ष लौकिक और अलौकिक के भेदसु दो प्रकारके हें. वामें जहाँ-तक मोक्षकी कथा हे, वाके भी चार प्रकारके भेद बता दिये, स्वतः मोक्ष और परतः मोक्ष. स्वतःके योग और सांख्य और परतःके शैव और वैष्णव सु. उनमें भी कुछ सुख-दुःखकी कथा तो हे ही. अपन् यों तो नहीं केह सकें के उनमें सुख-दुःखकी कथा नहीं हे. वैसे देखो तो कोई भी सुख, सुख नहीं हे कोई भी दुःख, दुःख नहीं हे. जो आपकु चहिये हें, वो सुख हे और जो नहीं चहिये हे वो दुःख हे. ये बात समझ लो. कौनकु क्या चहिये, कौनकु क्या नहीं चहिये, वो अपनकु कैसे पता चले?

(अहं-ममको लौकिकभक्तिरूप व्यापार)

कुछ साल पहले हमारे बम्बई युनिवर्सिटीकी एक सॅमिनार् भयी. सारे हिन्दुस्तानसु बहोत लोग आये सॅमीनार्में भाग लेवे. मैं भी गयो हतो. वामें सांवरी लंबी एक प्रोफेसर् आयी. दूरसु ही मोकु बुलायो "श्याम गोस्वामी, इधर आओ." मैं तो घबरा गयो. बोली के "तुमसु बात करनी हे." मैंने कही "क्या बात करनी हे." बोली "यहाँ नहीं, एकांतमें चलो." मैं तो एकदम नर्वस् हो गयो. वाको तिलक भी थ्री-टायर्, सबसु पहले हरी, वाके बीचमें लाल, वाके बीचमें

पीली. एक तो वो खुद काली और वापे थ्री-टायर् टीकी. एकदम विकराल रूप. मैनें सबनुकु कही के "भई, यहाँ खड़े रहियों." मोसु वाने कही के "देखो! मैं तुमकु कबसु खोज रही हती. मैनें तुम्हारे कुछ पेपर्स पढ़े हें जो मोकु बहोत पसंद आये, जो तुम पुष्टिभक्तिपे लेख लिखो हो. मेरी समस्या तुमकु बताऊँ. मैं कृष्णकी भक्त नहीं हो सकूं." मैने कही "कोई जरूरत नहीं हे के कृष्णकी भक्ति हरेक कर सके पर मेरो भक्तिको कन्सॅप्ट् तो पसन्द आ रह्यो हे के नहीं?" वाने कही के "कृष्ण तो मोकु पसंद नहीं हे." मैने पूछी "क्यों?" वाने कही के "राम यालिए पसंद नहीं आवे के वे एक सीताकु नहीं संभाल सके तो मोकु कहांसु संभालेगो! कृष्ण याके लिए पसंद नहीं के वाकी सोलह हजार रानीयाँ हें, तो मेरी उन सोलह हजारमें कीमत क्या? मोकु शिव पसंद आवे क्योंके दोकु तो शिव संभाल ही लेगो. पर मैं तुमसु ये पूछनो चाह रही हूं के पुष्टिमार्गके ढंगकी शिवभक्ति मैं कर सकूं के नहीं?" मेरी तो खोपड़ी ही खाली हो गयी वाकी बात सुनके. पुष्टिमार्गकी तरह शिवजीकु पलना झुलानो, शिवजीकु लोरी गाके सुलानो. शिवजी सोचें के "तोकु और कोई नहीं मिल्यो सुलावेके लिए? मैं हिमालयपे बैठके ठंडमें तपस्या कर रह्यो हूँ और तू मोकू गद्दल पहरा रही हे!" शिवजी भी चक्करमें पड़ जायेंगे. मैंने वासु कही के "देखो! तुमकु पुष्टिभक्ति पसंद आ रही हे, मैं वाको आभार मानूं पर शिवजीकी भक्ति ऐसे करनी के नहीं, ये मैं नहीं बता सकूंगो, तुम करके देखो. तुमकु सुख होतो होय तो करो और शिव वामें हल्ला मचातो होय के "मेरे साथमें दुर्गति क्यों?" मैनें अपने मनमें सोची के फिर पार्वतीसु भी तो झगड़ाकी संभावना तो हे ही न! यालिए मैनें कही के "तुम शिवके साथ करके देख लो के क्या तुम्हारे ऊपर बीते हे. शिवकु यदि पसंद आती होय तो आनंदसु करो. मैं बीचमें ना पाड़वेवालो कौन?" भक्तिमें भी या तरहके सुख-दुःख तो लगे भये हे ही. क्योंके अहं-ममके घाल-मेलसु ही तो भक्ति

करनी हे. यदि आपकु कुछ धर्म करनो हे तो वामें अहं-ममको घाल-मेल हे. यदि अर्थ कमानो हे तो वामें अहं-ममको घाल-मेल हे. यदि कुछ काम हे तो वामें भी अहं-ममको घाल-मेल हे. यदि कोईसु छुटकारा पानो हे तो वामें भी अहं-ममको घाल-मेल हे. यदि भक्ति करनी हे तो वामें भी अहं-ममको घाल-मेल तो हे ही.

(अहं-ममको विवेक : षोडशग्रंथ)

जब-तक ये घाल-मेल आप स्वयंकु साफ नहीं हे, तब-तक भक्ति कहांसु हो सकेगी! ये अपने सबकी समस्या हे. या समस्याको महाप्रभुजीने कई तरहसु समाधान खोज्यो हे. जैसे नवरत्न भक्तिवर्धिनी पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा सिद्धान्तरहस्य जलभेद पंचपद्यानि निरोधलक्षण ये सब ग्रंथ या समस्याके समाधानकु खोजवेके लिए हें. वो समस्या हे के अहं-ममके विसा-विसु हम अपनो पुरुषार्थ क्या मान रहे हें, विसा-विसु वा पुरुषार्थके साथ अपनी अहंता-ममताको अथवा अपनी चेतना और जीवन को ताल-मेल कैसे बैठानो चाह रहे हें. क्योंके अपनी चेतना, अपनी अहंता हे और अपनो जीवन अपनी ममता हे. वामें पाछी एक घाल-मेल हे. वाके बावजूद अपनी चेतना अपनकु अपनी अहंताके रूपमें लग रही हे और अपनो जीवन अपनी ममताके रूपमें लग रह्यो हे. अपनी चेतना और जीवन के या घाल-मेलके रहते भये, कोई भी साधना करो कर्मकी ज्ञानकी भक्तिकी वैराग्यकी योगकी सांख्यकी दानकी तपकी संन्यासकी सबमें वो घाल-मेल तकलीफ तो देगो ही. जब-तक वो स्पष्ट नहीं होवे तब-तक अपनकु कैसे पता चले के जो अपन् सच्चाईसु कर रहे हें, वो वाको परिणाम हे के जो अपनकु चहिये हे वो अथवा अपन् दो परिणाम चाह रहे हें. जैसे भगवान्कु चाह रहे हें पर भगवान्के गोलोककु नहीं चाह रहे हें. भगवान्कु चाह रहे हें के "तुम्हारे बिना नहीं रह्यो जा रह्यो हे." भगवान् यदि अपनकु याद करवे लग जाय तो लेनेके देने पड़ जायें.

"हम तुमकु याद करेंगे पर मेहरबानी करके तुम हमकु याद मत करियो. क्योंके तुम याद करोगे तो ऊपर आनो पड़ेगो. हम याद करें तो तुम्हारे आवेकी कोई गारंटी नहीं हे."

(अहंकारकी विभिन्न अवस्था)

वाके लिए महाप्रभुजी बता रहे हें के अपने जीवन और चेतना के घाल-मेलकु कहांसु व्यवस्थित करनो? वाको ये सिद्धान्त-वचन महाप्रभुजीने बतायो के "**पंडित तो जीते परंतु अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो, सोई वस्तुको नाश होयगो.**" ये प्राइमोर्डियल् अहंकार नहीं हे, जाकु मैं चेतना केह रह्यो हूँ. जैसे अपनो सुख और दुःखाभाव. वाके बाद धर्मार्थकाममोक्ष बन जाय वो लौकिक. वाके बाद जो शास्त्रकी आज्ञाकु समझके अपन् करें तो वो अलौकिक धर्मार्थकाममोक्ष हो जाय. वा अलौकिक धर्मार्थकाममोक्षकु भी यदि अपन् कोईके प्रति भक्तिभावसु कर रहे हें, तो वो अलौकिक धर्मार्थकाममोक्ष भी भक्ति बन जा रह्यो हे. वो एकके बाद एक आती उत्तरोत्तर अवस्थाएं हें.

ऐसे अपने अहंकारकी भी एकके बाद एक आती भई अवस्था हे. शुरुआतको अहंकार केवल इतनो ही हे के मोकु दुःख नहीं होनो चहिये. जब वो बात आगे बढ़े हे तो अहंकार केवल सुख-दुःख तक ही सीमित नहीं रहे हे क्योंके अपन् अच्छी तरहसु जाने हें के हिमालय चढ़नो हे तो बहोत दुःख होयगो पर अपने मनमें अहंकार हे के हमकु हिमालयकी चोटीपे चढ़नो हे और अपनो झंडा फहरानो हे तो जितनो भी दुःख हो रह्यो हे, वाकु अपन् अपने अहंकारमें छिपा ले हें. दुःखकु दुःख नहीं माने हें. ऐसे अपनकु कोई ममकार हो रह्यो हे, जाकु भी अपन् चाह रहे हें वाके आगे अपनकु झुकनो तो पड़े ही हे. जाकु अपन् मेरो मान रहे हें, वो चाहे बच्चा होय, चाहे कुत्ता होय, पति होय, पत्नी होय, बाप होय

के बेटा होय, सबके साथ ये समस्या तो हे ही. जीवन भी अपनो ऐसो ही हे. अपनी चेतना वाकु जा तरहसु टॅकल् करनो चाह रही हे, वा तरहसु बो टॅकल् होनो चाहे तो होय. नहीं होनो चाहे तो नहीं होय और कोई अपनी अलग ही राह पकड़ ले हे. जीवन भी अपनी चेतनाकु जा तरहसु जीवित रखनो चाहे हे, वा तरहसु यदि अपनी चेतना वाकु कबूल करती होय तो करे. नहीं करती होय तो नहीं करे. जीवनकु अपनी चेतनाकी परवाह कभी नहीं हे.

जैसे जिन लोगनकु अस्थमा हो जाय उनकु सांस लेनो कितनी तकलीफ देतो हो जाय. जाकु भयो होय वासु पूछें तो पता चले. वो मरनो चाहे हे. वाकी चेतना वाकु कहे हे के ऐसी सांसके बजाय सांस बंद हो जाय तो अच्छो हे. जीवन कहे हे के नहीं सांस चल तो रही हे. आखी-आखी रात व्यक्ति जगे हे. कई-कई उपाय करे हे. जीवन आपकी चेतनाकी परवाह नहीं कर रह्यो हे. चेतना आपके जीवनकी परवाह नहीं कर रही हे. दोनोंमें ऐसो सम्बन्ध हे के "तेरे मेरे बने नहीं और तेरे बिना चले नहीं." ऐसी स्थिति जीवन और चेतना की हे. वाके कारण अपनी अहंता और ममता के बहोत सारे घाल-मेल हें. अपन् भक्ति करेंगे तो वामें भी होयेंगे. भक्ति नहीं करेंगे वामें होयेंगे, अब ये बात समझो.

भक्ति अपने अहंकारको एकदम ऑपोजिट् रूट् हे. अहंकार भक्तिको ऑपोजिट् हे. क्यों ऐसो हे, ये अपन् कल देखेंगे. ये भूमिकाके रूपमें इतनी बात, राणा व्यासकी कथाकी जो नींव हे वामें समझनी बहोत आवश्यक हे.

[२]

(द्रष्टा-दृश्यके भेदसु सुख-दुःख)

कल जो अपन् बात देख रहे हते मूलमें वो अपनी चेतना और अपने जीवन को जो घाल-मेल हे और जा तरहसु अपनी अहंतामें ममता छिपी भयी हे और ममतामें अहंता छिपी भयी हे, वो सब अपनूने देख्यो.

पर ये एक दृश्य हे. जैसे कोई भी दृश्य होवे, वा दृश्यको सुखद अथवा दुःखद होनो, क्लेशकर होनो अथवा क्लेशहर होनो, वो देखवेवालेकी अथवा द्रष्टाकी दृष्टिपे निर्भर करे हे. जैसे अपने मोंहपे कोई कॅमराकि फ्लॅश्-लाईट् मारे तो अपनी आँखे मिच जायें. क्योंके अपनी दृष्टि तेज लाईट्कु देखवेके लिए आदी नहीं हे. पर जो नेता या ॲक्टर् हें उनकु निरंतर वो ही तेज लाईट्में काम करनो पड़े. उनकी आँखपे तेज लाईट् पड़े तो उनकी आँख मिचे नहीं और उनकु कोई तकलीफ भी नहीं होवे. अब तेज लाईट् दुःखद हे के सुखद हे, क्लेशकर हे के क्लेशहर हे, ये काहेपे निर्भर करे? कई बखत अपने आसपासमें अधिक शोर होय तो अपन् डिस्टर्ब् हो जायें. पर रेल्में जो सो रहे हें, टिकिट्-चॅकर्, सर्विस् करवेवाले गार्ड, वे रेल्में ही यात्रा करें तो उनकु नींद भी वहीं अच्छी आवे. उनकु शोर उतनी तकलीफ नहीं देगो. अपन् समझ सके के कौनकु कौनसो दृश्य, कौनसी ध्वनि, कौनसी गंध, कौनसो रूप अथवा कौनसो स्पर्श दुःखद हे के सुखद हे, वा द्रष्टाको वा दृश्यके साथ तालमेल कैसो हे यापे निर्भर करे. अपन् अपने ढंगसु निर्णय ले लें. ले सको पर वो निर्णय सबपे खरो नहीं पड़े. अपन् कोई हिमालयसु वृक्ष ले आवें और वाकु यहाँ लगावें तो वाकु ठीक नहीं पड़े. यहाँके वृक्षकु हिमालयपे लगा दें और एक बरफ पड़ी तो सारे वृक्ष मर जायेंगे. कौनकु क्या सहन होवे, क्या सहन नहीं होवे? जो सहन नहीं होवे वो दुःख हे, जो सहन

कर सक रहे हैं वो सुख हे. वो धीरे-धीरे सहन होते-होते पाछे सुख बन जावे. जैसे अपन् मिर्ची जीभपे सहन करवे लग जायें तो सहन करते वो बादमें सुखकी अनुभूति देवे हे.

(सुख-दुःखको कारण अहंता-ममता)

ये जो सारो विश्वको परिदृश्य हे, जा परिदृश्यमें अपन् ये सोच रहे हें के यामें मेरी अहंता-ममताके कारण सुख या दुःख हो रहे हें. पर प्रत्येक व्यक्तिकी अहंता-ममता एक जैसी नहीं हे. रेगिस्तानमें तपती बालुमें कॅक्टस्को खड़े रहनो, अपनकु क्या पताके वाकु सुखद लग रह्यो हे के दुःखद लग रह्यो हे! अपने यहाँके वृक्ष वहाँ लगा दे तो मर जायेंगे पर वहाँ वो पैदा हो रह्यो हे, बढ़ रह्यो हे, जी रह्यो हे. वाकु शायद नदीके किनारापे लगाओ तो वो दुःखी हो जायगो. वो भी कहेगो के व्यर्थमें इतनी बासुंदी कहाँसु आ गयी, जो पचे नहीं हे. कोई भी दृश्यको सिद्धान्त यही हे के द्रष्टा वाकु सहन कर पा रह्यो हे के नहीं. शुरूआतमें वो सहन करे और फिर धीरे-धीरे वो सुखमें परिवर्तित हो जाय. जो अपन् सहन नहीं कर पाते होंय वो दुःखद लगे. दुःखकु भी सहन करते रहो तो वो सुखद हो जाय. कोई भी दृश्य दुःखद हे के सुखद हे, वाको इकतरफा निर्णय ले पानो बहोत मुश्किल हे. हर बखत जो देखवेवालो हे वाकी निगाहकु भी अपनकु पहचाननो पड़ेगो के दुःखद हे के सुखद हे. देखवेवालेकी निगाह भी वामें उतनो ही प्रमाण हे जितनो प्रमाण अपन् अपने विचारके कारणसु केह रहे हें. अपनी सहन अथवा असहन शक्तिके कारण केह रहे हें.

(अहंता-ममताकी सीढ़ी = उपादान → गुणधर्म → व्यवहार)

यही सारे ऑर्डर्में कुछ ऐसी सीढ़ी हे के जो अपनो constituion (परिरचना) हे, जासु अपन् गढ़े गये हे. कुछ ऑर्डर् ऐसे हें जो अपने constituionके मूलतत्त्व हे, वो मूलतत्त्व अपनो स्वरूप छोड़के

अपने धर्मरूप हो जाये. 'धर्म' मानें धर्म-अधर्मवालो धर्म नहीं. पर जैसे सुंदरता, सुंदर होवेको धर्म हे. कुरूपता, कुरूप होवेको धर्म हे. मधुरता, मधुर होवेको धर्म हे. तीक्ष्णता, तीखे होवेको धर्म हे. जाकु अपन् 'ता' लगावें, जैसे 'मानवता' मानें मनुष्य होवेको धर्म. पाप-पुण्यवालो धर्म नहीं. जाको जो स्वरूप हे वाकी प्रकृति वाको 'धर्म' केहवावे. 'विद्वत्ता' मानें विद्वान होवेको गुणधर्म. वो अपनेमें अपने गुणधर्म तरीके प्रकट होतो होय. जैसे तीन-चार तरहकी रूई होवें. एक इजीप्शियन् कॉटन् होवे, एक इन्डियन् कॉटन् होवे, एक रेशमी कॉटन् होवे. वासु जो सूट बन्यो और वा सूतसु जो कपड़ा बन्यो मानें कॉटन्की प्रकृति कपड़ाको गुणधर्म बन जाय. यदि रेशमसु बन्यो हे तो वामें रेशमके गुणधर्म दिखेंगे. ये जो उपादानको स्वरूप हे वो कार्यमें वाको गुणधर्म बने हें. ऐसे बहोतसे सृष्टिके उपादान तत्त्व अपनी प्रकृतिसु गढ़े होवेके कारण अपनेमें वो गुणधर्म दिखाई देवे हे.

आपकु और सरलतासु समझनो होय तो अपने यहाँ ऐसे कह्यो गयो के सारो शरीर अपनो अन्नमय हे. मतलब जो भी चीज अपन् खा रहे हें, वासु अपनो शरीर बन्यो भयो हे. जा बखत खा रहे हें, वा बखत वो अन्न उपादान हे, रॉ-मटीरियल् हे. पर जब वा अन्नकु खा लियो तब वो अन्नके रूपमें नहीं अपितु अपने शरीरको कोई गुणधर्म बनके आ रह्यो हे. खून बन जायगो, माँस बन जायगो, हड्डी बन जायगो. जैसे केल्शियम् होय तो वाकी हड्डी बन जायगी. विटामिनको खून बन जायगो. तो अपने शरीरमें वो उपादान बनके नहीं पर वाको कोई गुणधर्म बनके आ रह्यो हे. जैसे सोनाकी अपन्ने कानकी बूटी बना ली. तो सोनाको टुकड़ा हे वो उपादान हे, रॉ-मटीरियल् हे. बूटी बनावेके बाद भी वो बूटी सुनहरी ही दिखेगी. ऐसे जा सोनासु वो बूटी बनी वाको सुनहरोपन वा बूटीमें भी दिखेगो, वो वाको गुणधर्म हे. वो जो गुणधर्म बने, वाके कारण

अपन् वा तरहसु काम करनो शुरु करें. वो काम अपनो व्यवहार बन जाय, व्यवहार अपनो क्रिया-कलाप बन जाय. वो क्रिया-कलाप यदि अपने तक सीमित रहें तो कोईकु क्या लेनो देनो! पर वो क्रिया-कलाप यदि कोई दूसरेके बीचमें इन्टरॅक्शन्में कर रहे हे तो फिर वाके गुण-दोषको विचार आवश्यक हो जाय हे के यामें ये गुण और दोष हे. जैसे एक बात बता दूँ के यदि कोई शेर हिरनको शिकार करके ला रह्यो है, तो शेरके बच्चानुकु वो वाको गुण लगेगो पर हिरनके बच्चाकु बहोत क्रूरता लगेगी. बात वोकी वोही हे के एक शेरने एक हिरनको शिकार कियो. वाके बच्चाकु वो अपने पिताकी दयालुता लग रही हे के हमारे लिए खावेकु लाये. पर वो ही बात हिरनके बच्चाकु दोषरूप लगेगी. अपन् या तरहसु बातकु समझ सके हें के कोई भी अपनो गुणधर्म, जा बखत अपनो काम करनो शुरु करें और वो काम जा बखत अपन् दूसरेके साथ करते होवें, तो वा गुणधर्मको अपने ॲन्गलूसु विचार नहीं होके वाके ॲन्गलूसु विचार होयगो.

(ब्रह्मको स्वरूप)

अब महाप्रभुजी या बातकु समझा रहे हें के मूलमें तो एक ब्रह्म हे, जो सच्चिदानन्द हे. 'सच्चिदानन्द' = वो(सत्) है, वाकु अपने होवेको भान(चित्) हे और वा भानकी कोई भी सीमा नहीं हे(आनन्द). सीमा-रहित, जाकु अपने यहाँ देशतः कालतः स्वरूपतः अपरिछिन्न कह्यो जाय हे. कोई भी टाईम्में वो घिर्यो भयो नहीं हे. कोई भी स्पेस्में वो घिर्यो भयो नहीं हे. कोई भी वस्तुके फॉर्म्में वो घिर्यो भयो नहीं हे क्योंके सारे फॉर्म् वो ही तो ले रह्यो हे. वो वा तरीकेको ब्रह्म हे.

(उपादानरूप प्रकृति)

ब्रह्म जब सृष्टिके लिए प्रकट होवे वा बखत वो क्या करे

के सच्चिदानन्दमेंसु अपनी सत्ता और चेतना कु जैसे अपन् दूधमें जामन मिलाके दही और पानी कु अलग कर लें. ऐसे ही वो अपने संकल्पको जामन मिलावे और यासु वाकी सत्ता और चेतना छुट्टी पड़ जाये. वा छुट्टी भई चेतनासु रजोगुण पैदा होवे. छुट्टी पड़ी भई सत्तासु सत्त्वगुण पैदा होवे. छुट्टे पडे भये आनंदसु तमोगुण पैदा होवे. वे तीनों गुण जब आपसमें इन्टरॅक्ट् करें तो वो जगत्की 'प्रकृति' केहवावे. जगत्की 'प्रकृति' मानें जगत्की मूलावस्था.

(उपादानरूप पुरुष)

और वा अवस्थाके साथ चित्‌मेंसु रजोगुण पैदा भयो तो वामें चेतना भी हे. चेतनअंश पुरुष बने, वो कॉन्शियसनेस् हे. वो जब या तरहसु छुट्टो पड़ गयो तो प्रकृति अन्‌कॉन्शियस् हे. पुरुष कॉन्शियस् हे पर जगत्की प्रकृति नहीं बन रह्यो हे. जगत्के बनवेमें पुरुषको कोई रॉ-मटीरियल् तरीकेको रोल् नहीं हे. जैसे सोनाको गहना बनवेमें रोल् हे, सूतको कपड़ा बनवेमें रोल् हे. ऐसे पुरुषको जगत् बनवेमें कोई रोल् नहीं हे. वो तो एक साक्षी हे खाली. साक्षीको अथवा विटनेस्‌को कोई रोल् समझनो होय तो आज-कलके मीडिया जर्नलिस्ट्कु समझ सकें. कोई मर रह्यो हे तो वीडियो शूट् करें, कोई जी रह्यो हे तो वीडियो शूट् करें. उनको मरवे-जीवेमें कोई रोल् नहीं हे. जो भी हो रह्यो हे वाको वीडियो बनाते रहो और हो-हल्ला मचाओ. जैसे उनको केवल विटनेस् होवेको रोल् हे, जो भी घटना घट रही हे, वामें वो ॲक्टर् नहीं हे. ऐसे चेतना हे वो केवल विटनेस् हे के क्या हो रह्यो हे. वामें वाको ॲक्टर् तरीकेको रोल् नहीं हे. जैसे बिजली अपन् पंखाकु दे रहे हें तो पंखा घूम रह्यो हे. लाइट्कु दे रहे हे तो लाइट् चमक रही हे, फ्रिज्‌कु दे रहे हें तो वो ठंडो कर रह्यो हे, हीटर्‌कु दे रहे हें तो गरम कर रह्यो हे. अब वा बिजलीको वामें कोई रोल् हे के वो विटनेस् हे? खाली बिजली न तो लाईट् देगी, न हवा देगी, न ठंडो

करेगी, न गरम करेगी. पर जब वो कोई गॅजेट्सु मिल जाय तब कुछ करे. पाछी वो स्वयं विटनेस् ही रहे हे. जो भी कुछ कर रह्यो हे वाकु वो करवे देवेके लिए पॉवर् सप्लाई करे. याहीलिए अपन् वाकु 'एनर्जी' कहे हें.

(प्रकृति-पुरुषकी सहभागिता)

पुरुषको रोल् प्रकृतिकु एनर्जी प्रदान करनो और विटनेस् तरीके रहनो हे. अब प्रकृति और पुरुष जब एक-दूसरेके साथ जुड़ रहे हें तो एकके पास काम करवेके लिए पावर्की जरूरत हे तो दूसरेके पास काम करवेकी पावर् हे पर टॅक्नीक् नहीं हे. जैसे बिजलीके स्वयंके पास हवा पैदा करवेकी, ठंडो करवेकी, गरम करवेकी, साऊंड् पैदा करवेकी, सीन् पैदा करवेकी टॅक्नीक् नहीं हे. पर जा मशीन्के पास वो टॅक्नीक् हे, वाकु वो एनर्जी सप्लाई करे. स्वयं कुछ भी नहीं करे पर जो गॅजेट्र् काम कर सकते होवें, बिजली वो काम करवेके लिए उनकु एनर्जी सप्लाई करे.

ऐसे ही अपनी चेतना जा प्रकृतिके साथ इन्टरॅक्शन्में आयी हे, सहभागितामें आयी हे, प्रकृति जो कुछ कर रही हे, वाकु वो करवे दे. वाकी एनर्जी वो वाकु सप्लाई करे. कर रही हे प्रकृति, वो स्वयं कुछ भी नहीं करे. अब या लेवल्पे भी तो चेतना हे और या लेवल्पे भी प्रकृति हे. वा लेवल्की चेतना और प्रकृति न तो अपनी चेतना हे और न अपनी प्रकृति हे. वो तो अपनी मूलावस्था हे. वा मूलावस्थामेंसु अपन् पैदा भये हें.

(गुणधर्मरूप अहंता-ममता और वाकी अदोषता)

चेतना और प्रकृति की आपसी सहभागिता अपनेमें गुणधर्म बनके प्रकट भयी हे. गुणधर्म = जीवत्व, जीव होनो. जिनकु बालबोध आतो होयगो उनकु पता होयगो के "**जीवाः स्वभावतो दुष्टाः**" (बा.बो.१६)

जीव स्वभावसु दुष्ट कैसे हो सके! टीकाकार कहे हें के स्वरूपतः दुष्ट नहीं हे, स्वभावतः दुष्ट हे. अब सवाल पैदा होय हे के स्वरूप और स्वभाव में अंतर क्या? स्वरूप वाको क्या हे के वो कुछ भी पैदा नहीं करे हे. जो भी कुछ पैदा हो रह्यो हे वाकु वो पैदा करने दे हे. एनर्जी सप्लाइ करे हे. अच्छेकु अच्छी एनर्जी, बुरेकु बुरी एनर्जी. खुद वो कुछ करे नहीं हे पर एनर्जी सबकु सप्लाइ करे हे. सप्लाइ चालू रहते-रहते, एनर्जी वामें ट्रॅप् हो रही हे और वो एनर्जीसु बंध जा रह्यो हे. जो अपन् एक-दूसरेसु बंध जा रहे हें वाको नाम 'जीव'. अब वो चेतना तो नहीं रह्यो. जीवमें चेतनाके ॲन्गल्सु अहंता आ रही हे और जीवके ॲन्गल्सु वामें ममता आ रही हे. चेतना और प्रकृति जीवमें अहंता और ममता बन रहे हें. जैसे सोनाको गुण, कानकी बूटीमें वाकी गुणधर्म बनके आवे. जितनो सोना उतनी वाकी कीमत. तो सोनाकी बूटीमें वा सोनाको गुण बनके तो आ रह्यो हे पर यहाँ वो वाकी क्वालिटी मानें गुणधर्म बनके आ रह्यो हे. रॉ-मटेरीयल्के नेचर् प्रोडक्ट्में क्वालिटी तरीके प्रतिबिंबित होवे.

अपने मां-बापको स्वभाव, अपने मां-बापके नाक-नक्शा, अपनो उपादान मानें रॉ-मटीरीयल् हे. अपनेमें वो गुण बनके आ रह्यो हे. कैसे? नाक माँपे गयी हे, आँख बापपे गयी हे. कपाल दादीपे गयो हे, ठुड्डी नानीपे गई हे. सब मिलके एक नई चीज पैदा भयी. वामें वे गुणधर्म बन जा रहे हें. रॉ-मटीरीयल्के रूपमें कोई और हते पर जब अपनेमें वे आवें तो अपने चेहराकी कोई अलग आइडेन्टिटी बन रहे हे. वे गुण अपन् तो बना नहीं रहे हें. वे तो अपने कॉन्स्टीट्यूशन्के कारण बन रहे हें. ये बात बहोत महत्त्वपूर्ण हे, ध्यान रखोगे तो ही आगेकी बात पता चलेगी. वहाँ-तक तो कोई दोषको सवाल ही नहीं हे.

महाप्रभुजी तो स्वभावसु दुष्ट केह रहे हें और टीकाकार वहाँ

व्याख्या कर रहे हें वो स्वभावसु दुष्ट हे, स्वरूपत: दुष्ट नहीं हे. मतलब स्वरूप वाको कोई और हे और स्वभाव वाने कोई और अर्जित कियो हे. जैसे किशनगढ़में भी दो-तीन लोग हतें जिनकु रस्तामें लोग जरा छेड़ देते, बस फिर वो गालियें बकते भये जाते. उनको स्वभाव हतो. उनकु छेड़ो नहीं तो वो गाली-गलौच नहीं करेंगे. पर उनकु जरा भी छेड्यो तो फिर उनके मोंहमेंसु गालीन्की गंगा बहवे लग जाती. वो उनके स्वभावको दोष हे. स्वरूपको दोष नहीं हे. नहीं छेड़ो तो शांतिसु निकल जायें. मनुष्यमें ही होवे ऐसो नहीं हे, जानवरन्में भी ऐसो ही होवे. सांपकु नहीं छेड़ो तो सांप आपकु काटेगो नहीं. छेड़ दियो तो काटेगो ही. बहोत सारे जानवर अपन्सु डरें. पर क्योंके अपन् उनसु डरें यासु वे समझ जायें के ये डर रहे हें तो मोकु काहेकु डरनो! जहाँ मनुष्यकी बस्ती होय वहाँसु शेर भाग जाय. वा एरियामें नहीं रहे. जब छातीपे ही मनुष्य आ जाय तो वाकु लगे के कोई लफड़ा हे, अब याको कोई ईलाज करो. *मरता क्या न करता* यासु वो खावे.

हर जीव, व्यवहार तो याही तरहसु करे हें. स्वरूपत: कोई बुराई नहीं हे, स्वभावत: हे. स्वभाव अकेलो मेरो तो गढ़्यो भयो हे नहीं. मेरे स्वभाव गढ़वेमें मेरो जितनो रोल् हे, उतनो औरन्को रोल् भी तो हे न! वामें अहंताको, प्रकृतिको, ममताको रोल् हे के नहीं? यदि प्रकृतिको ममताको कोई रोल् नहीं होतो तो अहंताको स्वभाव पुरुषको कैसे गढ़ातो.

आज अपन् कहे तो बात अच्छी नहीं लगे, सबकु बुरी लग जाय. पर संस्कृत भाषामें 'पति' शब्दको अर्थ हे रक्षक. 'पत्नी' शब्दको अर्थ हे के वाके सामने जो समर्पित हो जाय. अब कोई समर्पित अथवा शरणस्थ हो रह्यो हे. तभी तो अपनेमें रक्षकपनो दीखेगो. समझो झाड़ू लेके पीछे दौड़ती होय तो अपनो सब रक्षकपनो गायब. अपनो रक्षकपनो कितनी देर टिके, जब-तक वो शरण तरीके

व्यवहार करे तब-तक अपन् रक्षक हें. मारवेके लिए दौड़े तो कौन वाको रक्षक बनेगो? अपन् रक्षक हें तो वामें वाको भी कॉन्ट्रीब्यूशन् हे के वो सरेंडर् हे. वो या भरोसे सरेंडर् हे के अपन् वाकी रक्षा करेंगे. ये बात अन्योन्याश्रित बात हे, एकाश्रित बात तो हे नहीं.

ऐसे प्रकृतिमें रही भयी जो ममता हे वो पुरुषकु 'अहं' बनावे हे. पुरुषमें रही भयी जो अहंता हे वो प्रकृतिकु 'मम' बनावे के ये तो मेरे भोगके लिए हे. जो भी कुछ काम चल रह्यो हे, वामें पूरी-पूरी इन दोनोंन्की साझेदारी हे. याही कारण शास्त्रमें पत्नीकु 'सहधर्मचारिणी' कह्यो जाय. तुम जो धर्म कर रहे हो वामें वो सहधर्मचारिणी हे. वो एक पहलु हे वाको.

वाही प्रकारको प्रकृति और पुरुष को सहधर्मचारिणी और सहधर्मचारी होवेके कारण, क्योंके अपन् वाके प्रोडक्ट् हे, वो गुण अपनेमें भी विकसित होवे के अपनी आत्मा कोई न कोई देहको सहधर्मचारण करे हे. अपनो देह अपनी आत्माकु एक प्रकारसु पतिकी तरह मानके वा आत्माके सामने समर्पित हो जावे. अब ममताके रूपमें वाकी अहंताको और आत्माकी अहंताके रूपमें देहकी ममताको कोई सहयोग हे के नहीं? यदि नहीं होय तो ये नाता निभे नहीं. यहाँ-तक भी कोई दोषकी बात नहीं हे. या तरहसु तो सब बन्यो ही हे.

(गुणदोषदर्शनकी दोषरूपता-अदोषरूपता)

यामें दोषकी बात कहाँसु आयी? दोनों मिलके जब-तक काम करें हे, वो अकेले खुदके लिए तो नहीं करे हें, दूसरेके लिए भी करे हें. वामें कोई दूसरेकु भी सफर होनो पड़े हे. वामें दूसरेकु खुश भी होनो पड़े. तब वहाँसु दोष पैदा होवे. दोष अपने आपमें पैदा नहीं होवे. समझो के मैं अपने ड्रॉईंगरूम्में शीर्षासन करके बैठ्यो भयो हूँ. यामें आपकु कोई प्रॉब्लेम् हो सके? पर जब आप मोसु

मिलवे आओ और आपसु मिलवेके लिए भी मैं शीर्षासनमें ही बैठ्यो रहूँ तो आपकु लगेगो के महाराजमें कोई दोष हे. "अरे! हम मिलवे आये और महाराज सीधे नहीं बैठके शीर्षासन क्यों कर रहे हैं?" कोई न कोई दोष तो वामें लगेगो. कोई भी दोष कौनसे अर्थमें दोष हे. जब कोई दूसरेकु वो स्वीकार्य नहीं हे, दूसरेकु सहन नहीं हो रह्यो हे या अर्थमें अपनो धर्म दोषरूप हो जाय हे. यदि दूसरेकु अपनो कोई स्वभाव स्वीकार्य होय तो वो ही अपनी क्रिया गुणरूप हो जाय. अपनी परिरचना या तरहकी हे.

यदि अपन् अकेले होते, जैसे ब्रह्म अकेलो हतो, तो न कोई गुण होतो न कोई दोष होतो. क्योंके गुण भी कोईके अपेक्षासु दोष हे. अपने आपमें तो न कोई गुण हे न दोष हे. याही लिए भागवतकार कहे हे के "**गुणदोषदृशि: दोष: गुणस्तु उभयवर्जित:**" (भाग.पुरा.११।१९।४५) कोईके गुण-दोष खोजनो ही सबसु बड़ो दोष हे. गुण-दोष नहीं खोजनो, ये सबसु बड़ो गुण हे. क्योंके जब गुण-दोष खोज रहे हैं तो अपन् वस्तुके नहीं खोज रहे हैं, अपितु वा वस्तुको मेरे साथ नाता-रिश्ता क्या हे? वाके आधारपे गुण-दोष खोज रहे हैं. वो नाता मोकु मान्य लगतो होय तो गुण हे. वो नाता-रिश्ता सहनीय नहीं लगतो होय तो दोष हे. जैसे बरसात पड़े, जगह-जगह गलीन्में कीचड़ हो जाय तो क्या मैंढककु दोष लगेगो, वाकु गुण लगेगो. अरे! ये ही तो मौसम हे टर्र-टर्र करवेको. पर अपनेकु वो दोष लगेगो. अब कीचड़में दोष हे के गुण हे. अपने-अपने ढंगसु निर्णय करें तो-तो अपन् अपनी आंखके अंधे हैं न! कुछ अंधे बिना आंखके होवे और कुछ आंखवाले अंधे होवें. तो जब अपन् अपनी आंखसु ही सारी चीजको निर्णय ले रहे हैं तो अपन् आंखवाले अंधे हैं. जब सबको विचार करके निर्णय ले रहे हैं तो वा गुण-दोषकी इतनी कीमत अपनेकु नहीं लगेगी. अपन्कु लगेगो के कोई भी क्रिया कोईके लिए गुण हे, कोईके लिए दोष हे.

तब जाके भागवतकारकी बात सच्ची लगे.

अब ये दोष और ये गुण कौनसे कॉन्टेक्स्ट्में हैं, अपने पर्सनल् कॉन्टेक्स्ट्में के समग्रताके कॉन्टेक्स्ट्में? पर्सनल् कॉन्टेक्स्ट्में जो मोकु गुण-दोष लग रह्यो हे, वाकु गुण-दोष माननो, दोष नहीं हे क्योंके यदि मैं वाके गुणकु गुण नहीं मानूंगो, यदि दोषकु दोष नहीं मानूंगो, तो मैं अपनो व्यवहार कैसे कन्ट्रोल् करूंगो. जैसे जहरमें एक दोष हे, खावेकी चीजन्में गुण हे. अब मैं गुण-दोष नहीं देखूं और जहर भी खाऊं और अनाज भी खाऊं तो ये गुण हे के दोष हे? मेरी आत्महत्याको कारण मैं स्वयं बन रह्यो हूँ. मेरे पर्सनल् कॉन्टेक्स्ट्में दोष देखनो दोष नहीं हे. पर समग्रताके कॉन्टेक्स्ट्में, क्योंके मोकु सारी बात तो दिखलाई देवे नहीं हे. *नंददास चातककी चोंच पुट सब धन कैसे समाये.* जितनो धन बरस्यो हे वो चातककी एक चोंचमें तो समावेवालो नहीं हे. वाकी जितनी चोंचकी मात्रा होयगी उतनो ही तो जल वामें समायगो. तो ये बात समझवेकी हे के समग्रताकी दृष्टिसु गुण-दोष देखनो, दोष हे और गुण-दोष नहीं देखनो गुण हे. जैसे अपने घरमें ड्राइंगरूम् हे, बॅड-रूम् हे, पूजाघर हे, वामें अपन् गुण देखेंगे. टॉइलेट्में दोष देखेंगे. अपने घर तक वो बात सच हे पर बात गामपे आप लागू कर पाओगे के गाममें श्मशान नहीं होनो चाहिए, गाममें गटर नहीं होनी चाहिए, गाममें गार्डन् होनो चाहिए. गाम हे तो सभी कुछ होयगो. जाकु आप व्यक्तिगत दृष्टिसु दोष मान रहे हो, वो समग्रताकी दृष्टिमें दोष नहीं हे. या बातकु भागवतकारने समझायो हे के "गुणदोषदृशिः दोषः गुणस्तु उभयवर्जितः" (भाग.पुरा.११।१९।४५) अपने दिमागकु खुलो रखवेकी आदत डालनी चहिये के मेरी दृष्टिसु जो गुण हे, वो गुण हे. मेरी दृष्टिसु जो दोष हे वो दोष हे क्योंके मेरी दृष्टि छोटी हे, मेरी आवश्यकता छोटी हे और मेरे व्यवहारको दायरा भी छोटो हे. इतनी विशालताकु मैं संभाल नहीं सकूं. पर समग्रताको

विचार करवेपे मेरी दृष्टिमें जो गुण हे वाको गुण होनो जरूरी नहीं हे. मेरी दृष्टिमें जो दोष हे वाको दोष होनो जरूरी नहीं हे. मेरी दृष्टिमें कीचड़ पैदा हो जाय तो दोष हे पर मैंढक और कमल की दृष्टिमें वो गुण हे. जल पीवेके मटकामें कीचड़ हो जानो दोष हे पर कमल खिलवेके लिए वो ही गुण हे. तो कहाँ वो चीज दोष हे, कहाँ गुण हे, याके लिए अपने दिमागकु खुलो रखनो आनो चहिये.

जब वो समयपे खुल नहीं पावे हे तो चक्कर क्या होवे हें के जैसे अपन् गाड़ी चला रहे हें तो जा बखत गियर् बदलनो होय और अपन् गियर् नहीं बदल पा रहे हें, फंसवेके कारण ब्रेक् लगानो चाह रहे हें पर वो लग नहीं रह्यो हे, फंस गयो हे. स्टीयरिंग्सु टर्न् लेनो चाह रहे हें पर वो फंस गयो हे, टर्न् नहीं ले पा रह्यो हे, तो वो ही गियर, वो ही ब्रेक्, वो ही स्टीयरिंग्-सिस्टम् दोष बन जाय हे. बड़े-बड़े म्युज़ियम्में, जैसे उदयपुरमें एक बाप-दादाके जमानाकी कार रखी भयी हे, वो चले नहीं हे पर दिखावेकु रखी भयी हें. वामें गियर लग्यो तो क्या और नहीं लग्यो तो क्या? वामें ब्रेक् लग्यो तो क्या, नहीं लग्यो तो क्या? वो तो रखी भयी हे वामें ये कोई गुण-दोष देखवेकी बात नहीं हे. एक चलती भई कारमें जो गुण-दोष हे, वो दूसरी कारमें गुण-दोष नहीं रेह जा रह्यो हे. उतने अपने खुले दिमागसु सोचनो बहोत जरूरी हे. उतनो भी दिमाग नहीं खोलनो के जा बखत हवा आती होय वा बखत अपने पास बारी भी नहीं रेह जाय. सारी भीत गिराके बिना खिड़की-दरवाजाके खंडहरमें रहे. अपने पास सारी व्यवस्था तो होनी चहिये के अपने घरमें अपनकु जितनी हवा-रोशनी चहिये वा हिसाबसु अपन् बारीकु खोल-बंद कर सकें. पर अपनकु बिना बारीके रूममें तो रहनो नहीं हे. क्योंके जो बारीमेंसु हवा-रोशनी मिलेगी वो आपके रूममें पैदा नहीं हो रही हे, वो तो बाहरसु ही आ रही हे. बाहर

यदि हवा नहीं हे तो भीतर कहांसु आयगी! बाहर यदि प्रकाश नहीं हे तो भीतर आयगो कहांसु.

(अहंता-ममताकी गुणधर्मरूपता)

अपनो घर जामें अपन् बारी और दरवाजा बना रहे हें, वो बाहरके वातावरणपे निर्भर करे. बाहरको वातावरण अपने घरमें आ जाय तो वो बाहरको वातावरण नहीं रेहके अपने घरको वातावरण हो जाय. वो फिर अपने घरको गुणधर्म बन जाय. अपने घरमें घुसी भयी लाईट्, अपने घरको गुणधर्म हे. बाहर वो लाईट्को उपादान हे. वाको एक कारण आपकु समझाऊँ के समझो के आपको एक रूम ऐसो हे के जामें लाईट् और हवा आ रही हे. वाके भीतरको एक रूम ऐसो हे के जामें ये दोनो नहीं आ रहे हें. पर वा रूम्कु लाईट् और हवा ये रूम् दे देगो के नहीं दे देगो? जब या कमरामें लाईट् और हवा आ गये तो भीतरके कमरामें वो प्रकाश और हवा कौन देगो? बाहरकी लाईट् नहीं देगी पर आपके घरमें घुसी भयी लाईट् और हवा वा रूमकु और अधिक हवा देगी. वहाँ आपकु सफोकेशन् नहीं होयगो. क्योंके ये रूम्की हवा वा रूम्कु मिल रही हे. वहाँ अंधेरा नहीं दिखेगो क्योंके या रूम्को प्रकाश वा रूमकु भी प्रकाशित कर देगो. ये सब छोटे-छोटे उदाहरण हें पर यासु आखी सृष्टिको स्ट्रक्चर् अपनेकु समझवेको हे.

अपनेमें वो ही प्रकृति और पुरुष आके अपनी अहंता-ममता बन जाय हें. वो अहंता-ममता अपनो गुणधर्म बन जाय हे और गुणधर्म बनवेके बाद अपने काम करवेको तरीका बने हे. वा तरीकामें सहज संभव हे जैसे हवाको एक जनरल् सिद्धान्त हे के कहाँ भी क्रॉस्-वॅन्टिलेशन् होय वहाँ हवा ज्यादा अच्छी आवे. जहाँ क्रॉस्-वॅन्टीलेशन् नहीं होय वहाँ हवाको झोंका नहीं आवे. हवा मौजूद तो रहेगी पर वाको झोंका नहीं आयगो. यदि झोंका चहिये होय तो क्रॉस्-वॅन्टीलेशन्की

आवश्यकता हे. यहाँसु हवा आ रही हे तो दूसरी तरफसु हवाके जावेको रास्ता दो तो आपकु घरमें भी हवाके झोंका मिलें, जैसे छतपे मिले. पर यदि अपनूने क्रॉस्-वॅन्टीलेशन् बंद कर दियो तो हवा तो मिलेगी पर वाके झोंका आने बंद हो जायेंगे. हवाको ये सिद्धान्त हे. ऐसे ही अपनी अहंता-ममताके जो झोंका भीतर आ रहे हें, उन झोंकान्के कारण अपन् जो-जो काम कर रहे हें, यदि अपने दिमागमें क्रॉस्-वॅन्टीलेशन् हे तो वो झोंका यहाँसु आयो तो वहाँसु निकल जायगो और नहीं निकलेगो तो भर्यो रहेगो.

(अहंता-ममताकी व्यवहाररूपता)

यदि भर्यो रहेगो तो घरमें सीलन होयगी. सीलन होयगी तो भीतकु नुकसान होयगो. वाके बाद तो चामाचिड़िया आके उल्टी लटकेगी. 'चामाचिड़िया'को मतलब के जाकी उलट खोपड़ी होय! चामाचिड़िया आके वहाँ लटके जहाँ प्रकाश और हवा नहीं हे. जा बखत अपनी अहंता अपनी चेतनामें भर गयी और वहाँ कोई क्रॉस्-वॅन्टीलेशन नहीं हे, जा बखत अपनी ममता अपने जीवनमें भरा गयी और वाको कोई क्रॉस्-वॅन्टीलेशन् नहीं हे, तो सीलन आयगी, वॉल् डॅमेज् होयगी, दीमक लगेगी, चामाचिड़िया आयगी. सारे उपद्रव वहाँ होंयगे. क्योंके "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः" वहाँ जाके अपनी अहंता-ममता, 'अहं-क्रिया' हो जाय हे, 'मम-क्रिया' बन जाय हे. वो वाको फंक्शन् बन जाय हे. अपनी अहंता-ममताको गुण अपनेमें फन्क्शन् बन जाय हे. जैसे कानकी बूटीको जो गुण हे, वो वाको फन्क्शन् बन जाय के वाकु कानमें पहर्यो जा सके हे. वाकु नाकमें अथवा कमरमें नहीं पहर्यो जा सके हे, केवल कानपे ही पहर्यो जा सके हे. अब वाको जो गुणधर्म हे, वो वाको फन्क्शन् बन गयो. जैसे ही वो फन्क्शन् बन्यो, बस वहींसु लफड़ा शुरु होवे. क्योंके फन्क्शन् अकेले तो होवे नहीं हे अपने आपमें. समझो कोई योगी मुनि गुफामें अकेले समाधि लगाके बैठे भये हे तो वामें कौनकु बुरी

लगेगी? बुरी न लगके वाके प्रति शुद्धभाव जगेगो. पर घरमें कोईकु मिलवे जायें और हमसु मिलवेके समय भी वो घरमें उल्टे खड़े होके समाधि लगाये भये हे तो अपनेकु निर्णय करनो मुश्किल हो जाय के चामाचिड़िया इनकी अवतार हे के ये चामाचिड़ियाको अवतार हे! कौन कौनको अवतार हे ये निर्णय कर पानो मुश्किल हो जाय. आये भये आदमीकु अपमान लगे. क्यों अपमान लगे? क्योंके वो अब गुणधर्म नहीं रेहके व्यवहार हो गयो. अपनो गुणधर्म, अपनो व्यवहार बने तो वहाँसु अपनो गुण-दोष पैदा होवे. अब जैसे मैनें आपकु बतायो के कोई भी गुणधर्म ऐसो नहीं हे के जो सबके लिए दोष होय. कोई चीजके लिए कोई चीज गुण हे, कोई चीजके लिए वो दोष हे.

(चेतना-जीवनके सन्दर्भमें गुण-दोषकी लुका-छिपी)

ये बात अहंता-ममताके लेवल्सु लेके चेतना-जीवनके सन्दर्भमें अपन्ने शुरु करी हती. मैनें आपकु कल भी याही लिए बतायो हतो के कई बखत चेतना भी दोषरूप हो जाय और कई बखत जीवन भी दोषरूप हो जाय. कोई बखत जीवन चेतनाकु चाहे और कोई बखत चेतना जीवनकु चाहे. जैसे कॅन्सर्को मरीज जो रोगमुक्त नहीं हो पा रह्यो हे तो वो बेहोश होनो चाहे के "भई! मोकु तकलीफ बहोत हो रही हे, मेरी चेतनाकु सुला दो." तो हो गयी न चेतना दोषरूप और जीवन भी कभी गुणरूप होवे हे.

(सुख-दुःखकी मॅनेजमॅन्ट् : पुरुषार्थव्यवस्था)

जैसे जिनकु अपन् पुरुषार्थ केह रहे हें. धर्म-पुरुषार्थ, अर्थ-पुरुषार्थ, काम-पुरुषार्थ, मोक्ष-पुरुषार्थ. वाके तीनों तरहके लेवल् भी आपकु बताये. लौकिक अलौकिक और शास्त्रीय. अपने सुख-दुःख हें वाको कारण खोजवेपे पता चल्योके सुख-दुःख अपन्कु धर्मके कारण हो रह्यो हे, अर्थके कारण हो रह्यो हे, कामके कारण हो रह्यो हे,

मोक्षके कारण हो रह्यो है. 'पुरुषार्थ'को सीधोसो मतलब हे के अपने सुख-दुःखकु ठीकसु मॅनेज् करनो. How to manage your feelings of pain and plesure. सुख-दुःखकु कैसे मॅनेज् करनो, याके लिए पुरुषार्थ-व्यवस्था रखी गयी. सो ये चार पुरुषार्थ सुख और दुःख के मॅनेजमेन्ट्के लिए आये, दुःखाभावके मॅनेजमेन्ट्के लिए आये.

(अहंता-ममताकी दोषरूपता)

पर होवे क्या हे के जैसे अपन् अपने घरके गंदे कपड़ा धोबीघाटपे साफ करवेके लिए भिजवावें तो घरको कपड़ा तो साफ हो जाय पर धोबीघाट गंदो हो जाय. क्योंके सारो कचरा वहां ढोल्यो जा रह्यो हे. ये चार पुरुषार्थ अपने सुख-दुःखकु तो मॅनेज् कर लें पर उनमें कोई प्रकारको सुख-दुःखको कचरा इकट्ठो हो जाय. वो सुख-दुःखको कचरा क्यों इकट्ठो होवे? जैसे अपनेकु कोई धर्माचरण करनो हे, तपको दानको जपको सेवाको भक्तिको यज्ञको योगको, तो वा बखत अपनी अहंता-ममता कायम हे के नहीं? समझो के अपनी अहंता-ममता कायम नहीं हे तो अपन् धर्माचरण कैसे कर सकेंगे? कोईकु यदि दान देनो हे तो वाकु वाकी अहंताकी जरूरत हे के नहीं? अहंता होयगी तो ही तो वाकु लगेगो के मोकु दान देनो चहिये. ममता होयगी तभी तो वो अपनी ममतामेंसु दान देगो. ममता ही नहीं होयगी तो वाकु लगेगो के अपने पाससु दऊँ दान के दूसरेके पाससु. कोई आदमी दूसरेकी पॉकिट् मारके दान दे रह्यो हे तो दान देनो तो धर्म हे पर दूसरेकी पॉकेट् मारके वो ही दान दुःखको कारण हो गयो. तुमकु दान देनो धर्म लग रह्यो हे तो अपने धनमेंसु दान दो तो कोईकु क्या आपत्ति हो सके! जब दूसरेको चुराते बखत तुम पकड़े जाओ तो कहो के "हमकु अपने लिए नहीं, दूसरेकु दान देवेके लिए चहिए." तुमकु लगे के ये दानकी ही तकलीफ हे. अरे! हवेलीन्की भी ये ही तकलीफ हे. तुमकु अन्नकूट धरनो हे, केसरको हिंडोला करनो हे तो गामकी

पॉकिट् क्यों मार रहे हो! तुमकु तुम्हारे ठाकुरको लाड़ लड़ानो हे तो जेब दूसरेकी काट रहे हो. ये लफड़ा क्या हे? अपन् समझें के ये धर्मार्थकाममोक्षमें लफड़ा होवे हे, ये अपने दैनिक व्यवहारमें लफड़ा होवे हे. ऐसो ही नहीं हे, ऐसे लफड़ा भक्तिमें भी तो हो रहे हें. कोईकु नहीं करनी हे तो भी "नहीं, आज्ञ तो देनो ही पड़ेगो." यहाँ हे के नहीं, पता नहीं पर हमारे मुम्बईमें ऐसो हे के पहले गणेशजी कोई एक गलीमें आते. अब हर गलीमें दो-दो गणेशजी आवें क्योंके मंडलीन्की आपसमें कॉम्पिटीशन् हे. अब तुमने अपने कॉम्पिटीशन्के लिए दो गणेशजी पधराए और पैसा सब घरन्सु वसूलो. "अरे! हमकु गणपति नहीं पूजनो हे भाई मेरे." अपन् समझें के ये दुनियाकी बात हे, ऐसी बात नहीं हे. भक्तिमें भी ये ही बात आ रही हे. तुमकु कुछ करनो हे, वाकेलिए कोईके जेबमें हाथ डालो?

हमारे परिचित बम्बईकी लोकल् ट्रेन्में जा रहे हते. अचानक ऐसो लग्यो के कोईने उनके खीसामें हाथ डाल्यो. उनने अपनो हाथ डाल्यो तो वहाँ कोई दूसरेको हाथ. तो उनने पूछीके "भई तुमने मेरे खीसामें हाथ क्यों डाल्यो?" तो वाने कही के "यही देख रह्यो हतो के कौनके खीसामें मेरो हाथ चल्यो गयो." "अरे! तुमकु इतनी खबर नहीं पड़े के ये कौनको खीसा हे." ये सब सुख-दुःखके कारण बने हें. जब तुमकु इतनो पता नहीं चल रह्यो हे के हाथ कौनके खीसामें जा रह्यो हे तो मतलब तुम्हारो जीवन हे पर चेतना खतम हो गयी.

बम्बईमें एक ज्योतीन्द्र दवे हास्यलेखक हते. वो बता रहे हते के बम्बईकी लोकल् ट्रेन्में वो मुसाफिरी कर रहे हते. बाजुमें बैठे आदमीने उनकी जांघ खुजलानी शुरु करी. थोड़ी देर तक तो उनकु भी मजा आयी. जब वो मान्यो ही नहीं और बहोत खुजलातो

रह्यो और छिलवे लग्यो तो बोले ''अरे भई! अब मत खुजलाओ'' वाने कही ''क्या बात हे?'' तो वो बोले ''अरे! तुम मेरी जांघ खुजला रहे हो.'' तो वाने कही ''अब-तक क्यों नहीं बोले?'' तो उनने कही ''खटमल तो मोकु भी काट रहे हें. पर अब तुमने ज्यादा खुजला दियो. यालिए मना कर रह्यो हूं.'' ये सब क्या हे के चेतना नहीं हे और ममता भी या तरहसु गड़बड़ा रही हे. ये मत समझो के ये कथा उनकी ही हे. ऐसे व्यवहार अपन् सबसु होवें. कभी कोई गंभीर स्थितिमें अपनी आत्म-चेतना भी डल् पड़े हे. कभी अपनी ममता भी डल् पड़ जावे हे. वा बखत अपनी अहंता-ममता दोषरूप हो जावे हे. कर्ममार्ग यदि करनो हे तो जैसे मैनें आपकु बतायो के दान देवेके लिए मेरेमें अहंता तो होनी चहिये के ''दान देनो मेरो धर्म हे.'' मोकु ममता होनी चहिये के ''मेरे द्रव्यसु ही मैं दान करूं.'' यदि मेरे द्रव्यपे ममता ही नहीं हे तो दान केहवायगो वो? जब तुमकु ममता ही नहीं हे तो तुम वा द्रव्यकु वापरवेवाले तो हते ही नहीं. ममता ही द्रव्यमें नहीं हे और वाकु दे रहे हो तो वो दान नहीं केहवाके 'त्याग' केहवावे. दान और त्याग में अंतर क्या? जा चीजमें आपकी ममता हे, फिर भी आप वाकु कोईकु दे पा रहे हो तब वो दान हे.

कन्यादान कब केहवावे? जब बापकु बेटी प्यारी लगती होय तो. बेटीने इतने तूफान किये होंय के बाप बकरा ही खोज रह्यो होय के कौनके माथे याकु मढूं, तो वो कोई कन्यादान केहवायगो? ऐसे ही पैसा या जो द्रव्य आपकु अपनो नहीं लग रह्यो हे, वाकु आप यदि कोईकु दे रहे हो तो वो आपको दान नहीं हे. वो तो आप फेंक रहे हो. जाकी तरफ फेंक रहे हो, वाकु आप कूड़ा-करकट समझ रहे हो. कचराको डब्बा समझ रहे हो. जब आपकु भोगनो हे और फिर आप यदि कोईकु दे रहे हो तो ही वो सचमुचमें दान हे. प्रिय वस्तुको दान दान हे. अप्रिय वस्तुको

दान तो दान हे ही नहीं. प्रत्येक व्यक्ति अप्रियकु छोड़नो चाहे ही हे. *वो अफसाना जिसे अंजाम तक लाना न हो मुमकिन, उसे उस खूबसूरत मोड़पे छोड़ना अच्छा* तो वाकु तो छोड़ ही देनो चहिये.

(अहंता-ममताकी साधकता-बाधकता)

कर्ममार्गमें यदि कर्म करनो हे तो ''ये कर्म करवेको मेरो अधिकार है'' ऐसी अहंता करनो कोई बुरी बात नहीं हे. ''ये मेरो कर्म हे, या कर्मकु मैं करूँगो'' ऐसो समझवेमें कोई बुराई नहीं हे. कोई ऐसो समझे के ''ये मेरो कर्म हे'' और कोई ऐसे समझे के ''ये मेरो कर्म नहीं हे, मेरेपे कहींसु आ पड्यो हे और मोकु मजबूरीमें करनो हे'' तो वा कामकु वो कैसे करेगो? वा कामकु करवेके लिए वो गामभरकु बुलायगो. मूल कारण के वो वाकु 'मेरो कर्म' नहीं समझ रह्यो हे. अपने यहां राजस्थानमें ऐसे बहोत होतो हतो के जिन बड़े लोगनकु एकादशी नहीं करनी होती हती, वो ब्राह्मणकु बुलाके रुपया दे देते और कहते के ''तुम एकादशी करो'' खुदकु करनी नहीं हे एकादशी. खुदकु खानो होय तो क्या ब्राह्मणकु बुलाके करवा रहे हो? खानो खुदकु हे पर भूखो कोईकु नहीं रेहनो. वाके लिए ब्राह्मणकु खोजते हते. अब ब्राह्मणन्ने वो धंधा बना लियो. जो अपनकु अच्छो लगे हे वो तो अपन् खुद करे हैं. जाकु अपन् अपनो कर्म नहीं माने हैं, वो अपन् दूसरेसु करवावें. जो कर्म अपन् कर रहे हैं वामें अपनी ममता हे और ममता अपनी अहंतासु निरूपित हे. अपनी अहंता वा ममतासु निरूपित हे. कर्ममार्गमें अहंता-ममताको कितनो बडो रोल् हे, अपन् समझ सकें. जैसे ब्राह्मणकु जनोई लेनी चहिये. अरे! ब्राह्मणके पुत्र होवेकी अहंता होयगी तो ही तो वो जनोई लेगो. यदि अपनी ब्राह्मणके पुत्र होवेकी अहंता ही नहीं हे तो काहेकु जनोई लेंगे. अब जनोईके लिए तो कोई कोईकु दक्षिणा नहीं दे रह्यो हे. कल तो फिर ऐसो भी हो सके के ''अभी

अपनुकु मरनो नहीं हे. दक्षिणा ले लो और तुम मर जाओ." कोई होयगो मरवेकु तैयार? जो मोकु प्रिय काम हे वो तो मैं स्वयं ही करूंगो. जा काममें ऐसो लग्यो के ये मेरे नहीं हे पर करनो पड़ेगो, फिर अपन् गामकु खोजें के याकु कौन करेगो? स्कूल्-कॉलेज्के हजार-हजार पेपर्स् एक-एक अध्यापकके पास आवें चॅक् करवेके लिए. तो वाकु कैसे जांचे. वाकु भी तो जीनो हे. वो क्या करे के अपने शिष्यनुकु बुलावे और कहे के तुम चॅक् कर दो, साइन् मैं कर दूंगो. अब इतनी संख्यामें पेपर्स् आ जायें के वो जांच ही नहीं सके. वामें पास् होवेवालो फेल् होवे और फेल् होवेवालो पास् हो जाय. क्योंके पढ़वेवालो तो वाही तरहसु जांचेगो. पेपर जांचनो कितनो त्रासप्रद हे, वो तो कोई पेपर जांचतो होय वाकु ही पता चले. अपन् तो लिखके आ जायें के अपनने सारे पॉइन्ट्स् लिख दिये. सप्लिमेंटरी भी भर दी. अरे भई! वा जांचवेवालेपे क्या गुजरेगी, वो तो सोचो. जनकभाईने हमकु बताई के गुजरात हाईकोर्टमें भी ऐसो होवे के जजकु जजमॅन्ट् लिखनो नहीं आवे तो वो वकीलन्सु सेटींग् कर ले, कौन ज्यादा पैसा दे. जो वकील ज्यादा पैसा दे वो वाको जजमॅन्ट् लिख दे. वापे जज् साइन् कर दे. आदमीकु जो कर्म प्रिय नहीं लगतो होय, वाकु करवेके लिए दूसरेकु खोजे हे.

सब लोग कहे हें के मैं पुष्टिमार्गमें क्रांति करनो चाहूं. अरे! मैं क्रांति नहीं, पुष्टिमार्गमें फैली भयी भ्रांतिकु दूर करनो चाहूं के यदि तुमकु सेवा जंच रही हे तो स्वयं करो. नहीं जंच रही हे तो मत करो पर दूसरेसु करवावेको लाभ क्या? स्वयं तो करनी नहीं हे, दूसरेसु करवा रहे हो. ठाकुरजीकु तुम क्या केहनो चाह रहे हो वाकेद्वारा. यही के तुम कोई इल्लतकी तरह हमारे गले पड़ गये हो. मोसु अच्छी सेवा तो तुम्हारी बनेगी नहीं. चलो मुखिया भीतरिया जलघडिया फूलघरिया रख दें तुम्हारी सेवाके लिए और

तो क्या कर सकें? यदि लगतो होतो के ये ठाकुरजीकी सेवा मेरी हे तो कोईकु वो काहेकु सोंपते! जो हो सके वो अपन् स्वयं करें. जो नहीं हो सके तो नहीं करें. सीधीसी बात हे. मैं कोई क्रांतिकी बात नहीं कर रह्यो हूँ. पर भ्रांतिकी बात कर रह्यो हूँ के या भ्रांतिसु अपनकु उबरनो चहिये. या ॲन्गलसु यदि अपन् देखें तो अपनी सेवामें अपनी अहंता-ममता कितनी साधक हे. क्योंके अपनी अहंताके कारण ये देह अपनो लग रह्यो हे. वा चेतनाकी अहंताके कारण ये जीवन अपनो लग रह्यो हे. अपनो लग रह्यो हे, तो ही तो अपन् वाकु ठाकुरजीके लिए वापरनो चाह रहे हें. ठाकुरजीमें भी वो अपनत्वको संदेश जायगो के जाकु ये अपनो मान रहे हें, वासु ये मोकु लाड़ लड़ा रहे हें. जाकु मैं अपनो मानतो हतो वाकु तो अपने उपयोगमें लानो चहिये हतो. जैसे बच्चाके पास अपन् खिलौना बिछा दें के ये तेरो खिलौना हे, ये दूसरे बच्चाको खिलौना हे. अब वो बच्चा तो दोनों खिलौनासु खेलेगो. दूसरो बच्चा जाको वो खिलौना हे, वो रोयगो. मतलब वा बच्चाको वा खिलौनाके प्रति अपने होवेको भाव तो हे. वो भाव कैसे पैदा भयो. क्योंके बड़ेन्ने एक खिलौना याकु दियो हे और एक वाकु दियो हे. तो जो वाकु मिल्यो, वाकु बच्चा अपनो खिलौना मान रह्यो हे. बच्चा सोचे के या खिलौनासु मैं खेलूंगो, दूसरो क्यों खेले? उतनो तो बच्चा भी समझे पर हम गोस्वामी बालक नहीं समझे. हम गोस्वामी बालक क्या समझ रहे हें के तुम्हारो पैसा हे, कोई बात नहीं वासु भोग हम धर देंगे. अरे मेरे पैसासु आप क्यों भोग धर रहे हो! प्रश्न तो होयगो पैदा. यदि तुमकु लग रह्यो हे के ठाकुरजीकु अन्नकूट भोग धरनो अच्छी बात हे. तो खुदके पैसासु धरनो चहिये. नहीं हे तो मत धरो. ठाकुरजी क्या अन्नकूटको भूखो हे? मोकु बीकानेरके एक भाईने पूछी के "ठाकुरजीकु इतनो माखन क्यों भावे हे? हर समय माखनकी ही बात होती हे के माखनचोर वगैरहा-वगैरहा." मैंनें कहीके "आपकु गलतफहमी

हे, वाकु माखन भावे ही नहीं हे. आपके घरके ठाकुरजीकु तो आप जो चौपड़ामें हिसाब लिख रहे हो, वो भावे हे. वो तो नंदरायजीके घरमें पैदा भये हते जहां माखन बहोत हतो. वा घरकु ठाकुरजीने सोच्यो के ये मेरो घर हे यालिए ठाकुरजीकु माखन भायो. आपके यहां माखन नहीं, मैंने मनमें कही कि आप जो चोपड़ा लिख रहे हो, ब्लॅक्-व्हाइट्का वामें ठाकुरजी ये ही सोचते होंगे के या ब्लॅक्में मेरो हिस्सा हे के खाली व्हाईट्में ही हे. ठाकुरजीकु माखन नहीं भावे, ठाकुरजीकु आप भाओ हो, यदि आपकु ठाकुरजी भाते होंय तो. यदि आप भाते हो तो जो आपकु भावे हे वो ठाकुरजीकु भी भावे हे. वो नंदराजजीके घर प्रकटे हते. उनकु माखन प्रिय हतो यासु ठाकुरजीकु भी प्रिय हतो." रामचन्द्रजीने कहां माखनकी जिद की? वामनने कहां माखनकी जिद की? नृसिंहने कहा माखनकी जिद की? हां, नृसिंहजीने हिरण्यकशपुकी जिद की के तोकु खाऊँ. माखन कहां खायो! प्रभु जा वातावरणमें अवतीर्ण होवे हें, वा वातावरणकु वे अपनो मान रहे हें. बालक प्रभुकु घरमें बिराजते भये भी अपनो नहीं माने. बहाना क्या के "अहंता-ममता मिथ्या हे." महाप्रभुजी केह रहे हें के संसार मिथ्या हे यालिए अहंता-ममता मिथ्या हे ऐसी बात कौनके मोंहसु अच्छी लगेगी? ज्ञानीके मोंहसु अच्छी लगेगी.

यदि ज्ञानी कहे के कौन अहम् और कौन मम. वाके ज्ञानमें एक शोभा आ जाय, चमक आ जाय. जैसे बरतन मांज दें, जमीन पोत दें तो वामें चमक आ जाय. ऐसे ज्ञानीको जो ज्ञान हे वामेंसु अहंता-ममताको कचरा यदि निकाल दो तो वामें एक चमक आवे. ऐसो ज्ञान जामें वाकी अहंता-ममता नहीं बोल रही हे. पर कर्ममें ऐसो नहीं हे. वामें तो अपनी अहंता-ममता रखनी पड़ेगी के ये कर्म मैं करूँगो, ये मेरो कर्म हे. तो कर्ममें अहंता-ममता बाधक नहीं हे. पर ज्ञानमें वो बाधक हे. भक्तिमें साधक हे. वो ही अहंता-ममता बाधक नहीं हे पर साधक बन जा रही हे. वा अहंताके कारण

ही आप सोच रहे हो के "मैं कृष्णकी शरणमें हूं." अपनी ममताके कारण आप सोच रहे हो के कृष्ण मेरे घरको ठाकुर हे. आप ऐसे सोच रहे हो के मेरे ठाकुरकी सेवा मोकु करनी हे. अब ये अहंता-ममता साधक हे के बाधक हे? साधक हो गयी.

फरक कहां पड़ रह्यो हे के आपकी अहंता-ममता यदि भक्तिमयी हे तो भक्तिमें वो साधक होयगी और यदि आपकी भक्ति अहंता-ममतामयी हे तो वो बहोत खतरनाक सिद्ध होयगी. जैसे दूरबीनकु अपन् यों लगावें तो दूरकी चीज पास दिखाई देगी पर उल्टो लगावें तो पासकी चीज भी दूर चली जाय. ऐसे अपन्ने उल्टो कियो के अहंता-ममताकु भक्तिमयी बनावेके बजाय, भक्तिकु अहंता-ममतामयी बना दी तो अपनो भगवान् भी अपनसु दूर चल्यो जाय. फिर वो पास नहीं दिखे. क्योंकि भगवान्को तो प्रवेश ही वर्जित हे वहाँ. भगवान्कु तो भक्तिकी दूरबीनसु पास लायो जा सके. भक्तिकी दूरबीन हे आपके पास, तो भगवान् आपकु आंखके साम्ने हाजिर दिखेगो. पर भक्तिकी दूरबीन भी आपने उल्टी लगाई तो *मरना भी मोहब्बतमें कुछ काम न आया* ऐसी दुर्गति हो जायगी. क्योंकि आप अपनी भक्ति अहंता-ममतामयी कर रहे हो.

याके लिए महाप्रभुजी कहे हें के "जीवाः स्वभावतो दुष्टाः" वहां जीवको स्वभाव-दोष काम कर रह्यो हे. स्वरूपको धर्म काम नहीं कर रह्यो हे. एक बात समझो के एक उपादानरूप अहंता-ममता हे जाकु चेतना और जीवन अपन् केह रहे हें. एक गुणधर्मरूप अहंता-ममता हे, जाकु अहंता-ममता केह रहे हें और एक कार्यरूप अहंता-ममता हे. जो कोईके लिए अच्छी, कोईके लिए खराब. कोईके लिए साधारण, कोईके लिए असाधारण. कोईके लिए सुखद, कोईके लिए दुःखद. कोईके लिए क्लेशप्रद तो कोईके लिए सुखप्रद हो सके हे. वहाँ अपनकु हर समय ये विचार करनो पड़ेगो के भगवान्के

सन्दर्भमें अपन् कैसी जातकी अहंता-ममता रखें के भक्तिको जो प्रोग्राम् हे, वामें भगवानुकु बाधक नहीं लगे. वो उनकु कांटाकी तरह चुभे नहीं बल्कि अपनी अहंता-ममताकु वो वा तरहसु रॅलिश् करें के भई ये तो बहोत अच्छी चीज हे. वामें वो चुभन बंद हो जानी चहिये. आपने अक्सर देख्यो होयगो के जो सीढी बनावें वाकी नोक अक्सर चुभे. तो पत्थर लगावेवाले क्या करें के वा नोककु घिसके थोड़े गोल कर दें. तो वो चुभनी बंद हो जाय. ऐसी अपनी अहंता-ममताकु थोड़ो फ्लेट् या गोल करनो आनो चहिये, उतने ॲन्गल्में के जा ॲन्गल्में वो चुभती बंद हो जाय.

सीढ़ी बनावेवाले चतुराई वापरे हें ऐसी चतुराई अपनकु भी वापरनी आनी चहिये. या बातकु महाप्रभुजी समझानो चाह रहे हें के "**पंडित जीत्यो वो तो अच्छो कियो पर अहंता-ममता मत करियो. जहां अहंता करेगो वा चीजको नाश हो जायगो.**" वो कौनसो अहंकार, एक उपादानरूप अहंकार, एक गुणधर्मरूप अहंकार और एक व्यवहाररूप अहंकार. ये व्यवहाररूप अहंकारकी बात महाप्रभुजी केह रहे हें. ये बात उपादानरूप अहंकारकी नहीं हे क्योंके उपादानरूप अहंकार ब्रह्मके चिदंशमेंसु निकली भई चेतना हे. और प्रकृतिसु निकलो भयो वो तमोगुण हे, वो तो उपादानभूत हे. वो ही सदंश अपने शरीरमें पंचतन्मात्रा बन रही हे, वाके बाद पंचमहाभूत बन रही हे. वो ही सच्चिदानंद ब्रह्मको जो चित् हे, वो छुट्टो पड़के अपने शरीरमें चेतना बन रही हे. अब वो अपनो गुणधर्म रहवेके बजाय अपने व्यवहारको ॲन्गल् हो गयो. अब वो चेतना, अपनी चेतना हो गयी. वो बहोत क्षुद्र लेवल्की चेतना हे और ये बहोत क्षुद्र लेवल्को अपनो शरीर हे. वो बहोत क्षुद्र लेवल्के अपने पंचमहाभूत हे. बाहरकी दुनियामें कितनी तन्मात्रा हे. अपने शरीरमें तो बहोत कम हे, पर वो कम होवेके बावजूद उनके व्यवहारको जो दायरा हे वो भी क्षुद्र हे. वो क्षुद्र होवेके कारण कोईकु चुभे हे, कोईकु

नहीं चुभे हे. जो वा दायरामें समाविष्ट नहीं होतो होय, वाकु वो चुभेगो. पडौसीन्के झगड़ा काहे बातके होवें? तुमने अपने घरकी जो कम्पाउन्ड्-वॉल् बनायी और वो वाकु नड़ नहीं रही हे तो वो झगड़ा नहीं करेगो. जा बखत दो पड़ौसी भाईचारासु रहते होय तो कम्पाउन्ड्-वॉल्की जरूरत ही नहीं हे. अमेरिकामें कोई घरमें कम्पाउन्ड-वॉल् नहीं होवे. करोड़न् रुपयाके बंगला होवे पर कम्पाउन्ड्-वॉल् नहीं होवे. भाईचारासु रेह रहे हें. याकी जरूरत कहाँ पड़े के जहाँ कुछ झगड़ाकी आशंका होय. जहां झगड़ाकी आशंका नहीं हे, वहाँ याकी जरूरत ही नहीं हे. अमेरिकामें क्यों जरूरत नहीं हे क्योंके या प्रश्नकु लेके उनके पास फुरसत नहीं हे, या उनकी आदत नहीं हे. अपनेकु फुरसत भी हे और आदत भी हे. अपनो कानून भी या बातपे अपनेकु चढ़ातो रहे हे. अब यदि स्नेह हे तो कम्पाउन्ड्-वॉल् बनानी ही नहीं चहिये और यदि बनानी हे तो उतनी के जो दूसरेकु ऑब्जेक्शनेबल् नहीं हो जाय.

ऐसे यदि अपन् कोईसु प्रेम कर रहे हें जैसे माता-पिता अपने बच्चासु करें, भाई-भाई करें, पति-पत्नी करें, दो पडौसी करें उन सबके बीचमें वो ही नियम लागू होयगो के आप अपनी अहंता-ममताकी कम्पाउन्ड-वॉल् ऐसी रखो के या तो उनको वामें समावेश कर सको या आपकी अहंता-ममता उनके एरियामें ॲक्वायर् करवेके लिए न चली जाय. जब उनके एरियामें नहीं घुसेगी आपकी अहंता-ममता तो फिर कोई झगड़ाकी बात ही नहीं होयगी क्योंके व्यवहार ही नहीं हे. ऐसे अपन् जा प्रभुकु भजनके लिए स्वीकार कर रहे हें, वा प्रभुके अनुकूल अपनी अहंता-ममताकी कम्पाउन्ड्-वॉल् बना रहे हें के प्रभुके कुछ एरियाकु अपने खातामें डालवेके लिए अपन् अपनी कम्पाउन्ड्-वॉल् बढा रहे हें. केहवेसु तो ऐसो लगे के इनकी अहंता-ममताकी कम्पाउन्ड्-वॉल् इतनी बड़ी हो गयी के ठाकुरजीकु भी पचा गये. भेंट आयी हती ठाकुरजीके नामकी और खा कौन रह्यो हे? खुद.

अभी एक बालकने बहोत मजेदार प्रवचन कियो हे. वो कहे के हम वैष्णवन्के घर जावे हें तो कोई हमारी भेंट लेवेके लिए थोड़े ही जावें! ठाकुरजीकी भेंट लेवेकु जावें क्योंके ठाकुरजी हमारे माथे बिराज रहे हें और सेवक होवेके नाते हमारो धर्म हे के ठाकुरजीकी भेंट वसूलनी चहिये सबसु. चलो अच्छी बात हे, पर ठाकुरजीकी भेंट सवा रुपया या ग्यारह रुपया और खुदकी भेंट पांच-हजार रुपया! खुलासा तो करो के काहेके लिए जा रहे हो. वे पांच-हजार ठाकुरजीके लिए कर दो, सवा रुपया खुद लेके आ जाओ. जो पधरावनीमें सवा रुपया भेंट धरेगो वाके यहाँ बालक जायगो नहीं. ठाकुरजीकी सवा रुपया भेंट लेयगो, वो लेवेके बहाने खुदकी पांच हजारकी भेंट इकट्ठी कर आयगो. या तरहसु जब तुम कर रहे हो तो पता कैसे चले के तुम्हारी अहंता-ममताकी कम्पाउन्ड्-वॉल् कितनी बड़ी और ठाकुरजीकी कितनी छोटी के सवा रुपयाकी भेंट! ठाकुरजीके लिए तुम मांगवे गये हो तो सवा रुपया क्यों मांग रहे हो, डेढ लाख मांगो. इतनी खुबसूरत बात कही वामें के "याही लिए तुम देखते होओगे के ठाकुरजीकी भेंटकु हम हाथ नहीं लगावें, कपडाकी आड़में लेवें." खा जायें भले पर छूवेंगे नहीं. ये तो अद्‌भुत लीला हो गयी. "**नमो भगवते तस्मै कृष्णाय अद्‌भुतकर्मणे, रूपनाम-विभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः**" (त.दी.नि.१।१) हम ठाकुरजीकी भेंटकु हाथ नहीं लगावें, पेटमें डाल सकें. मतलब अहंता-ममताकी कम्पाउन्ड्-वॉल्में लफड़ा हे. वो जितनी होनी चहिये उतनी न हो के अपने एरियासु ज्यादा एरिया घेर लियो हे. वा बातकु महाप्रभुजी केह रहे हें के "**जीवाः स्वभावतो दुष्टाः**" जीवस्वभावसु ये दोष हो गयो हे. क्योंके वो अपनी कम्पाउन्ड-वॉल् बढ़ावेके चक्करमें लग्यो ही रहे हे. जरा कोई गाफिल रह्यो और तुम बढ़ाओ.

("पंडित तो जीत्यो" : गुणधर्मात्मक अहंकार)

याके लिए महाप्रभुजी केह रहे हें के "पंडित जीत्यो" वहां

तक तो बात ठीक हे क्योंके ब्राह्मण हो शास्त्रार्थमें तो जीतनो ही चहिये. महाप्रभुजी पत्रावलम्बनके अन्तमें स्वयं आज्ञा कर रहे हें के **''डिण्डिस्तु वादितो द्वारि विश्वशेस्य मयात्र हि विद्वद्भिः सर्वथा श्राव्यं ते हि सन्मार्गरक्षका:''** (पत्रा.३८) ''ये मैनें शास्त्रके अर्थको नगाड़ा विश्वनाथजीके मंदिरके द्वारपे बजायो हे. याकु सब पंडित सुनो और मोसु शास्त्रार्थ करो.'' अपन् ब्राह्मणन्को काम शास्त्रार्थ करनो हे. आजकल 'शास्त्रार्थ' शब्द बदनाम हो गयो. पुराने जमानामें शास्त्रार्थ ब्राह्मणको कर्तव्य हतो. हम उड़िपी गये. श्रीमध्वाचार्यकी जयंती हती. उनके यहां एक हजार व्यक्ति प्रसाद ले हें. बिके नहीं हे प्रसाद. वहां उलूखलसु बंधे भये ठाकुरजी हें. वे उनके मुख्य स्वरूप हें. उनके यहांको नियम ऐसो हे के प्रतिदिन एक हजार व्यक्तिकु प्रसाद लिवायो जाय, कोई भी जाति-धर्मके होवें. मतलब मुसलमान ईसाई सब खा सकें. विद्यार्थी खाली सौ होंय हे और बाकीके आये गये दर्शनार्थी वैष्णव. वे सब प्रसाद लें. प्रसाद बिके नहीं हे. अच्छी बात हे कोई छीना-झपटीकी बात नहीं हे. पर यासु भी अच्छी बात मोकु ये लगी. एक बार आचार्यन्को टर्न आयो तो उनने मोकु बुलायो के आप आओ. मैं गयो. वा बखत मैनें देख्यो के जब सबने प्रसाद ले लियो तो सब साथ बैठ गये और कही के शास्त्रार्थ करो. काहेको? जो कछु श्रीमध्वाचार्य लिख गये वो शास्त्र हे. वाको अर्थ करनो, वो शास्त्रार्थ हे. क्योंके शास्त्रको तुम अर्थ करोगे तो तुमकु समझ आयगी के तुमकु क्या समझनो हे. अर्थ किये बिना तुमने शास्त्र पढ्यो तो शास्त्र कहां जान्यो? जैसे इतने सालनूमें भी, देखवे लायक बात हे के पुष्टिमार्गमें षोडशग्रंथके पाठके खूब पुस्तक छपे हें. पढ़ते भी होंयगे लोग. जो नहीं करे वो क्या? षोडशग्रंथके शास्त्रको अर्थ. गुड़ गुड़ पाठ कर जायें. पाठ करवेसु फायदा क्या? जब के वाको अर्थ नहीं समझे. अर्थ तो पता ही नहीं हे. ये शास्त्रार्थ नहीं करवेके कारण अपनी मति भ्रष्ट हो गयी. मति भ्रष्ट होवेके कारण अपने भाव भ्रष्ट हो गये. क्योंके

भाव मतिसु कंट्रोल्में आवे. भाव और मति भ्रष्ट होवेके कारण अपनी कृति भी भ्रष्ट हो गयी. अब बताओ "**जीवाः स्वभावतो दुष्टाः**" हे के नहीं? स्वरूपतः दुष्ट नहीं हे, पर जा तरीकेके स्वभावमें अपन् फंस गये हैं. 'स्वभाव' मानें आदान-प्रदान. मेरी चेतनासु अपनी ममताके साथ कैसे आदान-प्रदान कर रह्यो हूँ, वा आदान-प्रदानको जो अपनो तौर-तरीका हे, वा तरीकामें अपनूकु शास्त्रको अर्थ पता नहीं हे. शास्त्रीय भाव अपने दिलमें हे नहीं. शास्त्रीय कृतिके हिसाबसु अपनो आचरण नहीं हे. तो अब लफड़ा तो होयगो ही पैदा.

वालिए मैंने आपकु ये बात कही के राणा व्यासकी कथा सिर्फ राणा व्यासकी कथा नहीं हे, वो अपन् सबकी कथा हे. वामें ॲपीसोड् अलग हे. अपनो कुछ अलग होयगो क्योंकि महाप्रभुजीके काल तक ब्राह्मणन्में ये दम हतो के वे ऐसी ॲम्बीशन् रखते हतें. जैसे आज हम ब्राह्मण लोग एम.बी.ए. करवेकी रखते होंय, कई सी.ए. बनवेको शौक रखते होंय, कोई एल.एल.बी. करवेको रखते होंय. पुराने ब्राह्मण ऐसे नहीं सोचते हतें. पुराने ब्राह्मण कहते हतें के शास्त्रको अर्थ करो. आपसमें मिलते तो ऐसे नहीं पूछते के "तुम ठीक हो, स्वस्थ हो." एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणकी स्वस्थता पूछे मतलब वो वाकु मूर्ख समझ रह्यो हे. नहीं तो क्या पूछतो वो के "आपकी शास्त्रचर्चा चल रही हे? शास्त्रको चिन्तन-श्रवण-मनन चल रह्यो हे?" दूसरो जवाबमें कहे के "हां, चल रह्यो हे" मतलब स्वास्थ्य ठीक हे. ब्राह्मणको एक-दूसरेकु अभिनंदन करवेको ये प्रकार हतो. वा बखत शास्त्रार्थ होते हते. इन राणा व्यासकु वो फितूर हे मनमें के "मैं ब्राह्मण हूँ और शास्त्रार्थ करनो हे." सो अपने ब्राह्मण होवेके अहंके कारण शास्त्रार्थ करवेको पैदा भयो भाव, अच्छो भाव हे. वामें कोई बुरी बात नहीं हे.

("अहंकार मति करियो" : अहंकारको विकृत-अविकृत स्वरूप)

पर शास्त्रार्थके बाद ये अहंकार करनो के देखो हमने कैसे जीत

लियो! वो गुणधर्मकी बात न रहके फन्क्शन्की बात हो गयी. यासु ही महाप्रभु यहां केह रहे हैं के "**पंडित तो जीते पर अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो, सोई वस्तुको नास होइगो.**" इतनो महाप्रभुजीको वचनामृत हे. क्यों नाश होयगो, या बातकु ध्यानसु समझो.

अपन् देख चुके हें के अपनो अहंकार कोई बहोत बड़ी व्यवस्थाको कोई क्षुद्र पार्ट हे. कौनसी बड़ी व्यवस्था हे? ब्रह्मके सच्चिदानंदसु शुरु भयी चेतना जीवनके रास्तासु गुजरती भयी, एक बहोत बड़ी व्यवस्था हे. वो सिकुड़ते-सिकुड़ते अपनेमें एक अहंकारकी क्रिया बन रही हे. अपनी ममता ब्रह्मकी सत्ताको बहोत बड़ो पार्ट हे. जामें कोई दोष नहीं हे, कोई गुण-दोषको विचार नहीं हे क्योंकि एकाकी व्यवस्था हे, वामें गुण क्या और दोष क्या? गुण-दोष तो कोईके कम्पेरिज़न्में होवे. जहां कोई पॉइन्ट् ऑफ् कम्पेरिज़न् नहीं हे तो वहां न कोई गुण हे और न कोई दोष हे. जो हे सो हे. जैसे संस्कृतमें कहावत हे के *देवदत्तस्य एकः पुत्रः, सैव ज्येष्ठः सैव कनिष्ठः* देवदत्तको एक ही बेटा हे. बड़ो बेटा कौन हे? वो ही. छोटो कौन? छोटो भी वो ही हे. जहां दो बेटा होय वहां बड़े और छोटे को सवाल होवे. जहां एक ही हे वामें बड़ौ कौन और छोटो कौन? आजकी मानसिकतामें अपनूकु बड़े-छोटेको बहोत फरक नहीं पड़ रह्यो हे. पुराने जमानामें बड़े-छोटेको बहोत फरक हतो. जैसे प्रथम पत्नी 'धर्मपत्नी' केहवावे. वाके बाद जितनी पत्नी लाओ वे सब धर्मपत्नी नहीं होवें. वे सब भार्या होवे. पत्नी और भार्या में अन्तर यही हे के 'धर्मपत्नी'को अर्थ हे जो तुम्हारे धर्मकी पार्टनर् हे. 'भार्या' मतलब जाकी जिम्मेदारी तुमने उठा ली हे, पत्नी जैसी. वो धर्ममें पार्टनर् नहीं हे. ऐसे बड़े बेटाकु धर्ममें पार्टनर् मान्यो जातो. बडे बेटाकु धर्मको प्रोडक्ट् मान्यो जातो हतो. दूसरे सारे बेटा; धर्मके नहीं, कामके प्रोडक्ट् मानें जाते हतें के तुमकु और बेटा चहिये

तो और पैदा करो. धर्मकी आवश्यकता तो एक बेटासु पूरी हो जाती हती. दूसरे सब बेटा कामपुत्र होते हतें. शास्त्र कहे हे के वे सब तुमने अपनी दूसरी आवश्यकतासु पैदा किये. धर्मकी आवश्यकता केवल एक पुत्रकी हे. ऐसे ही पहली पत्नी धर्मपत्नी हे और बाकी सब भार्या हें. वो तुम्हारी जिम्मेदारी हे पर वो तुम्हारी धर्मपत्नी नहीं हे. बड़े बेटाको वा जमानामें बहोत ज्यादा महत्त्व हतो. आज तो इतनो रह्यो नहीं. बड़ो बेटा यदि श्राद्ध करे तो छोटेकु श्राद्ध करवेकी जरूरत नहीं हे. बड़ो बेटा यदि अपने भाइनकु संभालतो होय तो शास्त्र कहे हे के वा बड़े बेटाकु पिता तुल्य मानो. भले ही वो तुम्हारो भाई हे. यदि वो संभालतो नहीं होय तो छोटे बेटाकु श्राद्ध करवेको अधिकार हे. वो अपन् समझ सके के बड़े बेटाको क्या रोल् हतो!

वा ही तरहसु ब्राह्मणनकु यों लगतो हतो के शास्त्रार्थ करनो तो हमारो धार्मिक रोल् हे. जब ये रोल् लग रह्यो हे तो वामें कोई बुरी बात नहीं हे पर जीतवेके बादको अहंकार छोटो बेटा हे. वो कामके कारण हे, धर्मके कारण नहीं हे. शास्त्रार्थ करनो ब्राह्मणको धर्मको स्वभाव हे. वामें जीतवेकी इच्छा करनी वो शास्त्रार्थकी प्रकृति नहीं हे. तुम शास्त्रको अर्थ करनो चाह रहे हो के सामनेवालेकु जीतनो चाह रहे हो? यदि तुमकु शास्त्रार्थ करनो हे, तुम हारो के वो हारे, वो जीते के तुम जीतो वासु अधिक फरक नहीं पड़े. क्योंके तुम दोनोंको एक ही उद्देश्य हे के शास्त्रको सच्चो अर्थ क्या हे? आओ मिल-बैठके विचार करें, वाको नाम 'शास्त्रार्थ'. पर तुम्हारे मनमें फितूर हे के सामनेवालेकु खोटो सिद्ध करूं और मेरो पौवा सच्चो सिद्ध करूं. वा जीतकी इच्छाकु संस्कृतमें वाद नहीं केहके 'जल्प' कह्यो जातो.

तीन तरहके शास्त्रार्थ होवें. वाद जल्प और वितंडा. 'वाद'को

अर्थ, सामनेवालेकु जीतवेकी कोई ख्वाईश नहीं हे. केवल सच्चाई क्या हे, वो अकेले नहीं जान सके तो दो जने चर्चा करके जानेंगे के यामें ये सच्चाई हे. तुम जो केह रहे हो वामें ये गलती लग रही हे. क्योंके अपनी गलती अपन्कु नहीं दीखे हें, तो दूसरो आदमी गलती दिखा सके. दो व्यक्ति अथवा दस व्यक्ति मिलके कोई शास्त्रार्थ कर रहे हें तो वो 'वाद' हे. पर यदि शास्त्रार्थपे तुम्हारो ध्यान नहीं हे पर या बातपे ध्यान हे के तुम मूर्ख हो और मैं विद्वान हूं तो वाकु शास्त्रार्थ नहीं केहके 'जल्प' मानें बकवाद कह्यो जाय. एक वाद होवे और एक बकवाद होवे. पहले लोग शास्त्रार्थ करवेसु पहले ही आपसमें बैठके ये निश्चय कर लेते के वाद करनो हे के जल्प करनो हे के वितंडा करनो हे. 'वितंडा'को अर्थ क्या? वो ये के हमारो मत या विषयके बारेमें कुछ भी नहीं हे. केवल एक ही मत हे के तुम खोटे. तुम्हारो मत क्या हे, वो हमकु पता नहीं हे पर हमारो मत साफ हे के तुम खोटे हो. बिना अपनो मत प्रकट किये सामनेवालेकु गलत सिद्ध करनो. वो वाद भी नहीं हे, जल्प भी नहीं हे पर वितंडा हे. क्योंके जीतवेकी इच्छा रखवेके लिए भी तुमकु अपनी बात तो रखनी पड़ेगी. दूसरेकी बातकु तुम ना पाड़ रहे हो तो तुम क्या केहनो चाह रहे हो? तो कहे के हम तो कुछ केह ही नहीं रहे हें, केवल इतनी बात केह रहे हें के तुम खोटे हो.

अभी एक सॅमिनारमें मैं गयो हतो. वहां ब्राह्मणकु बहोत गालियें पड़ रही हतीं. ''ब्राह्मणने दलितन्पे बहोत अत्याचार कियो. ये कियो वो कियो. अब इन ब्राह्मणन्की बदमाशी देखो के अपनो रिज़र्वेशन् कॅन्सल् करवानो चाह रहे हें और बहोत सारे ब्राह्मण भी अपने आपकु नीची जातिको दिखाके लाभ ले रहे हें.'' मैंनें उनकु कही के ''यदि तुम रिज़र्वेशन् करा रहे हो तो तुम जातिवादकु ही तो पुष्ट कर रहे हो. क्योंके रिज़र्वेशन् कौनके सामने, ब्राह्मणके सामने.

फिर जातिवादकु कौन बढावा दे रह्यो हे? यदि तुम केह रहे हो के रिज़र्वेशन् देनो हे, तो ये क्या हे? आज ब्राह्मणन्‌की इतनी ताकत भी नहीं रही हे के बोल सके के जातिवाद सच्चो हे. अब तुम केह रहे हो के रिज़र्वेशन् होनो चहिये तो जातिवादके सच्चे होये बिना रिज़र्वेशन् होयगो कैसे? तुम केह रहे हो के जातिवाद ब्राह्मणन्‌ने प्रचलित कियो तो यामें जीत्यो कौन? जीत तो पाछें ब्राह्मण गये. ऐसो तो मत करो कमसु कम. रिज़र्वेशन् जातिके आधारपे नहीं बल्कि आर्थिक व्यवस्थाके आधारपे होनो चहिये. वहाँ तक तो बात सच्ची हे. कोई भी गरीब होय वाकु रिज़र्वेशन् मिलनो चहिये. पर यदि तुम केह रहे हो के जातिके आधारपे होनो चहिये तो सिस्टम्‌कु प्रोमोट् कौन कर रह्यो हे? एक जमानामें ब्राह्मण कर रहे हते. अब उनकी हिम्मत पस्त हो गयी. अब तुम वाकु प्रोमोट् कर रहे हो. अपनकु विरोध करते-करते कुछ पता ही नहीं चले. ये वितंडा हे के ब्राह्मणन्‌ने जातिवाद खोटो प्रोमोट कियो हे. हम नहीं मानेंगे. यासु रिज़र्वेशन् होनो चहिये. बात तो वो की वो ही हो गयी न! तुम ब्राह्मणन्‌कु खोटो केह रहे हो. तुम भी तो वो ही केह रहे हो. तो या बातकु समझवेकी आवश्यकता हे. पुराने जमानामें शास्त्रार्थ तीनों तरहके होते हते, वादशैलीके जल्पशैलीके और वितंडाशैलीके. अक्सर जल्प और वितंडा, विकृत अहंकारके कारण होते हते. और वाद अविकृत अहंकारके कारण होते हते. जब अहंकार अविकृत हे तब जो चर्चा होयगी वो वाद होयगो.

(अहंता-ममताकी उत्तरोत्तर विकृति)

और अहंकार विकृत काहेसु होवे? जब भी अपने छोटे अहंकारकु ठेस लगती होय तो क्रोध आवे. काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य ये जो छह: विकार मानें गये हैं, वामें सबसु पहले क्रोध मद ये सब अहंकारके उत्तराधिकारी हे. शुरुआत होवे 'मैं'सु. जब वा 'मैं'कु ठेस पहुंचे तब क्रोध आवे. कभी क्रोध सफल होवे कभी

क्रोध विफल होवे. जब क्रोध विफल हो जाय तो अपनूकु मात्सर्य हो जाय. जो क्रोधको फल होनो चहिये वो तो अपन् ला नहीं सके और अपन् क्रोध छोड़ भी नहीं सकते होंय तो अपनो अहंकार फिर मात्सर्य बन जाय. क्रोध सफल होवे तो मद बन जाय. अहंकार क्रोध मात्सर्य और वाके बाद मद ऐसे वाकी दोषरूपता आवे. और या बाजु जैसे ममतामें सबसु पहले काम जगे. जो मेरो हे वो मेरेलिए हे. वा कामके कारण वामें लोभ जगे के जो मेरेलिए हे, वो मेरे ही लिए हे. जैसे 'मैं हूँ' अहंकार हे और 'मैं ही हूँ' ये मद हे. और 'मैं ही हूँ और कोई हे ही नहीं' ये मात्सर्य हो गयो.

या बाजु ममता काम बने. जाकु मैं मेरो समझतो होऊँ वो 'मेरे लिए' वापरनो चाहूँ. जाकु ''मेरे लिए'' वापरनो चाहूँ वाके लिए मोकु मोह पैदा होवे. मोह पैदा होवेके बाद यदि वो मोकु नहीं मिले तो जलन पैदा होवे. वहां जाके अपनो ममकार रावण बन जाय. वो ममता, ममता न रेहके काम-लोभकी सीढ़ी पार करती भयी पुनः मात्सर्यपे पहोंच गयी. यहां आके जो सहज हतो वो दोषरूप बन जा रह्यो हे. गुजरातीमें एक बहोत अच्छी कहावत हे *जे पोषे ते मारे* मार्ने जो चीज अपनी पोषक हे वो ही चीज अपनूकु मारे हे. याकी खूबसूरती देखो के घी पोषक हे के नहीं? घी मारे भी हे. शक्कर पोषक हे के नहीं? जरा भी शुगर कम हो जाय तो आदमी चक्कर खाके गिर जाय. शुगर भी मार रही हे. नौन पोषक हे के नहीं? हे पोषक पर मार भी रह्यो हे. तो जो चीज पोषक हे वो ही मारे भी हे.

(अनुपातको विवेक पोषकरूप और अविवेक मारकरूप)

जीवन और मरण क्या पोषक हे और क्या कुपोषक हे, वापे निर्भर नहीं करे हे. पोषणको अनुपात क्या होनो चहिये, वापे निर्भर

करे हे. आपकु सॅन्स् ऑफ् प्रपोर्शन् हे के नहीं? या अनुपातमें हे तो पोषक हे और वो अनुपातमें नहीं हे तो कुपोषक हे. जितनी कॅलोरी आप ले रहे हो उतनी यदि उपयोगमें ला रहे हो तो वो पोषक हो जाय. और यदि कॅलोरी बढ रही हे तो वो ही कॅलोरी मारक भी हो जाय.

यालिए अपने यहां ब्रह्मकी परिभाषामें ही ये बात केहदी के ब्रह्म काहेको नाम हे? जासु जगत् पैदा होवे, जो जगत्को पोषक हे और जो जगत्को मारक हे. अब वा ब्रह्मकी संततिमें सारी बात आ रही हे. चेतना और जीवन ब्रह्मकी संततिमें आ रह्यो हे. चेतना पोषक भी हे और मारक भी हे. जीवन पोषक भी हे और मारक भी हे. कॅन्सर्को शरीर हो गयो तो जीवन मारक हे. एच.आई.वी. हो गयी तो जीवन मारक हे. जो जीवनको पोषक हे, वो ही जीवनको मारक भी होवे. जब चेतना और जीवन अपनी निजी अहंता-ममताके रूपमें आ रही हे, वो पोषक भी हे और मारक भी हे. अहंता-ममता धर्मके बजाय जा बखत अपनो व्यवहार बन रही हे, वो पोषक भी हे और मारक भी हे. न कोई चीज पोषक हे और न कोई चीज मारक हे. यदि अनुपात पता होय तो जहर भी अमृत हे और अनुपातको ख्याल नहीं होय तो अमृत भी जहर हे. वा बातकु समझावेके लिए महाप्रभुजीने कही के **"पंडित तो जीते पर अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो, सोई वस्तुको नास होइगो."** क्योंके जो पोषक हे वो ही अब नाशक हो जायगो.

(अहंता-ममताके ब्राह्मिक विचारसु भक्तिमार्ग)

ये बात केहवेकी महाप्रभुजीकु आवश्यकता क्या हे? समझवेकी बात हे. अपने घरसु निकलती गंदी नाली, गंदी नाली हे. अपने घरमें आती भयी ताजी हवा, ताजी हवा हे. अब यामें कौनसी

खास बात हे. बात गंदी और ताजी की हे. गंदी नाली जा बखत जाके खाद बन जा रही हे, वा बखत पोषक हो जा रही हे. तो जो चीज पोषक हे वो मारक हे, जो मारक हे वो पोषक हे. इतनी अपनी दृष्टिमें व्यापकता आवे तो ब्रह्म दिखे और ब्रह्म दिखे तो ये सब गुण-दोष ब्रह्मकी लीला हे, ये दिखे. गुण भी ब्रह्मकी लीला हे और दोष भी ब्रह्मकी लीला हे. ये दोनों ब्रह्मकी लीला हे या तरहको अपनो बोध जगे तो अपनी ब्रह्मके प्रति भक्ति जग सके. नहीं तो ब्रह्मकी भक्ति करवेके बजाय या तो अपन् अपनी अहंता-ममताके कारण अपनो कुछ कर्म करते रहेंगे अथवा यदि अहंता-ममताकु निभा नहीं सकते होंय तो ज्ञानमार्ग स्वीकार कर लेंगे. छोड़ो ये अहंता-ममता, ये बहोत तकलीफ दे रही हे. न कुछ मैं हूँ, न कुछ मेरो हे. पर जा बखत अपनूकु लीलाको बोध हे, या हो सकतो होय तो वा बखत न तो अपनूकु कर्मकी इतनी आवश्यकता हे, न ज्ञानकी आवश्यकता हे. जो लीलाबोधमें आवश्यकता हे वो हे लीलाकी मजा लेवेकी के क्या-क्या लीला भगवान् कर रह्यो हे! कहीं गुणकी लीला हो रही हे, कहीं दोषकी लीला हो रही हे, कहीं देवकी लीला हो रही हे, कहीं दानवकी लीला हो रही हे, कहीं पुण्यकी लीला हो रही हे, कहीं पापकी लीला हो रही हे. जो कुछ हो रह्यो हे, वो प्रभुकी लीला ही हे. एक बखत अपनी यदि व्यापक दृष्टि भयी, ये बात समझ लो के ज्ञानीसु ज्यादा व्यापक दृष्टि भक्तकी हे. ज्ञानीकी दृष्टि इतनी व्यापक नहीं हे. कर्मीकी अपेक्षा ज्ञानीकी दृष्टि व्यापक हे. क्योंके कर्ममार्ग अपनी अहंता-ममताकु पकड़के चल रह्यो हे. ज्ञानमार्गी अपनी अहंता-ममताकु छोड़ रह्यो हे. या छोड़वेके कारण वाकी दृष्टि व्यापक हो रही हे. पर वासु ज्यादा व्यापक, अपनी अहंता-ममताकु छोड़े बिना, सबकी अहंता-ममताके ब्राह्मिक होवेको विचार करके जो मार्ग चल रह्यो हे, वा मार्गको नाम 'भक्तिमार्ग' हे. वा भक्तिमार्गमें कोईकी अहंता-ममता अपनकु चुभेगी नहीं, अपनी अहंता-ममता भगवानकु नहीं

चुभेगी. लीलामें सबकी अहंता-ममता एक-दूसरेके अनुरूप हो जायें. सब अपनो-अपनो रोल् कर रही हे. विभीषण वाको रोल् अदा कर रह्यो हे. रावण, रावणको रोल् अदा कर रह्यो हे. कुंभकरण, कुंभकरणको रोल् अदा कर रह्यो हे. लक्ष्मण अपनो रोल् अदा कर रह्यो हे. हनुमानजी, हनुमानजीको रोल् अदा कर रहे हे. बस राम-लीला चल रही हे. राम-लीला बंद कब होवे के जब कोई भी एक ॲक्टर् अपनो रोल् अदा नहीं करे तब.

मैनें आपकु एक कथा सुनाई हती के रामलीलाके डायरेक्टर्ने रावणके प्रति अन्याय कर दियो. जब सीता स्वयंवरमें धनुषभंग होवेवालो हतो तो रावणने धनुष तोड़ दियो और कही लाओ सीता कहां हे? अब रामलीला तो गड़बड़ा गयी. तब जनक राजा वहां बैठे हते. उनने अपने नौकरनूकु फटकार लगायी के "अरे! ये कौनसो धनुष ले आये, बच्चानूके खेलवेको. शिवजीको धनुष लाओ." शिवजीको धनुष आयो तब रामलीला पाछे चल गयी. नहीं तो वा तबक्कापे तो रावणने रामलीला खतम कर ही दी हती. यदि शिवधनुषकु रावण तोड़ दे रह्यो हे तो रामलीला टूट गयी. शिवधनुष नहीं टूट्यो हे, या बातकु समझो. तो रामलीला चलावेमें जितनो रामको काम हे, उतनो ही रावणको भी काम हे के वो धनुष न तोड़े. हरियाणाकी रामलीलामें भी ऐसे ही कह्यो जाय के हनुमानजी गये और बोले "अरे रावणा, सीता देणी कि नहीं देणी", रावणने कही "नहीं देणी." हनुमानजी बोले "कैसे नहीं देणी" रावणने कही "अरे लगाओ ये बन्दरकी पूंछमें आग." हनुमानजी बोले "अरे नहीं लेणी तू ही रख ले." ऐसो हनुमान यदि लंकामें जाय तो रामलीला कैसे चले! बंद हो जायगी रामलीला. सो हनुमानकु हनुमानको काम करनो हे. या रहस्यकु समझो के रामलीला रामके भरोसे ही नहीं चले हें, हनुमानके रावणके कुंभकरणके जनकके जितने भी रामलीलाके कॅरेक्टर्स हें, उन सबके भरोसे रामलीला चल रही हे. जो भी हो रह्यो

हे वो रामलीला ही कर रह्यो हे.

ऐसे ही ब्रह्मके अद्वैतमें जो भी कुछ द्वैतलीला हो रही हे; मेरी अहंताकी आपकी अहंताकी, याके ममताकी, वाके ममताकी, वे सब ब्रह्मकी लीला हे. या बातसु अपनी दृष्टि विशाल हो जाय तो भक्तिको मूड अपनो निभ जाय. और यदि ऐसो होय के याकु जला दऊँ, खतम कर दऊँ, तो वो ज्ञानमार्ग हो गयो अथवा कर्ममार्ग हो गयो पर भक्तिमार्ग नहीं रह्यो. यालिए महाप्रभुजी केह रहे हें के "जो तूने शास्त्रार्थ कियो वो तो मैंने तोकु जितवा दियो. पर अहंकार मति करियो. जा वस्तुको अहंकार करेगो वो वस्तु नाश होयगो." आज इतनो केहके अब याको आगेको विचार कल करेंगे.

[३]

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न : अहंताके बारेमें जो भगवदीयनूके पद आवें के "हों राजनो खासाखवास, हमारे श्रीविठ्ठलनाथ धनी, भरोसो दृढ़ इन चरनन् केरो" चंदा बाईकी वार्तामें आवे के "मेरे तो विठुलनाथ धनी हैं" हरिदासजी बनियाकी वार्तामें आवे के वो राजा जैमलकु बोले के "जारे जैमल्या" ये सब बातें अहंकारको स्वरूप हे या दृढ़ताको? अहंकार और दृढ़ता को भेद क्या?

(अहंकारकी गुण-दोषरूपता)

उत्तर : जगह-जगह देखें तो भगवान् गीतामें अहंकारकी निंदा कर रहे हैं, वो ही भगवान्ने जितनी निंदा करी हे वासु दुगनी अथवा तीनगुनी गीतामें अपनो अहंकार प्रकट कियो हे. बांचे तो अपनूकु लगे के तुम इतनो अहंकार कर रहे हो तो थोड़ो हमकु भी करवे दो. "**अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयः तथा**" (भग.गीता ७।६) "**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च**" (भग.गीता ९।२४) "**अहमेव अक्षयः कालः**" (भग.गीता १०।३३) जितनो अहंकार भगवान्ने कियो हे गीतामें उतनो तो कोई आदमी नहीं कर सके हे. सवाल ये नहीं हे के हरेक अहंकार दोषरूप हे.

ये ही बात मैं आपकु समझानो चाह रह्यो हूं. अहंकार दोषरूप कब होवे जब अपनो अहंकार अपने मार्गमें आड़े आतो होय अथवा कोई दूसरेकु चुभतो होय. जो भी मार्ग अपन्ने अपनायो; कर्मको ज्ञानको भक्तिको चोरीको डकैतीको, वामें यदि अपनो अहंकार आड़े नहीं आ रह्यो हे तो वो अहंकार दोषरूप नहीं हे, कमसु कम वा मार्गके लिए. मार्ग दोषरूप हो सके पर वा मार्गके लिए वो अहंकार दोषरूप नहीं हे क्योंके वो मार्गके आड़े तो नहीं आ रह्यो हे. अब वो अहंकार मार्गमें आड़े आ रह्यो हे के नहीं, ये तो

अपने मार्गकी और अहंकारकी तासीर समझें तो ही पूरी तरह समझ सके हें. जो मैने कल आपकु बतावेकी कोशिश करी के कर्ममार्गमें कैसे अहंकार साधक हो जाय, ज्ञानमार्गमें कैसे वो अहंकार बाधक हो जाय. भक्तिमार्गमें अहंकार परम-साधक हो जाय. और अहंकारमय भक्ति हो गयी तो बाधक हो जायगो. वा ॲन्गल्सु जा बखत अपन् देखें तो पता चले के मार्गको अपनो एक स्वभाव हे. वा मार्गमें अपनो अहंकार साधक हो रह्यो हे के बाधक हो रह्यो हे. बाधक हो रह्यो हे तो छोड़वे लायक हे. यदि साधक हो रह्यो हे तो वो अहंकार छोड़वेकी कोई जरूरत नहीं हे. ऐसे ही अपनो अहंकार यदि कोईकु चुभ नहीं रह्यो हे, तो कितनो भी अहंकार होय वामें कोई बुरी बात नहीं हे. और थोड़ो भी अहंकार हे पर कोईकु चुभ रह्यो हे तो बुरी बात हे. अपन् मूलमें अहंकार करें काहे के लिए हें? कोईके साथ भी व्यवहार करवेके लिए अपन् अपनो एक पग जमानो चाहे हें. जैसे आपकु एक कदम उठानो हे तो दूसरो कदम जमानो पड़ेगो. दोनों कदम तो एक साथ उठेंगे नहीं. एक कदम जमाके ही तो दूसरो कदम उठा सके हें. जा बखत अपन् अहंकारको कदम उठा रहे हें तो वा बखत अपनकु ये सोचनो चहिये के अहंकारको उठ्यो भयो कदम कोईकु लात तो नहीं लगा रह्यो हे? कोईकु ठेस तो नहीं पहोंचा रह्यो हे. या बातको निर्णय अपन् अकेले कैसे कर सकें?

देखो एक बात बताऊँ के मैं तोकु देख रह्यो हूँ, ये तोकु दीख रह्यो हे के नहीं? अब यदि मैं गरदन मोड़े बिना अपनी आंख दूसरी तरफ कर लूँ तो तोकु पता चलेगो के नहीं के मैं तोकु देख नहीं रह्यो हूँ. मैं तोकु देख रह्यो हूँ के नहीं ये तोकु आंखसु ही तो दिखे. ऐसे मेरे व्यवहारमें, मेरे भावमें, मेरे आकारमें **"आकारैः इंगतैः गत्या चेष्टया भाषणेन च, नेत्रवक्त्रविकारैः च गृह्यते अन्तर्गतं मनः"** (मनुस्मृ.८।२६) अहंकारको एक आकार होवे, वो अपने

मनमें ही हे, ऐसी बात नहीं हे. अहंकारके कुछ इशारा होवे. अहंकारके कारण चलवेमें भी एक छटा आवे हे. जैसे आप टी.वी.में देखते होओगे के मोदी चले हे तो वामें अहंकार दिखे हे के नहीं! राहुल चले वामें दिख रह्यो हे अहंकार? वाकु सब 'पप्पू' केह रहे हें तो बेचारेकु अहंकार भी नहीं होवे. सब लोग हर-हर मोदी करें तो वाकु अहंकार हो जाय. अहंकारकी कुछ चेष्टा भी होवे. वो चुप नहीं रेह सके. वाके संभाषणमें बोलवेकी टोनूमें भी फरक पड़े हे. अहंकार अपनी आंखनूमें भी झलके. चेहराके हाव-भावमें भी अहंकार झलके हे. जो आदमी आपसु बात कर रह्यो हे, वो आपकी ये सब बात देख-महसूस कर रह्यो हे के नहीं. वाकु अपन् भी देख रहे हें के नहीं? ऐसी बहोत सारी बातें अपनेकु केहवेकी जरूरत नहीं हे, बिना कहे पता चले हे. अपनुकु ही पता चले हे ऐसी बात नहीं हे, जानवरकु भी ये बात पता चले. कभी रास्तेमें चलते-चलते कुत्तासु आंख मिलाके घूर-घूरके चलो. तुरंत वो गुर्रावे लग जाय. आंख नहीं मिलाओ तो वो अपने रस्तापे चल्यो जाय, कभी गुर्राएगो नहीं. जब जानवरकु भी पता चले तो मनुष्यकु कैसे नहीं पता चलेगो! पर अपने अहंकारमें अपन् इतने तल्लीन हो जायें के कोईकु कैसो लग रह्यो हे, वाकी दरकार अपन् करें ही नहीं हे. जैसे मैं आपके सामने प्रवचन कर रह्यो हूं. कोईसु पूछ नहीं रह्यो हूं पर मोकु चेहरा देखके पता चले के कौनकु मजा आ रही हे और कौनकु नहीं. जरूरी नहीं हे के आप 'वाह-वाह' करो मुशायराकी तरह. आप शांतिसु बैठके सुन रहे हो तो भी मोकु इतनी समझ तो पड़े हे के कौनकु मजा आ रही हे, कौनकु नहीं. कौन मेरी बातसु असंमजसमें पड़ रह्यो हे और कौन सॅटिस्फाइड़ हो रह्यो हे. वो तो आपके भीतरकी बात हे पर मोकु आंखसु दिखलाई दे हे. और वो मोकु ही दिखलाई दे ऐसी बात नहीं हे, आप भी यदि या तरहसु देखनो शुरु करो तो आपकु भी दिखाई देयगो.

दिल्लीसु ऑल् इंडिया रेडियोकी एक ऑफिसर् बात करवे आई हती. वाके आनेके थोड़ी देर पहले ही मैंने एक बोनसाई तैयार करी. वो मोसु राग-रागिनी और शास्त्रीय संगीतज्ञन् के बारेमें कुछ चर्चा करवे आयी हती. मेरो मूड़ वो बात करवेको हतो नहीं, क्योंके मेरो काम अधूरो छूट गयो हतो. पर आ गई तो अधूरो छोड़नो पड़्यो. वासु बात करतो जाऊँ और जो मेरी अधूरी बोनसाई हती, वाकु निरखतो जाऊँ. कोई पांच-सात मिनट मैंने ऐसो व्यवहार कियो तो वो समझ गयी. बोली "अच्छा! आपके यहां बोनसाई बहोत अच्छे हें." झक मारके फिर मोकु वासु बात करनी पड़ी क्योंके वाने मेरी दुःखती नस दबा दी. वाने देख लियो के मैं वाकी बातमें रुचि कम और बोनसाईमें अधिक रुचि ले रह्यो हूँ. बस वाने टॉपिक् चेन्ज् कर दियो. आदमी जाने हे वो टॅक्नीक् के या तरहसु कोई बेध्यान होय तो *पलट तेरा ध्यान किधर हे* कैसे केहनो. ये कोई बहोत बड़ो टॅक्नीकल् इश्यु नहीं हे क्योंके कोई भी व्यक्ति स्वयं आके यों तो नहीं कहेगो के "मैं अहंकारी हूँ?" न ही अपनी प्रोफाईल्में ऐसे लिखेगो. वो लिखे के नहीं लिखे पर देखवेवालेकु पांच-दस मिनटमें ही अंदाज़ लग जावे हे के ये व्यक्ति अहंकारी हे अथवा नहीं हे और यदि वो व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके चेहराकु पढ़ सके तो तुरंत वो अपने अहंकारकु थोड़ो छोटो कर दे. यदि अपने अहंकारमें बोलतो ही चल्यो जाय तो तो वो अहंकारकी मस्तीमें आ गयो. वो कथा अलग हो गयी.

ये बात अपन् अपनेमें ही नहीं, जानवरन्में भी पावे हें के हर जानवर दूसरेकु देखतो रहवे हे, वाकी शक्तिको परीक्षण करतो रहे हे. बहोत सारे जानवर पोज़ीशन् ले लेवें, दूसरे जानवरके दीखते ही, क्योंके उनकु सावधान रेहनो पड़े हे. कभी भी पेड़पे चिड़िया बैठी भयी होय, वाके पास जाके घूरवे लग जाओ, तुरंत उड़ जायगी. वाकु पता चले हे के आप वाकु घूर रहे हो. ये निश्चय नहीं

होवे के क्यों घूर रहे हो. ये बात इतनी कठिन नहीं हे. बहोत आसान भी नहीं हे क्योंके आदमी जा बखत अपनी मस्तीमें होय, वो ये सब नहीं देखे. यदि थोड़े भी सावधान अपन् हें तो इन बातनुकु देखके ही व्यवहार करे हें. आदमीकी तो जावे दो, यदि भैंसकु भी अपन् घूरे तो वो भी अपने सींग हिलावे लग जाय हे क्योंके वाकु भी पता तो चले ही हे के आपको इन्टेन्शन् ठीक नहीं हे. वो दिखलाई दे हे और वाको ॲसेसमॅन्ट्र अपन् करते रहे हें. वा ॲसेसमॅन्ट्रके बिना कोई भी अपनो व्यवहार दूसरेके साथ कर ही नहीं सके. जैसे आप गाड़ी चला रहे हो तो आपकु अपनी गाड़ीपे कंट्रोल् होनो चहिये. वैसे ही कोई दूसरो गाड़ी कैसे चला रह्यो हे, वाकु पहचाननो, देखनो भी आनो चहिये. नहीं यदि आ रह्यो हे तो ॲक्सीडेंट् होयगो ही. आप ठीक चला रहे हो तो भी ॲक्सीडेंट् होयगो. यदि दूसरेकी ड्राइविंगकु देखनो-समझनो आवे तो ॲक्सीडेंट् कम होंवे. गाड़ी चलावेमें भी वो ही सिद्धान्त हे. आपसके व्यवहारमें भी वो ही सिद्धान्त हे. अपनुकु अपने व्यवहारकु निरंतर परखते रेहनो चहिये और साथ-साथ दूसरेको अपने साथ कैसो व्यवहार हे, वाकु भी परखनो चहिये. आंकड़ा तो सब सामने हे पर वाको जमा-खर्च तो निकालनो पड़ेगो. या तो अपनो अहंकार कोईकु चुभ रह्यो हे, तो दोषरूप हे. अथवा अपने मार्गमें आड़े आ रह्यो हे तो दोषरूप हे. अहंकारकु अहंकारके रूपमें देखवेपे, न वो दोष हे और न वो गुण हे. क्योंके वो तो सिस्टम् हे, जा सिस्टम्की अपन् पैदाइश हे. जा सिस्टम्सु अपन् उत्पन्न हो रहे हें, जा सिस्टम्में अपन् जी रहे हें और जा सिस्टम्में अपन् लीन होयेंगे, वा तरहकी अपनी संरचना हे. अहंकार दोषरूप बने हे, जब या पॅरामीटर्पे नाप्यो जाय.

बहोत पुरानी बात हे, जब दूसरे तरीकेके फोन् आते हते. बोलवेको अलग और कानमें सुनवेको अलग. चालीसवें दशककी बात

आपकु बता रह्यो हूँ. हमारे यहाँ एक मुखियाजी हते, उनको फोन् आयो गांवसु. उनने कभी फोन्पे बात नहीं करी हती. उनकु समझायो गयो के पहले 'हलो' करके अपनी बात शुरु करियो. क्योंके गांवसु फोन् आयो हतो यालिए पूरे जोरसु बोले, "हॅलोऽऽऽ" उनकु ये समझ ही नहीं आयो के फोन्में चाहे गांवसु भी फोन् आवे तो भी जोरसु बोलवेकी जरूरत नहीं हे. वो समझते हते के यदि धीरे बोलेंगे तो शायद गांव तक आवाज पहोंचे के नहीं पहुंचे. यालिए बहोत जोरसु बोले. फोनपे सामनेवाले व्यक्तिने कही के "आपकु फोन्की जरूरत नहीं हे, आपकी आवाज तो वैसे ही गांव तक पहोंच जायगी." कोई गांव तक थोड़ी पहोंचानी होय! वो तो केवल टॅलीफोन् तक पहुंचानी होवे हे, बाकी काम तो टॅलीफोन् करे हे. ऐसे ही अपन्कु अपने अहंकारको इन्टरॅक्शन् दूसरेके साथ करवेमें केवल वाके सामने पहोंचनो हे. सामनेवालो अपने आप समझ जायगो के ये लाउड् हे के सोबर् हे. ये अहंकारके गुण-दोषको रोल् हे. क्योंके अपन् अपने लिए तो नहीं कर रहे हें. कौन ऐसो व्यक्ति होयगो जो अपने लिए अहंकार करे? अकेले जंगलमें बैठ्यो व्यक्ति क्यों अहंकार करेगो? जब भी वो अहंकार करेगो तो कोई न कोई दूसरेके सामने प्रकट करेगो. जाके सामने प्रकट कर रह्यो हे वाकु ये पसंद आ रह्यो हे के नहीं?

जैसे एक बात बताऊँ. गालिब उर्दूको बहोत बड़ो शायर हुओ हे. एक ठिकाने वो ये केह रह्यो हे के *तेरे तौसनका सबा बांधते हैं, हम भी एक अपनी हवा बांधते हैं, कुछ तो पढ़िये कि लोग कहते हैं आज गालिब गजलसरा न हुआ.* मुशायरामें सब लोग केह रहे हें के "आज क्या बात हे के गालिब गजल पढ़वे नहीं आयो हे. सबने अपने शेर सुना दिये. गालिबने क्यों नहीं सुनाये?" अब जिनकु गालिब पसंद नहीं आवे उनकु ये बात चुभे हे. पर मोकु क्योंके गालिब पसंद हे, यालिए ये ही बात बहोत मीठी

लगे हे के क्या बात केह दी हे गालिबने. कभी दीनता भी प्रकट करे हे *रेख़्ताके तुम ही उस्ताद नहीं हो गालिब, सुनते हें कोई ज़मानेमें मीर भी था.*

देखो! जाकु गालिब अच्छो लग रह्यो हे वाकु वाकी दीनता भी अच्छी लग रही हे, वाको अहंकार भी अच्छो लग रह्यो हे. जा बखत कृष्ण यों कहे के **"तेषाम् अहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागराद् भवामि न चिरात् पार्थ!"** (भग.गीता १२।७). जो कृष्णभक्त हे, वाकु कृष्णको अहंकार बड़ो मीठो लगे. वो कहे हे के जिनने मेरेमें अपनो मन चौंटायो हे, उनकु अपने उद्धारकी चिंता नहीं करनी चहिये क्योंके वो चिंता तो मैं कर रह्यो हूँ. देखो, कितनो बड़ो अहंकार हे. चुभेगो कौनकु? जाकु कृष्णसु अपनो उद्धार नहीं चहिये वाकु. जो "**श्रीकृष्णः** शरणं मम" केह रह्यो हे, वाकु यासु ज्यादा मीठी और कौनसी बात लगेगी? हम केह रहे हें के "तू मेरो रक्षक हे" और तू पाछे वा बातको एश्योरेंस् दे रह्यो हे, कन्फर्म् कर रह्यो हे के "तुम्हारो तो मैं ही उद्धारक हूँ. मैं नहीं तो और कौन तुम्हारो उद्धार करेगो!" अब ये ही बात कोई क्रिश्चनकु कहो के जो मानें हे के क्राइस्ट्के सिवा और कोई उद्धारक हे ही नहीं, कोई भी मुसलमानकु कहो के जो मानें हे के मोहम्मदके बिना कोई और उद्धारक हे ही नहीं, उनकु ये कृष्णवाक्य चुभेगो. तो कोई भी बात चुभ रही हे के नहीं, वाके कारण वामें गुण-दोष आ रह्यो हे.

(सेवाभावकी अहंतासु सेवाधिकार)

वा कारणसु ही अपने यहां पुराने जमानामें हर ग्रंथके लिए अधिकारको निर्णय कियो जातो हतो के कौनसो ग्रंथ कौनसे अधिकारीकु बतानो. आजकल प्रजातंत्र होवेके कारण हरेककु अपनो अधिकार सब जगह लगे हे. पुरानो नियम ऐसो नहीं हतो. गुरु जो ग्रंथ अध्ययन

करातो, वो या बातको निर्णय लेतो के या विद्यार्थीको माइन्ड्-सेट् कैसो हे, याकु कौनसो ग्रंथ पढ़ायेंगे तो वाके लिए अच्छो होयगो और कौनसो ग्रंथ पढ़ायेंगे तो वाके लिए नुकसानदेह होयगो. वो महाप्रभुजी भी सावधानी रखते हते के ''तोसों सेवा नाहीं निभेगी तासों तोकों ब्रह्मसम्बन्ध नाहीं देत, तेरो उद्धार शरणागतिसु ही हो जायगो.'' क्योंके महाप्रभुजीकु वाकी अहंता सेवाके भावकी अहंता नहीं लग रही हती. वामें यदि सेवाभावकी अहंता नहीं हे, तो वाकु कृष्णमें स्वामिभावकी ममता नहीं जगेगी. वो ममता नहीं जगी और फिर वाकु सेवा बताओ और ब्रह्मसम्बन्धदीक्षा दो तो जब कुंडली ही नहीं मिली तो झगड़ा तो होनो ही हे. क्योंके यहां सेवाभावकी अहंता नहीं हे, वहां कृष्णके स्वामी होवेके भाववाली ममता नहीं आयगी. और वा सफोकेशन्में ठाकुर कब-तक बिराजेगो! नहीं बिराजेगो इन सारे व्यवहारमें. अपनी अहंता-ममताकु अपन् अपने ढंगसु नापके निर्णय नहीं ले सकें. दूसरेके सन्दर्भमें भी अपनकु अपनी अहंता-ममताको मापतोल करते रेहनो चहिये.

(दृढ़ताको गुण-दोष)

आपकी जो दृढ़ताकी बात हे. वाको भी ये ही प्रकार हे. बहोत सारी दृढ़ता अच्छी हे. पर जा स्थिति, जा सन्दर्भमें वो अच्छी हे, वा परिस्थितिमें ही वो अच्छी हे. जा सन्दर्भमें वो दृढ़ता दोषरूप हो जाय वा सन्दर्भमें वो दृढ़ता बुरी हे. अपन् और कोईको उदाहरण नहीं लेके महाप्रभुजीको ही उदाहरण लें. महाप्रभुजी साफ केह रहे हें के ''मोकु साक्षाद् भगवदाज्ञा भयी के भागवतकी व्याख्या लिखो.'' महाप्रभुजीने दृढ़तासु अपने मनमें बसा ली के ये आज्ञा मोकु मिली हे और या भगवदाज्ञाकु मोकु पूरी करनी ही हे. अठारह हजार श्लोककी टीका लिखी हती और खो गयी तो आपने फिर दूसरो प्रयास करनो शुरु कियो. ये सब कितनो झंझटको काम हे. सरल काम नहीं हे. वो भी यात्राके दरम्यान! एक ठिकाने शांतिसु

रेहके करते होंय तो ठीक बात हे. आज इतनी सुविधा होते भये भी यात्रामें इतनी तकलीफ हे तो वा समय कितनी समस्याएं होती होंयगी! पर हृदयमें दृढ़ता हती के भगवदाज्ञा हे तो फिर लिखनी शुरु करी. जब वे लिख रहे हते तो भगवदाज्ञा भई के देह-देश परित्याग करो. तब महाप्रभुजीने दृढ़ता बताई के "नहीं, पूरी करे बिना देह-देश परित्याग नहीं करूंगो." जब वो दृढ़ता बताई तो तीसरी आज्ञा कठोर भई. तब महाप्रभुजीने कही के "अब मेरी दृढ़ता अच्छी नहीं है, वो बुरी चीज हो गयी." क्योंके जो निर्णय नहीं हो पा रह्यो हतो वो कौनसी बात हती के "पूरी करो" या आज्ञाकु प्रधानता देनी के "बंद करो" या आज्ञाकु प्रधानता देनी? महाप्रभुजी पहली आज्ञाकु प्रधानता देके चल रहे हते. जब तीसरी आज्ञा भई तब उनकु लग्यो के "नहीं, कुछ बात गंभीर हे" तब पहली आज्ञाकी प्रधानताकु छोड़के दूसरी आज्ञाकु मान्यो. तुरंत महाप्रभुजी संन्यास लेके अडेलसु काशी पधार गये. दृढ़ता छोड़ दी.

चौरासी वैष्णवन्की वार्तामें आप पढ़ोगे तो बहोत सारे वैष्णवन्ने दृढ़ता छोड़ दी. वो उनकी भगवदीयता हती. भल्लाजीने दृढ़ता नहीं छोड़ी. बात उनकी खोटी नहीं हती. बात उनकी सौ टका सच्ची हती. और दृढ़ता भी इतनी हती के महाप्रभुजीने भी यों नहीं कही के तुम गलत काम कर रहे हो. उनने कही के इतनी दृढ़तासु यदि तुमकु या नियमको पालन करनो हे तो सेवा छोड़ दो. सेवा छोड़वेमें उनकी दृढ़ता काम नहीं आयी. वो दृढ़ता कायम हती के "देवद्रव्य तो नहीं खाऊंगो." वहां महाप्रभुजीने ये नहीं कही के देवद्रव्य खायो जा सके. वार्ता पढ़के देख लो. उनने जब कही के देवद्रव्य कैसे खाऊं? तब महाप्रभुजीने कही "मेरे भंडारसु खा लो." वहां भी उनने दृढ़ता प्रकट करी के "गुरुद्रव्य कैसे खाऊं?" महाप्रभुजीने कही के "सेवा छोड़ दो." भल्लाजीने 'हां' केह दी. वहां क्या दृढ़ताको दंड मिल्यो के देवद्रव्य नही खानेको दंड मिल्यो?

निन्यानवे प्रतिशत बालक यों केह रहे हें के उनने दृढ़ता रखी के देवद्रव्य नहीं खानो, या बातको दंड उनकु मिल्यो. यदि वो बात दंडनीय होती तो महाप्रभुजी ऐसे काहेकु कहते के मेरे भंडारमें खा लो. सीधी आज्ञा करते के देवद्रव्य खायो जा सके. यदि महाप्रभुजीने ये बात नहीं कही तो भल्लाजीके अपराधके गुनहगार भल्लाजी के महाप्रभुजी? गुरु कौन हतो? जिम्मेदारी कौनकी हती? जिम्मेदारी तो महाप्रभुजीकी हती. महाप्रभुजीकु केहनो चहिये हतो के देवद्रव्य खायो जा सके. यदि महाप्रभुजी ये केह देते तो भल्लाजी क्यों नहीं खाते. जब उनने कही के "देवद्रव्य कैसे खाऊं." वाके पीछे रहस्य हतो के जो द्रव्य अपनूने देवकु दे दियो, वो द्रव्य जब-तक अपनी आज्ञासु पाछे नहीं लौटावे तब-तक वो चोरी केहवावे. यदि गुरु अपनी इच्छासु आपकु कोई चीज दे रह्यो हे, तब-तक वो अपहार नहीं केहवावेगो. जैसे आप मेरे यहां आये और मैं आपको स्वागत प्रसाद देके कर रह्यो हूँ तो आपने प्रसाद चोर्यो, ऐसे केहवायगो? महाप्रभुजी स्वयं केह रहे हें के मेरे भंडारमेंसु ले लो. भल्लाजी वहां भी अड़े भये हे. देखो, दृढ़ता वहां आड़े आयी हे. देवद्रव्यकी बात तो महाप्रभुजीने भी स्वीकारी हे. जब भल्लाजीने देवद्रव्य नहीं खावेकी कही तो बात तो उनकी सच्ची हे के श्रीनाथजी अपने यहांसु खावेकी आज्ञा दे रहे हें के नहीं, ये निर्णय उनसु पूछे बिना कैसे होयगो!

जैसे आपने मोकु पांच रुपया भेंट धरे. वो पांच रुपया आप पाछे ले सको के नहीं ले सको? मोसु पूछे बिना नहीं ले सको. समझो उन पांच रुपयाको मैंने एक केला मंगायो. ठाकुरजीकु भोग धरके आपकु प्रसाद दियो तो आप कहो के ये पांच रुपया तो मैंने ही भेंट धरे हते, ये प्रसाद मैं कैसे खाऊँ? तो क्या मैं आपकु केलाको प्रसाद दे रह्यो हूँ के देवद्रव्य दे रह्यो हूँ? आपने पांच रुपया मोकु धरे तो वो अब मेरे भये. मैंनें अपने नियमके प्रमाणमें

ठाकुरजीकु भोग धरे. भोग धरके वा केलाको प्रसाद आपकु दे रह्यो हूं. वो आपके रुपया हते तो भी वो देवद्रव्य खायो नहीं केहवायगो. वो आपको द्रव्य भी नहीं केहवायगो क्योंके आपने अपनी इच्छासु मोकु भेंट धर दियो. मैंने अपनी सत्तामेंसु केला मंगायो और ठाकुरजीकु भोग धर्यो और वाको प्रसाद आपकु दे रह्यो हूं. अब वो देवद्रव्य नहीं केहवावेगो वहाँ महाप्रभुजी स्वयं केह रहे हें के "मेरे भंडारमेंसु ले लो." पाछे केह रहे हे के "गुरुद्रव्य कैसे खाऊं." तब महाप्रभुजीने कही के "तुम्हारी इतनी दृढ़ता हे तो सेवा छोड़ दो." देवद्रव्यको जैसो अर्थ बालक कर रहे हें वो गलत अर्थ हे. देवद्रव्य खायो जा सकतो होतो तो आधुनिक बालकन्‌की तरह महाप्रभुजी केह देते वा बखत के कौनने तोकु ये उल्टी बात समझाई के देवद्रव्य नहीं खायो जा सके. वो तो खानो ही चहिये. डंकाकी चोटपे खानो चहिये. देवद्रव्य ही खानो चहिये, बाकी तो सब द्रव्य अशुद्ध हे.

कड़ीके राजेशबावाने एक घटना मोकु सुनाई. उनके पिता श्रीपुरुषोत्तमलालजी महाराजके कोई सेवक हते. जब राजेशबावा बम्बई आते तो पिताके सेवककु कहते के ये रुपया ले जाओ और ये वस्तु ला दो. वो जो चीज लेके आते, वामें एकके दस लेते. अब राजेशबावा तो दुकानपे जाते नहीं. एक दिन उनकी निगाहमें कुछ बात आ गयी के ये तो एकके दस ले रह्यो हे. उनने वाकु कही के "आप हमारे पिताके सेवक और आप ही हमसु एकके दस लो, ये आपकु शोभा दे हे?" उनने कही के "जे कृपानाथ! गाममें तो आसुरी-द्रव्य फैल्यो भयो हे, दैवीद्रव्य तो आपको ही हे. आपको नहीं खाऊं तो कौनको खाऊं." अब तो मुश्किल हो गयी न! जो बालक केह रहे हें के देवद्रव्य खायो जा सके हे. उनकु केहनो चहिये के गाममें आसुरी-द्रव्य हे, आपके ही यहां दैवीद्रव्य हे, आपको द्रव्य भी हम खा सके हें. वो छूट दें तो मैं मान लूं.

दृढ़ता अथवा अहंकार की समस्या इकतरफा नहीं, दुतरफा समस्या हे. कोई दृढ़ता अच्छी होवे हे. जैसे रुक्मणीकी दृढ़ताकी गुसांईजीने प्रशंसा करी. भल्लाकी दृढ़ताकी निंदा करी. क्योंके कौनके सामने दृढ़ता वापरी जा रही हे, वो दृढ़ता वाकु चुभ रही हे के नहीं चुभ रही हे, वो दृढ़ता आपके मार्गमें सहायक हो रही हे के बाधक हो रही हे? महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के बाधक हो रही हे **"अत्याग्रहप्रवेशे... पूजा त्यक्तव्या"** (त.दी.नि.२।२४७) आपकु पूजाको आग्रह न होके पूजाकी कोई आईटम्‌को आग्रह हो गयो के याके बिना तो पूजा हो ही नहीं सकेगी. वो आइटम् तो छोड़ोगे तब छोड़ोगे पर सेवा-पूजा पहले छोड़ दो. क्योंके आइटम्‌सु बंधी भयी सेवा-पूजा नहीं हे. सेवा-पूजा भावसु बंधी भयी हे. जो बात रजो क्षत्राणीने महाप्रभुजीकु कही के "पुष्टिमार्गमें तो कोई चीजकी कमी हे ही नहीं, क्योंके भावसु सब चीज प्रभु आरोगे. घी आपके यहां हतो के नहीं हतो. आपके यहां हतो तो आपने क्यों नहीं उपयोग कियो." दृढ़ता देखो रजोकी. महाप्रभुजीने कही के "हमारे यहां ठाकुरजीके लिए हतो" रजोने कही "मेरे यहां कोई औरके लिए हतो? आपके यहांको घी जैसे आपके ठाकुरजीके लिए हतो, ऐसे मेरे यहांको घी मेरे ठाकुरजीके लिए हतो. वो मैं आपके पिताके श्राद्धके लिए क्यों दऊं? आपके पिताके श्राद्धमें आपके ठाकुरजीको घी यदि आप नहीं वापर सको हो तो आपके पिताके श्राद्धमें मेरे ठाकुरजीको घी कैसे आप वापर सको हो?" महाप्रभुजी वा दृढ़तासु प्रसन्न हो गये. बात चुभी नहीं. उनने बनावट जरूर करी के मोंह फिराके बिराज गये. वाने पूछी के "क्यों नाराज हो?" उनने कही के "पड़ौसमें रहे और घीको भी व्यवहार नहीं निभावे". वाने साफ केह दी के "आपकु केहनो चहिये हतो के घी भिजवावेमें तोकु दोष नहीं हे. वो तो आप केह नहीं रहे हतो. केह रहे हते के घी भेजो, घी भेजो, गुस्सा हो रहे हें. गुस्साको काम तो पुष्टिमार्गमें हे नहीं. मोकु लग्यो के ये आज्ञा तो मर्यादाकी हे. यदि आप कहते के

तोकु घी भिजवावेमें दोष नहीं हे, तो मैं भिजवा देती. वो तो आपने केहवाई नहीं.'' गुस्सा व्यक्ति क्यों होवे, जब कोई चीजको अभाव होवे. अभाव तो अपने यहां हे ही नहीं. सब भावसु ही सिद्ध करी जा रही हे. महाप्रभुजीकु वो दृढ़ता पसंद आयी. एक बात ध्यानसु समझो के कहां दृढ़ता अच्छी हे और कहां खराब हे. कहां मार्गमें बाधक हो रही हे कहां साधक हो रही हे. कहां आपको अहंकार बाधक हो रह्यो हे, कहां आपको अहंकार साधक हो रह्यो हे! इन बातन्को विचार किये बिना अपन् एक बात खोटी दृढ़तासु पकड़ लें, तो तो गड़बड़ ही होवेवाली हे.

(अहंताकी दृढ़ता/अदृढ़ता और दृढ़ताकी अहंरूपता/दीनता)

ये सारी समस्या राणा व्यासकी ही हे ऐसी बात नहीं हे. ये अपने जीवनमें भी और अपने जीवनमें ही नहीं चौरासी वैष्णवन्की जो और कथा हैं, उन कथान्में भी ये समस्या आती दिखे हे. कोई चीज कहीं बाधक हो रही हे. जैसे अपन् एक बात देख सके के व्रजयात्रामें कृष्णके ही नहीं और भी देवी-देवतान्के मंदिर आवे. वल्लभ-संप्रदायके ही नहीं गैर वल्लभ-संप्रदायके भी मंदिर आवें. वहां अपन् जाके नमस्कार करे हैं. श्रीरंगजीमें भूतेश्वर महादेवमें कामेश्वर महादेवमें जाके नमस्कार करें. ये अन्याश्रय नहीं हे और कहां इतनी बातपे अन्याश्रय मान लियो के ''तें मोको जिवाई'', ज्योतिषीसु कोईने पूछ्यो वापे महाप्रभुजीनें कही के ''अन्याश्रय कियो.'' क्यों अन्याश्रय लग्यो? क्योंके यदि महाप्रभुजीने कही हे वापे तुमकु विश्वास नहीं हे यालिए ही तो तुम दूसरेसु पूछ रहे हो. दूसरेकु तुम महाप्रभुजीसु अधिक मान रहे हो. 'अन्य' मान रहे हो तो अन्याश्रय हे. व्रजयात्रामें अपन् क्यों 'अन्य' नहीं मानें? क्योंके ''व्रज वृन्दावन गिरि नदी पशु पंछी सब ठौर, ये सब मेरो अंग'' ये भगवान् केह रहे हैं. वहां जो भी हे वो भगवान्को अंग ही हे. महादेवजी देवी हनुमानजी सब भगवान्के अंग हे. भगवान्के अंग हे तो अन्याश्रय नहीं हे.

अन्याश्रय हे के नहीं ये कौन बतायगो. अन्य नहीं बतायगो. आप वाकु अन्य तरीके ले रहे हो के अंग तरीके ले रहे हो. यदि अंग तरीके ले रहे हो तो अन्याश्रय नहीं हे. जब शादी-ब्याह होवे तो गणपतिको अपन् पूजन करे हें के नहीं? गणपति तो खैर देवता हे पर जब ग्रहशांति होवे तो वामें राहु-केतु जो राक्षस हें, उनको भी पूजन करें. गीतामें भगवान् आज्ञा करे हें के राक्षसको पूजन तामसी लोग करे हें, सात्त्विक लोग नहीं करें. तो क्या अपन् तामसी हें. भगवान् गीतामें आज्ञा कर रहे हें के तामसको पूजन नहीं करनो, वो या अॅन्गलसु कर रहे हें के आप तामसी देवतानुकु पसंद कर रहे हो तो आप तामसी हो. आप सात्त्विक देवतानुकु पसंद कर रहे हो तो आप सात्त्विक हो. पर जहां शास्त्र केह रह्यो हे के यहां तामसी देवताको पूजन करो वहां अपनी पसंदको सवाल नहीं हे. शास्त्र जो केह रह्यो हे वो कर रहे हें और शास्त्रकु अपन् भगवान्की आज्ञा मान रहे हें.

भगवान् यदि केह रहे हें के यहां तामसी देवताको पूजन करो तो तामसीको पूजन करेंगे. वामें अपनो क्या गयो? जैसे मैं आपकु एक काम बताऊं. वहां सहज सम्भव हे के वो काम आप अपने घरमें स्वयं नहीं करते हो, नौकरसु करवाते हो. पर यदि मेरेमें श्रद्धा हे और मैं कहूं के मेरो इतनो काम कर दीजो, तो आप नौकरकु बुलाके कराओगे के खुद करोगे? खुद करोगे. बस वो ही बात हे. शुरुआतमें मैं यहां लाव-लश्कर साथ नहीं लातो हतो, अकेलो आतो. जब अकेलो होतो तो चुपचाप रूम बंद करके जितने भी यहां रूम हें, उनकी झाडू मैं स्वयं करतो. एक दिन एक दरवाजा खुल्यो रेह गयो और मोहनलाल मास्टर् साहब आ गये. और उनने मोकु झाडू काढ़ते रंगे हाथ पकड़ लियो. समझो के मैं कोई काम कर रह्यो हूं तो मोकु पता हती के कोई वैष्णव देखेगो तो वाकु बुरो लगेगो के मैं क्यों अपने हाथसु झाडू काढ़ रह्यो हूं. अरे,

अपने घरकी झाडू मैं काढ़ रह्यो हूँ. मोकु बुरो नहीं लग रह्यो हे तो यामें आपकु बुरो नहीं लगे, याकी सावधानी कौन रखेगो? मोकु ही तो ये सावधानी रखनी पड़ेगी.

या बातकु समझो के कोई भी बात अच्छी अथवा बुरी अपन् कैसे निश्चय करें? या तो अपने मार्गमें साधक होय तो करें, बाधक होय तो नहीं करे, अपनी अहंताको जहां-तक सवाल हे और अपनी ममताको जहां-तक सवाल हे, वाकी ये सावधानी बरतनी चहिये के वो दूसरेकु चुभ रही हे? तो जाके साथ ममता रख रहे हो, वाके सामने ऐसी बात करनी के जो वाकु चुभती होय, वो ममताकी विरोधी बात हे. अंतमें ये ही निश्चय तो अपनकु करनो हे के प्रभुकु अपन् अपनो मान रहे हें तो अपने व्यवहारमें, अपनी वाणीमें ऐसी कोई बात नहीं आनी चहिये के जो प्रभुकु चुभती होय. प्रभुकु न कोई चीज़ चुभे हे और न कोई चीज नहीं चुभे. पर अपनी ममताके कारण वामें चुभन और अचुभन आ रही हे. क्योंकि एक बाजु जब आप ऐसे केह रहे हो के मैंने अपनो सर्वस्व प्रभुकु मान्यो. सर्वस्व प्रभुकु मानके सेवा कर रह्यो हूँ. वा बखत आपके व्यवहारसु, आपकी वाणीसु, आपके विचारसु ये बात टपकती होय के आप प्रभुकु सर्वस्व नहीं मान रहे हो तो सबसु पहले आपकी वो बात प्रभुके प्रति ममताकु चुभेगी और जब ममताकु चुभेगी तो फिर प्रभुकु भी चुभेगी. मेरे घरमें झाडू काढ़नी मेरी अहंताकु नहीं चुभे, ये बात बिल्कुल सच हे. ये मेरो घर हे. मेरे घरमें झाडू काढ़वेमें मेरी अहंताकु क्या ठेस पहोंच सके हे! पर मोकु ये पता हे के यहांके गांवके वैष्णवनकु वो पसंद नहीं आवे और उन वैष्णवनकु यदि मैं अपनो मानतो होऊँ तो व्यर्थमें ऐसो उपद्रव मोकु क्यों करनो? करनो हे तो बंद दरवाजामें करनो चहिये. कोई बखत गलती हो जाय वो बात अलग हे. पर बंद दरवाजामें तो कर ही सकूं क्योंके मेरी अहंताको बाध तो हो ही नहीं रह्यो हे. दृढ़ता और अहंता

एक चीज हे के अलग चीज हे, ये जहां-तक सवाल हे, वाकु या खुलासासु समझ सके हें के अहंता अदृढ़ भी हो सके हे और दृढ़ भी हो सके हे. और दृढ़ता भी अहंकार भरी भयी हो सके हे और दीनता भरी भयी हो सके हे. दीनताकी भी दृढ़ता हो सके.

पंडित व्रजदासजी हते यहां. उनकु दिखलाई नहीं देतो हतो. जब सत्तावनमें मैं यहां आयो तो दोपहरमें यहां मेरे पास आके बैठते हते. उनकु वो ही सब शंकाएं होती रहती. जब कोई दूसरो सुने तो गुस्सा हो जाय. वो स्वयं शंका ऐसे ही करते के "राज, एक शंका हो रही हे और आप वाको ऐसो खंडन करो के मेरी मति सुधर जाय." आपकु उनकी शंकाकी प्रकृति बताऊँ. "जब छह: बालक हते गुसांईजीके तो फिर दूसरो विवाह करवेकी जरूरत क्या पड़ी? बहोत खराब शंका हो रही हे और बहोत चित्त विचलित हो रह्यो हे. ऐसो खंडन करो के फिर मेरे चित्तमें ये शंका ही नहीं होवे." देखो दीनता दीख रही हे यामें? शंका कितनी खतरनाक और मानसिक दीनता इतनी जबरदस्त के स्वयं ही कहते खंडन करवेके लिए. प्राय: उनकी सब शंका ऐसी ही होती पर सबके सामने नहीं करते. जब मेरे साथ एकांतमें बैठते तो ऐसी शंकाएं करते. पर कभी भी मोकु वो शंका चुभी नहीं. क्योंके वा शंकाकी प्रस्तुति दीनताके साथ होती हती. "कौनके सामने या शंकाकु रखूं पर या शंकाके कारण चित्त कलुषित हो रह्यो हे, याको आप खुलासा करो." वो भाव उनके चेहरासु मैं पढ़ पातो हतो. या भावके कारण उनकी अनक-टोंटी शंकानको भी मोकु बुरो नहीं लगतो हतो. कभी मेरे हृदयमें ये बात नहीं आयी के व्रजदासजी ऐसी शंका कर रहे हे. मजा आ जाती उनकी शंका सुनके के भई क्या बात पूछ रह्यो हे ये डोकरा. एक बाजु गुसांईजीकु अपनू प्रभुचरण केह रहे हें और दूसरी बाजु ऐसी शंका क्यों हो रही हे! हर बातमें दीनता

भी हो सके हे, अहंता भी हो सके हे. पर हर चीजको प्रयोग अपनकु करते आनो चहिये. बिना प्रयोग समझे राइफल् पासमें रखनो आत्महत्याको कारण होवे हे. वो ही राइफल् आपकी रक्षाको कारण हे यदि प्रयोग करनो आतो होय. नहीं आतो होय तो वो ही राइफल् आत्महत्याको कारण भी बन सके हें क्योंके खेलते-खेलते कब घोड़ा दब जाय, वाकी कोई गैरन्टी नहीं हे.

ये सब वा तरीकेके हथियार हें जो भगवान्ने अपनकु दिये हें और या समझके साथ दिये हे के बुद्धि दी हे वाके बाद ये हथियार दिये हें. थोड़ी बुद्धि वापरके इन हथियारनकु वापरो. अहंता भी बहोत अच्छो हथियार हे और ममता भी बहोत अच्छो हथियार हे. बुद्धिहीनतासु वापर्यो तो अहंता-ममतासु बढ़के कोई खतरनाक हथियार नहीं हे, जो आत्महत्याको कारण बने हे. यही स्थिति दृढ़ताकी भी हे.

(सिद्धान्तसंगत वार्तावचन प्रमाण, सिद्धान्त-असंगत वचन अप्रमाण)

अब यामें एक मुख्य मुद्दाकी बात रही भयी हे. यद्यपि या वार्तामें महाप्रभुजीको वचनामृत चौरासी वार्ताके अन्तर्गत नहीं हे पर चौरासी वैष्णवकी जो व्याख्या लिखी हे, भावप्रकाश, वा भावप्रकाशके अन्तर्गत ये वचनामृत दियो हे. वाको मतलब ऐतिहासिक दृष्टिसु के ये बात श्रीगोकुलनाथजीने वार्तामें नहीं जोड़ी हती पर श्रीहरिरायजीने ये बात पीछेसु जोड़ी हे. श्रीहरिरायजीकी बातकु अप्रामाणिक मानवेको कारण कोई भी अपने पास हे नहीं और मैं हर बखत एक सिद्धान्त मानके चलू हूँ के वार्ताके कोई भी प्रसंगकी जब-तक महाप्रभुजीके उपदिष्ट सिद्धान्तनके साथ संगति बैठ रही हे, तो वाकु अप्रामाणिक नहीं माननो चहिये. कोई भी प्रसंग, यदि उनके साथ संगति नहीं बैठ रही हे, तो ये बात महाप्रभुजीने तो कही नहीं हे, परवर्ती कोईने कही हे. यदि संगति नहीं बैठ रही हे तो वाकु प्रमाण मानवेकी

जरूरत नहीं हे. क्योंके ये महाप्रभुजीके बचन हे नहीं और महाप्रभुजीको आशय क्या हतो वो जब महाप्रभुजी स्वयं आज्ञा करते हतें तब भी लोग समझ नहीं पाते हते तो बादमें दूसरेनूकु कैसे समझमें आ सके के कौनसे आशयसु महाप्रभुजीने क्या आज्ञा करी. जैसे वार्तामें ही आ रह्यो हे के "तिहारे सेवक ऐसे दुबले क्यों?" वामें आवे के "बरजे हते के या मारगमें मत आओ. आये ताको फल पाय रहे हें." अब वाको एक आशय तो ये हे के पुष्टिमार्गमें आओ ही मत. ये आशय तो स्पष्ट निकल रह्यो हे, तो क्या अपनूकु ये अर्थ लेनो के कुछ और आशय लेनो? रूपगोस्वामीकु तो या बातसु संतोष हो गयो के "बरजे हते, आये, तातें ये फल पाय रहे हें." वहां भावप्रकाशकारने खुलासा कियो हे के "ये विरह-ताप-क्लेशको मार्ग हे." जब ताप-क्लेश हो रह्यो हे तो दुबले होनो स्वाभाविक हे. पूछवे लायक ये कोई बात हे ही नहीं. अब महाप्रभुजीने तो या आशयसु कही हे पर ऐसो भी तो आशय निकल सके हे के नहीं! पर ये आशय दूसरे संप्रदायवालेकु यदि कहें तो उनकु चुभेंगो. महाप्रभुजी अहंकारी लगेंगे. यासु महाप्रभुजीने दूसरी स्टाइलसु वाही बातकु कही. उनपे कुछ भी बात नहीं डाली, अपने सेवकनूपे बात डाली के "बरजे हते पर आये ताको फल पाय रहे हें." क्या वाको ये आशय हे के मार्गमें मत आओ? यदि ऐसो हतो तो मार्ग प्रवर्तित करवेकी जरूरत क्या हती? वाको आशय ये नहीं हे के मार्गमें मत आओ. वाको आशय ये नहीं हे के महाप्रभुजीने तो पांचसौ बरस पहले ही बरज दियो हतो के मार्गमें मत आओ, तो आज आवेकी क्या जरूरत हे. ये आशय तो हो नहीं सके. वाको आशय ऐसो लेनो के ये ताप-क्लेशको मार्ग हे. यामें आओगे तो स्वस्थ कैसे रेह सकोगे! "**लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति, पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिला:**" (नव.६) वो वाक्य महाप्रभुजी केहनो चाह रहे हें पर वहां केह नहीं रहे हें, क्योंके वा तरहसु केहवेसु पूछवेवालेको व्यर्थमें ही अपमान होवे.

बहोत स्टाइल्सु केह रहे हें के वाको अपमान भी नहीं होय और प्रश्न पूछवेको सिलसिला समाप्त हो जाय. ये सावधानी तो बरतनी पड़े. वहां महाप्रभुजीने भी बरती हे. अपन् समझ सके हें के ऐसी बहोत सारी समस्याएं होवे मार्गमें के जामें अपनेकु सिर्फ शब्दके ऊपर नहीं जानो चहिये, शब्दको तात्पर्य क्या हे वो खोजवेको प्रयास करते रेहनो चाहिए. समझो के कोई टीकाकारकु कोई दूसरो तात्पर्य समझमें आयो तो वाने वैसे कर दियो.

मोकु ही एक बालकने सवाल पूछ्यो के "दादा! कृष्णाश्रयमें जब महाप्रभुजीने केह दियो के "सर्वमार्गेषु नष्टेषु" अब पुष्टिमार्ग चलावेकी जरूरत क्या हे. टॅक्नीकल् बात हे न! जब महाप्रभुजी स्वयं केह रहे हें के "सर्वमार्गेषु नष्टेषु" तो पुष्टिमार्ग भी तो वामें आ गयो. वाकु भी चलावेकी क्या जरूरत हे! अपन्कु आशय भी तो समझनो पड़ेगो के पुष्टिमार्ग कौनसे अर्थमें चल रह्यो हे और कौनसे अर्थमें सर्वमार्ग नष्ट भये हे. महाप्रभुजीने कृष्णाश्रयमें स्पष्ट कियो हे के देश काल कर्ता मंत्र कर्म स्वभाव द्रव्य जो धर्मके अंग हे, वे देशकालादिककी अवस्थाके कारण उच्छिन्न हो गये हें. देश-काल-कर्ता-कर्म-मंत्र-द्रव्यपे निर्भर होवेके कारण नहीं पर कृष्ण अभी भी आश्रयणीय हे. "कृष्णएव गतिर्मम" मार्गपे चलवेके साज-सामान जैसे पुल होवें, मीलको पत्थर होवे, मोड़के सिग्नल होवें, ये सब साज-सामान खतम हो गये हें तो मार्गपे कैसे चल पाओगे?

हमारे साथ ऐसो ही भयो. हमकु जानो हतो जयपुर. बाफनाजीने कही "चलो मैं ले जाऊँ आपकु". मैं टॅक्सी मंगा रह्यो हतो. मैंनें कही "आपकु पता तो हे न!" उनने कही "सब पता हे". रातकु हम कहां निकल गये, पता ही नहीं चल्यो. मैंनें कही "बाफनाजी, जयपुर क्यों नहीं आ रह्यो हे". बोले "ये ही तो खबर नहीं

पड़े, कठे गयो जयपुर'' वहां पूछें कौनसु, वहां तो कोई आदमी नहीं मिले. हम तो दिल्ली रोड़पे आगे निकल गये हते. मैनें सोची के इतनी देरसु गाड़ी चल रही हे और जयपुर नहीं आ रह्यो हे. फिर कोईसु पूछी तो वापस आनो पड्यो. जब रोड़-साइन् नहीं होय तो ऐसी गड़बड़ होवे. वो तो अच्छो हतो के नींद नहीं आयी, नहीं तो गाड़ी तो चल ही रही हती, हम दिल्ली पहोंच जाते. ऐसे ही जा बखत साधनाकी गाड़ी चल रही हे, वामें जब ऐसे रोड-साइन् नहीं हे के ये साधना कौनसे देशके लिए हे. वो देश ये हे के नहीं हे. कौनसे कालमें कौनसे द्रव्यसु कौनसे मंत्रसु ये धर्माचरण करनो हे? वो सब या मार्गमें हें के नहीं हें? वो सब यदि सही नहीं हें तो गाड़ी तो सीधी कहीं और चली जायगी.

ऐसे कहे के हरियाणामें सनातनीन् और आर्यसमाजीन् के बीच शास्त्रार्थ भये के श्राद्ध करनो के नहीं. टक्कर वहां आके फंस गयी के ''वेदमें दिखाओ कहां लिख्यो हे के श्राद्ध करनो के नहीं करनो.'' वेदमें तो श्राद्धको वर्णन आयो नहीं हे. स्मृति और सूत्रन् में आयो हे. सनातनीन्ने गुस्सामें आके केह दी के ''तुम बताओ, श्राद्ध नहीं करवेको कहां लिख्यो हे''. उनने वचन दिखा दियो ''निखाता पितर:'' हरियाणवीमें याको अर्थ हे, पितर खाता नहीं हे. जब पितर खाता ही नहीं हे तो श्राद्ध करनो क्यों? वहाँ सब आर्यसमाजी खुश हो जाये और जीत गये, क्योंके वेदके वचन दिखा दिये. पर संस्कृतमें तो 'निखाता'को मतलब नींव हे. याको मतलब हे के पितर तुम्हारी नींव हे जापे तुम्हारो सारो दारोमदार टिक्यो भयो हे. आशय तो समझनो पड़ेगो के नहीं. आशय नहीं समझोगे तो कुछ भी अर्थ निकल सके हे. वाके लिए व्याख्याएँ लिखी जाये हें. यदि महाप्रभुजीसु ही आशय विरुद्ध जा रह्यो हे, तो मेरो एक सिद्धान्त हे के वार्ता प्रामाणिक नहीं हे, क्योंके कुछ गड़बड़ हो गयी हे. वे कुछ और आज्ञा करनो चाहते होयेंगे अपनेकु कुछ

और समझमें आ गयी. यदि महाप्रभुजीके आशयसु टॅली हो रही हे, तो कोई कारण नहीं हे के बाकु अप्रामाणिक मानो. सारी वार्तानूकु प्रामाणिक मानें तो गड़बड़ हुए बिना रहे नहीं.

हमारे पास एक बहुजी आये. "वार्ताकु आप अप्रमाणिक क्यों मान रहे हो?" मैंने कही के "महाप्रभुजीके सिद्धान्तसु विपरीत हे तो वार्ता सच्ची नहीं हे और विपरीत नहीं हे तो सच्ची हे". "ऐसे कैसे हो सके". मैंने कही के "चलो! वार्तासु ही आपकु समझाऊँ". वार्तामें कही हे के "जितने भी लालाजी हें उनको अनाज नहीं खानो. वो अपवित्र होवे. आप अपने बापकु अपवित्र मान रहे हो?" महाप्रभुजीके बखत लालाजीनूको और महाराजनूको झगड़ा हतो ही नहीं. ये बादमें पैदा भयो झगड़ा हे. अब पैदा हो गयो तो कोई वार्ताकारने वामें ड़ाल दियो. देखो स्थिति कितनी विचित्र हे के वैष्णवनूके यहां जावें तो महाराजकु कुछ खवावें और कुछ खावें. महाराज भी लालाजीनूके यहां जावें जमाई बनके के दोहित्र बनके तो खावें ही हें. वैष्णवनूकु कहे के लालाजीनूके यहां खानो नहीं क्योंके लालाजी बहोत अपवित्र हें. यदि सचमुचमें वे अपवित्र हें तो उनकी लड़की क्यों ला रहे हो? महाप्रभुजी भी तो लड़की लाये हते. अब ये बात वार्तामें आ रही हे तो याको क्या करनो? महाप्रभुजीके सिद्धान्तसु वाकी कोई संगति नहीं मिल रही हे, तो याकु प्रामाणिक कैसे माननो! "बापकु अपवित्र मानो!" उन बहुजीकी अहंताकु ठेस लग गयी. बोली "नहीं, नहीं! ऐसे कैसे हो सके". अब कोई लड़की अपने बापकु अपवित्र कैसे मानेगी. ऐसे बहोत सारी बात वार्तानूमें घुसा दी गयी हें. कोई भी आदमी वार्तामें कुछ ड़ाल दे तो वो वार्ताके नामपे प्रामाणिक नहीं हो सके. महाप्रभुजीके सिद्धान्तसु संगत हे तो प्रमाण हे, असंगत हे तो अप्रमाण हे. यालिए, ये जो प्रसंग हे, याकी कोई असंगति दीख नहीं रही हे. यद्यपि ये वचन चौरासी वार्ताको हिस्सा नहीं हे, भावप्रकाशको हिस्सा हे.

तो मैं अपने विवेकसु याकु प्रामाणिक मानके चलूं, यदि महाप्रभुजीके वचनपे कोई लिखी भयी बातकु तोल्यो जाय और वो बराबर बैठ रही हे तो वो प्रामाणिक हे और नहीं बराबर, तो अप्रामाणिक.

(चतु:श्लोकी और वार्ता की संगति)

चौरासी वैष्णवकी वार्ता श्रीगोकुलनाथजीकी कही भयी हें. वामें एक बात आ रही हे के चतु:श्लोकी महाप्रभुजीने राणाव्यासकु सुनाई. वा चतु:श्लोकीके कारण राणाव्यासकु सब चीजको ज्ञान भयो. ये बहोत टॅक्नीकल् बात हे. जा सरलतासु ये बात कही गयी हे, वा तरहसु समझमें नहीं आ सके. क्योंके चतु:श्लोकी तो अपन् भी पढ़ रहे हें. "**सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिप: स्वस्य अयमेव धर्मोहि नान्य: क्वापि कदाचन**" (चतु.१) यामें कोई शास्त्रार्थको वर्णन तो कहीं दिखाई नहीं दे रह्यो हे के जासु वो पंडितनूसु शास्त्र जीत आये. सवाल ये हे के चतु:श्लोकी पढ़वेसु शास्त्रार्थ कोई कैसे जीत सके? आचार्यचरणकी दिव्यसामर्थ्य हे, यासु कोई इन्कार नहीं कर सके. पर सवाल यहां ये हे के वा दिव्यसामर्थ्यकु प्रकट करवेके लिए चतु:श्लोकीकु माध्यम क्यों बनायो. दिव्यसामर्थ्य प्रकट करवेको कोई बहाना तो बनायो न! और वो बहाना क्या बनायो के राणाव्यासकु महाप्रभुजीने चतु:श्लोकी सिखाई और कही के जा तोकु जहां शास्त्रार्थ करनो हे, कर, जीतके आयेगो. मूलमें या बातकु ध्यानसु समझनी हे. या वार्तामें महाप्रभुजीकी चतु:श्लोकीकु महाप्रभुजीके वचनामृत तरीके ढाल सके हें. "**सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिप: स्वस्य अयमेव धर्मोहि नान्य: क्वापि कदाचन**" अपनो जो धर्म हे वो सर्वदा सर्वभावसु व्रजाधिपको भजन हे. "**एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति प्रभु: सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत्**" (चतु.२) अपनूकु तो भजन ही करनो चहिये. प्रभु सर्वसमर्थ हें, जो करनो होयगो सो करेंगे. "**यदि श्रीगोकुलाधीशो धृत: सर्वात्मना हृदि तत: किम् अपरम् ब्रूहि लौकिकै: वैदिकैरपि**" (चतु.३) यदि गोकुलाधीश तुम्हारे हृदयमें

बिराजमान हे, तो और कौनसो फल वासु अधिक तुम्हारे लिए बेहतर हो सके हे, लोकमें अथवा वेदमें. "**अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यम् इति मे मतिः**" (चतु.४) सर्वात्मना गोकुलेश्वरको स्मरण और भजन नहीं छोड़नो, ये मेरी मति हे.

अब बताओ के यामें शास्त्रार्थकी बात कहां आ रही हे? कोई भी ऐसी बात यामें आ रही हे के जामें शास्त्रार्थ लगतो होय? या चतुःश्लोकीकु जानवेके बाद शास्त्रार्थ कैसे जीत सके हे, वो कड़ियें अपनूकु यामें खोजनी बहोत जरूरी हे, वार्ताकु सच्चे अर्थमें समझवेके लिए. वो कड़ी कैसे मिल सके हे?

अपन् एक बातसु समझ सके हें के अपने यहां ये जो चतुःश्लोकी हे, ये पुष्टिमार्गीय धर्मार्थकाममोक्ष हे. याको मतलब सीधो-सीधो समझो के ये आधिदैविक धर्म, आधिदैविक अर्थ, आधिदैविक काम और आधिदैविक मोक्षकी कथा हे. ये आध्यात्मिक धर्मार्थकाममोक्षकी कथा नहीं हे. और न ये चतुःश्लोकी आधिभौतिक धर्मार्थकाममोक्षकी कथा हे. या समझसु फरक क्या पड़े? शास्त्रार्थ यासु कैसे जीत्यो जाय. क्योंके चाहे वो आधिभौतिक होय अथवा आध्यात्मिक होय अथवा आधिदैविक होय, हें तो तीनोंन्के नाम धर्म अर्थ काम मोक्ष ही. अब अपन्ने कोई धर्मको अर्थको कामको अथवा मोक्षको आग्रह पकड्यो या अपन्ने कोई प्रकारकी अहंता डॅवलप् करी तो वा डॅवलप् की भयी अहंतामें जब-तक धर्मको ये प्रभेद नहीं खुलासा होवे के ये धर्म कौनसे पहलुसु धर्म हे, कौनसे पहलुसु धर्म नहीं हे, ये अर्थ कौनसे पहलुसु अर्थ हे और कौनसे पहलुसु अर्थ नहीं हे, कोई भी काम, कौनसे पहलुसु अपनो काम हे और कौनसे पहलुसु काम नहीं हे. अपनो मोक्ष कौनसे पहलुसु अपनो मोक्ष हे और कौनसे पहलुसु अपनो मोक्ष नहीं हे. ये बात यदि आदमीकु समझमें आ जाय तो वाकु जीवनकु सुधारनो आ गयो. जाके जीवनमें स्पष्टता आ गयी, वाके विचारमें स्पष्टता आ जायगी. जाके विचारमें स्पष्टता

आ गयी वाके विवादमें स्पष्टता आ जायगी. जाके विवादमें स्पष्टता आ जायगी वाके हारवेको कोई कारण रेह नहीं जाय. आदमी हारे कब हे, जब वाके विवादमें स्पष्टता नहीं होय तब. जैसे मैने वो बहुजीको उदाहरण बतायो. विवाद करवे तो तुम आ गये मोसु, लड़वे-झगड़वे के "वार्ताकु अप्रामाणिक कैसे मान रहे हो!" पर मोकु पता हे के बहुजीकी कहां नस दूख रही हे. मैने वाही नसकु दबा दियो. बस अहंता ढीली पड़ गयी. देखो! वार्ताकु प्रमाण मानवेकी अहंता कितनी कमजोर हे के अपने पितापे बात आते ही वो अप्रामाणिक हो गयी. यदि वो अहंता इतनी तगड़ी होती तो छाती ठोकके केह सकती हती के "मेरो बाप अपवित्र हे". वो केहवेकी हिम्मत तो हे नहीं. मतलब स्थिति डांवाडोल हे. अहंता-ममतामें सीलन आ गयी हे. क्रॉस्-वॅन्टीलेशन् नहीं हे तो चामाचिड़िया तो वहां लटके बिना मानेंगी नहीं. सवाल करवेवालेकु ऐसी स्थिरता होनी चहिये के क्यों वो ऐसे सवाल कर रह्यो हे. जब अपन् शांत चित्तसु सवाल सुन सकें, समझ सके तो चित्त स्थिर रहे, तो विवाद भी अच्छो होय. जब सवाल सुनके अपन् अशांत हो जायें तो सबसु पहले चित्त विचलित होय. वाके बाद अशांति अपनी वाणीमें प्रकट होय. वाके बाद अपने भावमें अशांति प्रकट होय हे. वाके बाद अपने विचारमें अशांति आ जाय. जैसे ही विचारमें अशांति आवे तो फिर सही प्रकारसु वाद-विवाद हो नहीं सके हे. बहोत शांतविचारसु कोई आर्ग्युमॅन्ट् होय तो वामें कोई लफड़ा होवे ही नहीं हे. जा व्यक्तिकु अपनो धर्मार्थकाममोक्ष शांतिसु समझमें आ गयो हे, वाके जीवनमें शांति आ गयी. मतलब वाके व्यवहारमें शांति आ गयी. मानें वाके विचारमें शांति आ गयी. विचारमें शांति आ गयी तो तर्क भी वो शांतिसु दे पायगो. यामें उद्विग्न होवेकी कोई गरज नहीं रेह जावे. ये धर्मार्थकाममोक्ष जीवन जीनेकी एक शैली हे.

मैनें आपकु बतायो के शुरुआतमें जानवरके लेवलपे धर्मार्थकामोक्ष

पुरुषार्थ नहीं हे पर जब मनुष्य समाज बन्यो और जब अपन् केह रहे हें के मनुष्य एक सामाजिक पशु हे तो वा समाजके कोई सामाजिक धर्म होवे हे, कोई सामाजिक अर्थ होवे हें, कोई सामाजिक काम होवे हें, कोई सामाजिक मोक्ष होवे हें. वामें अपनूकु व्यक्तिगत धर्म, व्यक्तिगत अर्थ, व्यक्तिगत काम और व्यक्तिगत मोक्ष कु थोड़ो डाइल्यूट् करनो ही पड़ेगो यदि समाजमें रेहनो हे तो. नहीं तो समाजकु छोड़के जाओ. समाज अपनूकु बांधके तो रखे नहीं हे. अपने समाजमें अपन् सामाजिक कब हो रहे हें, ये अपनूकु पता नहीं हे. अपनो जन्म ही अपनी अपने समाजमें एंट्री हे. समाजने भी अपनूकु वा समाजमें जन्म होवेके कारण स्वीकार कियो हे. पर इतनो स्वातंत्र्य तो अपने समाजने अपनूकु दियो ही हे के यदि अपनूकु ये समाज पसंद नहीं आ रह्यो हे तो अपन् वाकु छोड़के जा सकें. पुराने जमानेसु ये प्रक्रिया चालू ही हे. कितने सारे हिन्दु, जैन-बौद्ध हो गये. अलीखान रसखान पठान होते भये वैष्णव हो गये. अपने मोहब्बत खान पहले राठौड़ हते, फिर मुसलमान हो गये. समाजमें छोड़वेकी व्यवस्था तो हे ही. प्रथम एंट्री अपने कन्ट्रोल्में नहीं हे पर छोड़नो अपने हाथमें हे. पर यदि आप जा समाजमें रेह रहे हो तो दो बात आप नहीं कर सको हो के समाजमें रेहनो तो हे पर वा समाजको धर्म आपको धर्म नहीं हे. आपकु व्यक्तिगत धर्मको सामाजिक धर्मके साथ तालमेल बैठाके ही आचरण करनो पड़ेगो. व्यक्तिगत जो अर्थ हे वाकु सामाजिक अर्थके साथ तालमेल बैठाके ही अर्थ करनो पड़ेगो. व्यक्तिगत जो काम हे वाकु सामाजिक कामके साथ तालमेल बैठाके ही काम करनो पड़ेगो. या तरहसु ही व्यक्तिगत जो आपको मोक्ष हे वाको सामाजिक मोक्षके साथ तालमेल बैठाके ही मोक्षकी धारणा करनी पड़ेगी.

(राणाव्यासको आत्महत्याको प्रयास : नशीली अहंता)

अपन् अच्छी तरहसु जाने हें के आत्महत्या व्यक्तिगत विषय

हे. पर अपनो समाज या बातकु नहीं स्वीकारे हे. आप आत्महत्याको प्रयास करो तो आपकु जेलकी सजा और होय. अरे! जो मरवे जा रह्यो हे वाकु जेलकी सजाकी क्या आवश्यकता? तुम तो छोटी सजा दे रहे हो. वो तो बड़ी सजा भुगतवे जा रह्यो हतो. पर कानून क्या करे के ये आत्महत्याके प्रयासमें पकड़ा गये हे यासु इनकु जेलकी सजा दो.

हमारे एक चंदुभाई हते. रघुनाथलालजीकी यात्रामें हमारे साथ हते. जतीपुरामें उनकु कोईने मांजोग खवा दी. 'मांजोग' मानें भांगकी बर्फी. वाके बाद चंदुभाईकु नशा चढ़ गयो. सारी यात्रामें चंदुभाई मेरो जिगर-जान दोस्त. हम साथ बैठते, साथ चलते, साथ रहते. जतीपुरामें वाने केहवा दी के ''श्यामु बाबाकु कहो के मैं मरवे जा रह्यो हूँ''. मेरो दिल धुक-धुक करवे लग्यो के चंदुभाईकु अचानक क्या हो गयो? मैंने कही के ''कहां हे चंदुभाई''. लोगनूने कही के ''वा कुआकी पालपे सोयो भयो हे''. मैं दौड़के गयो और पूछी के ''क्या भयो''. बोल्यो ''श्याम बाबा! मरनो हे''. मैंनें पूछी ''क्यों?'' बोल्यो ''बस मरनो हे''. मैंनें कही ''कैसे मरोगे?''. बोल्यो के ''कुआमें पड़के''. मैंने सोची कुआकी पालपे तो सो रह्यो हे और पड़ नहीं रह्यो हे. मैं समझ गयो के कोई और लफड़ा हे. पालपे सोनो भी हे और पड़नो भी हे. दोनों काम एक साथ कैसे हो सकें! मैं समझ गयो कुछ अहंता-ममतामें लोचा हे. नशीली अहंता कुछ केह रही हे और ममता कुछ और केह रही हे के पड़वेमें डर लग रह्यो हे. मैंने धीरेसु पूछी ''चंदुभाई! भांग पी हे क्या?'' बोले ''हां'' मैंने व्रजवासीनूकु कह्यो के ''इनकु यहांसु उठाके ले जाओ. ये मरवेवालो हे नहीं. याकु नशा चढ़ गयो हे''.

ऐसे ही कभी अहंताको नशा चढ़ जाय, कभी ममताको नशा चढ़ जाय और वामें जो करनो होय वो काम नहीं करे पर जो

नहीं करनो होय वो काम करवेकी सोचे. पर कर तो सके नहीं. आत्महत्या करनी हे. तो करो न! क्यों नहीं कूद रहो हो नदीमें. तो कहे के "कैसे कूदें पानी ठंडो हे". अरे आत्महत्या करवेमें पानीके ठंडे होवेकी समस्या कहां खड़ी हो गई! तो कहे "हम धूप निकलवेकी बाट देख रहे हें." अरे! जब आत्महत्या करनी हे तो पानी ठंडो होय के गरम, वामें फरक क्या पड़े? मतलब साफ हे के अहंता-ममतामें कोऑर्डिनेशन् नहीं हो रह्यो हे. दोमेंसु कोई एक चीजने भांग पी ली हे, चंदुभाईकी तरह. अपने जीवनमें अपन् बिन घोटी भांग पी लें और पाछे अपनूकु नशा भी वाके बहोत दिव्य चढ़े हें. हम ये करेंगे, वो करेंगे. ये सारो चरित्र राणाव्यासको हे. इनकी अहंता ऐसी नशीली अहंता हे के "मेरे बराबर कोई विद्वान नहीं हे. मेरे बराबर कोई ब्रह्मचारी नहीं हे. मेरे बराबर कोई त्यागी नहीं हे". ये बहोत नशीली अहंता हे. अब वाके हिसाबसु जीनो हे तो जीयो नहीं जाय. जीनो तो वा ममताके बीच ही हे. अब जैसे मैंने पहले बताई के अहंता-ममताको रिलेशन् ऐसो हे के *तेरे बिना चले नहीं और तेरे मेरे बने नहीं.* जब अहंता बढ़ जाय तो याही तरहको कलह होवे.

वाकी कथा राणाव्यासकी हे और वाके कारण राणाव्यासने कई-कई उपद्रव किये. काशीके पंडितनूसु शास्त्रार्थ करवे चले गये, हार गये. अरे! हार गये तो वामें आत्महत्या करवेकी क्या जरूरत हे, चंदुभाईकी तरह के 'अब मरना हे'. अहंताको नशा चढ़यो भयो हे न! कैसो नशा के "हम तो पंडित हे, हम तो शास्त्रार्थ करेंगे. शास्त्रार्थ करके काशीके पंडितकु जीतके आयेंगे. गाममें ढिंढोरा पिटवायेंगे के हम काशीके पंडितनूकु जीतके आये." वो तो पक्षग्रहणमें ही फंस गये. फिर तो अहंकारकु ठेस पहोंच गयी. हरिरायजीने भी ये ही बात कही राणाव्यासकी तरह. उनने कही के "उत्तम कक्षाना भगवदीय देवद्रव्य न खाय पण जघन्य कक्षाना भगवदीयने शुं दरियामां पड़ीने

मरी जवु''. मैंने कही के ''अरे! जिन्दे रहो न! देवद्रव्य खाये बिना जी नहीं सको हो क्या? ऐसो क्यों कबूल कर रहे हो के हम जघन्य कक्षाके ही हें''. बात तो सच्ची कही के उत्तम कक्षाके लोग देवद्रव्य नहीं खायें. पर यासु जघन्य कक्षाके जीवको क्या होयगो. वाकु दरियामें मर जानो? अरे! जो जीनो चाह रह्यो हे वाकु तो बहोत सारे उपाय जीनेके मिलेंगे. एक ही उपायपे ममता क्यों नशीली हो गयी हे के हमकु देवद्रव्य ही खानो हे. या तरहकी ममता नशीली ममता हे. या तरीकेकी अहंता नशीली अहंता हे.

(चेतना-जीवनके घाल-मेलके कारण सुख-दुःखाभावकी समस्या)

उन नशीली अहंता-ममतानूपे अपनकु कन्ट्रोल् लानो चहिये. अहंता-ममताकु या तरीकेकी भांगकी बरफी नहीं खवानी चहिये के जासु उनकु नशा चढ़ जाय. बाकी स्वस्थ अहंता-ममतामें कोई बुराई नहीं हे क्योंके वो अपने आपमें इतनी लचीली हे के वे दोनों एक-दूसरेको बॅलेन्स् सम्हाले हें. जब अहंता बढ़े तब ममता वाकु सॉफ्ट् कर दे. जब ममता बढ़े तो अहंता वाकु सॉफ्ट् कर दे हे. वो प्राकृतिक सिद्धान्त या प्रकारको बनायो गयो हे अपनी सिस्टमूमें, जो मैं आपकु दो-तीन दिनसु समझा रह्यो हूं के अपनी चेतना और अपनो जीवन. चेतना अपनी अहंताको रूप ले रही हे और जीवन अपनी ममताको रूप ले रह्यो हे. अब अपनी चेतना और अपनी ममता को जो घाल-मेल हे वो घाल-मेल अपनूने तो नहीं कियो हे. वा घाल-मेलमें तो अपन् पैदा भये हें. अपन् यदि या घाल-मेलकी निंदा करें तो वो तो बहुजीवाली बात आ गयी के अपने बापकु अपवित्र मानो. अरे तुम पैदाइश ही याकी हो. क्योंके अपनी चेतना अपने जीवनके बिना भूत-प्रेत लगेगी. कोई भी चेतना शरीरके बिना अपने इर्द-गिर्द आती होय तो चाहे वो सगो पति पत्नी पिता के पुत्र होय, अपनूकु डर लगेगो के नहीं? कभी पतिकी चेतना आके खटिया हिला जाय. जाके साथ खाटपे सोते हते पर

वो अकेली चेतना यदि खटिया हिला जाय तो पतिकु बापकु भूत समझके डरेगो के नहीं डरेगो? बिना शरीरकी चेतना डरावनी हो जाय. और बिना चेतनाको शरीर भयंकर हो जाय, सड़वे लग जाय. विकृत लगवे लगे. दोनोंको सौंदर्य एक-दूसरेके साथ हे. दोनों एक-दूसरेके साथ मिलके काम कर रहे हें. अपनो शरीर और अपनी चेतना के कारण जो खूबसूरती पैदा हो रही हे, वो अपनेकु प्रकट कैसे होवे. वाको उपाय बतायो के मूलमें तो इन दोनोंन्के घाल-मेलके कारण प्रॉब्लेम् दोनोंन्के सुख और दुःखाभाव की हे.

(आधिभौतिक पुरुषार्थ : व्यक्तिगत-सामाजिक धर्मादिको समन्वय)

यदि इनकु व्यवस्थित करनो होय तो समाजमें हम पैदा भये हें तो सामाजिक जो अपनो शरीर हे और अपनी सामाजिक अहंता हे, वामें घाल-मेल तो होयगो ही. कैसे होयगो? वो या प्रकार अपन् समझ सके के यहाँ अपन् जितनो भी झगड़ते होंय आपसमें पर जो लोग विदेश जावे हें; समझो आप विदेश गये हो और वहां आपकु किशनगढ़को कोई नागरिक मिले तो दौड़के मिलवेकी इच्छा होयगी के नहीं? यहां आप वासु बोलते भी नहीं होओगे. शायद वाको नाम भी नहीं जानते होओगे. शायद आपको और वाको धर्म अलग भी हो सके. शायद आप यहां साथ रहते तो झगड़ा भी करते. पर यदि विदेशमें कोई अचानक किशनगढ़को आदमी मिल्यो तो पहली अपनी वृत्ति होयगी "कांई सा कठे का हो. मैं भी किशनगढ़का थें भी किशनगढ़का" ममता हे के नहीं? पता हे अपनकु के ममता हे नहीं, पर वो अपने आप प्रकट हो जाय. ममतास्पद कोई दिखे तो ममता प्रकट हो जाय. नहीं दिखे तो नहीं प्रकट होय. ऐसे ही अहंतास्पद अपनकु कछु दिखे तो अपनेमें अहंता प्रकट होवे और नहीं दिखे तो? संस्कृतमें एक बहोत अच्छो श्लोक हे "**यत्र तार्किकाः तत्र शाब्दिकाः यत्र शाब्दिकाः तत्र तार्किकाः यत्र न उभयं तत्र च उभयं यत्र च उभयं तत्र न उभयम्**" कोई

भाषाको पंडित मिल जाय तो हम कहे के भाषा नहीं हमकु तर्कशास्त्र आवे. कोई तर्कशास्त्रको पंडित मिल जाय तो हम कहे के हम तो शब्दशास्त्र जाने हें, तर्क नहीं जाने हें. कैसे अपनेकु बचाके रखनो जो के सामनेवालो अपनेकु दुलत्ती नहीं चला सके. जहां दोनों नहीं होंय वहाँ दोनोंनूके पंडित बन जाओ. जहां दोनोंनूको पंडित मिल जाय वहां हाथ जोड़ दो के मैं क्या जानूं, ये एक टॅक्नीक् हे अहंता-ममताकु सुरक्षित रखवेकी. ये कौनकी टॅक्नीक् हे? डरपोकनूकी. डिप्लोमॅटिक् लोगनूकी टॅक्नीक् हे. ये वीर पुरुषकी टॅक्नीक् नहीं हे.

याके बिल्कुल विरोधी एक दूसरी नशीली अहंता-टॅक्नीक् हे के जो कुछ जाने नहीं, बूझे नहीं पर सबके सामने बिगुल बजातो रहे के ये भी मैं जानूं, वो भी मैं जानूं, अरे जानो तो फिर आओ शास्त्रार्थ करें. वहाँ टॉय्-टॉय् फिस्स हो जाय. इन दोनोंनूमेंसु बचवेको उपाय व्यक्तिकु कब समझमें आवे के जब वो सामाजिक प्राणी होवेकी हेसियतमें व्यक्तिगत और सामाजिक धर्मनूको समन्वय कर सके. सामाजिक और व्यक्तिगत अर्थ काम मोक्ष को समन्वय कर सके तब वो एक अच्छो सामाजिक प्राणी हे.

(सुख-दुःखको परिवर्तन आध्यात्मिक पुरुषार्थमें बुद्धिके कारण)

मनुष्य जैसे सामाजिक प्राणी हे ऐसे एक धार्मिक प्राणी भी तो हे. **"आहार-निद्रा-भय-मैथुनं च सामान्यम् एतत् पशुभिः नराणां, धर्मो हि तेषाम् अधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः"**.(सुभाषित) आहार निद्रा भय मैथुन, ये प्रकृति तो जैसी जानवरनूमें हे ऐसी मनुष्यमें भी तो हे पर अपनेमें एक अधिक बात हे, वो हे धर्म. जानवरनूको कोई धर्म नहीं होवे. जानवरनूमें नीति होवे, व्यवहार होवे. मनुष्यके बजाय अधिक नीतिज्ञ जानवर होवे हे. अपन् जाने हें के पांडवनूके कुत्ताने छेल्ले तक युधिष्ठिरको साथ दियो. अपने मालिककु बचावेके लिए बहोत सारे कुत्ता शेरसु भिड़ जावें. बहोत सारी गायें

ग्वालाकु बचावेके लिए शेरसु लड़ पड़े. कितनी नीति हे उनमें! आपकु शायद ख्याल होय के नहीं, जब बम्बईमें छब्बीस तारीखकु आतंकवादी आये हते तो वा होटल्में दस कमांडो बैठे हते. एक एक कंमाडोकी ट्रेनिंग्में बीस-पच्चीस लाख खर्च होवें. पर कमांडो अटॅक् होते ही पहले भग गयें. जिनकी सिक्यॉरीटीको जिम्मा उनपे हतो वो फंस गये. कुत्ता नहीं भागें, जिनकु कोई ट्रेनिंग् नहीं मिली. नीति व्यवहार तो उनमें अच्छो हे के नहीं? पर उनके पास धर्म नहीं हे. क्योंके जानवर अपने सुख-दु:खाभावसु अधिक कुछ सोचे नहीं हे. जा काममें वाकु सुख होवे, वे वो करे हें. जा काममें वाकु दु:ख होवे वे वो नहीं करे हें. वे नीतिके अनुसार भी बरतें के जामें मोकु दु:ख हो रह्यो हे, तो वाकु भी दु:ख होयेगो.

आपकु एक लंदनकी बात बताऊँ. लंदनमें एक पति-पत्नीने कुत्ता पाल्यो. पर कोई वजहसु उनमें आपसमें झगड़ा भयो. जब-तक पति-पत्नी आपसमें झगड़ते रहे तब-तक कुत्ता गुर्रातो रह्यो. जब झगड़ा बढ़के हाथापाईपे आयो तब तो वा कुत्ताने उन दोनोंनकु इतनो काट्यो के उनकु लड़ाई बंद करनी पड़ी. मतलबके कुत्ताकु भी समझमें आ रह्यो हे के ये क्या झगड़ रहे हे! जैसे घरको कोई बड़ो, जब छोटे झगड़ा करें तो उनकु डांटे. अन्तमें उनको झगड़ा बंद हो गयो. मतलब जानवरनमें नीति तो हे न! कुत्ताकु भी समझमें आ रह्यो हे के भले ही ये मेरे मालिक हें पर यदि बच्चाकी तरह झगड़ रहे हें तो उनकु दंड दो. पति-पत्नीकु आपसमें झगड़नो नहीं चहिये, ये बात कुत्ताकु भी समझमें आ रही हे. कुत्तामें भी व्यवहार और नीति तो हे ही. पर क्योंके वो अपने सुख और दु:खाभाव के कॅल्क्युलेशन्में ही जीये हे और उनके यहां धर्म नहीं हें. उनके यहां अर्थ काम मोक्ष, पुरुषार्थ नहीं हे. जी रहे हे तो जी रहे हे पर जा दिन मर जायेंगे वा दिन मोक्ष हो जायगो. यासु ज्यादा जानवरकु और कोई ज्ञान नहीं हे.

अपनकु क्योंके बुद्धिके कारण ये बात समझमें आयी हे के अपने सुख-दुःख क्यों हो रहे हें और वो अपने गलत धर्मके चुनावके कारण हे. अपने गलत अर्थ और कामके कारण या अपने मोक्षकी गलत धारणाके कारण अपनेकु दुःख-सुख नहीं रेहके पुरुषार्थमें परिवर्तित हो गयो. अब दुःखात्मक-सुखात्मक धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये अपनेकु अर्थमॅटिक् स्तरपे आवे हे. वो ही बात थोड़ी ऊपर चढ़े तो आध्यात्मिक स्तरपे आवे के ये धर्म दुःखात्मक हे ये धर्म सुखात्मक हे.

(धर्मादिकी सुख-दुःखरूपता अपने मनोभावके कारण)

एक ठिकाने मेरी प्रश्नोत्तरी चल रही हती. वा वैष्णवन्की प्रश्नोत्तरीमें एक जैन लड़की आ गयी. क्योंके अपने यहां संन्यास त्याग मुनि वगैरह नहीं हे तो जैन लड़कीकु ये अच्छो नहीं लगे. वाने आते ही सवाल कियो के "क्या खानो और पैदा करनो ही पुष्टिमार्ग हे?" मेरी समझमें आ गयो के ये व्यक्ति वैष्णव तो नहीं हे. जांच-पड़तालपे पता चल गयी के जैन हे. मैंने वाकु कही के "बात तो तुम्हारी सच्ची हे के हमारे यहां खानो और पैदा करनो ही हे और कुछ नहीं हे पर सौभाग्यसु हमारो खानो हम बना रहे हें और अपने बच्चा हम पैदा कर रहे हें. तुम्हारे यहां तुम्हारे मुनिनके लिए सात घरमें खाना बने और मुनिकु शिष्य बनावेके लिए बच्चा भी दूसरेके लेने जाने पड़े हें. हम हमारे बच्चाकु ही शिष्य बना रहे हें. इतनो फरक हे. तुमकु एक मुनिके खावेके लिए सात घरन्में रसोई बनवानी पड़े. हम अपनी रसोई अपने ही घरमें बना रहे हें." ये बात सुनके वो छोरी वहांसु भाग गयी. बात समझवेकी हे के कोई धर्म पुरुषार्थ तुमकु दुःखरूप लग रह्यो हे. कोई पुरुषार्थ तुमकु सुखरूप लग रह्यो हे. जो लोग वैराग्यवादी हें उनकु गृहस्थ दुःखरूप लग रह्यो हे. जो गृहस्थ हें उनकु वैराग्य दुःखरूप लग रह्यो हे. जिनकु बिना मेहनतके पैसाकी आदत हो गयी हे, उनकु

अर्थ सुखरूप लग रह्यो हे. जिनकु बिना कमाये खरचकी वृत्ति नहीं हे, उनकु पता चले के अर्थ कितनो दुःखद हे. एक पैसा कमावेके लिये कितनी तकलीफ होवे ये बिना कमाये खर्च करवेवालेकु क्या पता!

ऐसे ही यदि कोई अपनी कामना अपने दम-खमपे पूरी करनी हे तो वामें तकलीफ हे. कोई काम सुखरूप हे, कोई काम दुःखरूप हे. ऐसे ही कोई मोक्ष भी दुःखरूप हे और कोई मोक्ष सुखरूप हे. जैसे कह्यो गयो हे कोईके द्वारा के "**वरं वृंदावने अरण्ये शृगालत्वं भजामि अहं नतु वैशेषिकीं मुक्तिं प्रार्थयामि कदाचन**" (न्यायभूषण.पृ.५९४) वो केह रहे हे के "वृंदावनमें मैं सियार बन जाऊँ और रातकु चाहे रोतो भी रहूँ, वो मोकु मंजूर हे लेकिन वैशेषिक दर्शनकी मुक्ति मोकु नहीं चहिये." वैशेषिक दर्शनकी मुक्ति मानें चेतनाकु वा अवस्थामें ले जानो के जा अवस्थामें न आपकु कोई ज्ञान रेह जाय, न कोई आपकी इच्छा रेह जाय, न आपकी कोई स्मृति रेह जाय, न आपकु कोई अनुभव रेह जाय. चेतनाकु वा अवस्थामें पहोंचानो. बिल्कुल डीप् कॉमा जैसी स्थिति. वा कॉमाकी स्थितिमें अपनी चेतनाकु साधना करके पहोंचानो, वो उनके यहां मुक्ति हे. वो केह रह्यो हे के ये मुक्ति तो मेरे लिए दुःखरूप हे. याके बजाय तो वृंदावनमें मैं सियार बन जाऊँ तो भी मोकु सुख होयगो. ऐसी मुक्ति मोकु नहीं चहिये के जामें मोकु ज्ञान भी नहीं होय, इच्छा भी नहीं होय, स्मृति नहीं होय और कोई अनुभव भी नहीं होतो होय. देखो, मोक्ष भी दुःखरूप हो गयो. अपने नागरीदासजी भी केह रहे हें के *मोखमें मोखकु कौन पूछे?* वो मोक्ष भी अपने लिए दुःखरूप हे. ऐसे ही कोई धर्म, कोई अर्थ, कोई काम अपने लिए सुखरूप अथवा दुःखरूप हो सके हे.

(विवेकहीन धर्मपुरुषार्थ)

ये सभी बात अपनकु समझ कब आयगी के जब अपनी

बुद्धिमें विवेक होय तो. जब अपन् स्वयं स्थिर, विवेकी नहीं हे तो कोई भी धर्म अपनकु धर्म लगेगो. कोई भी अर्थ, अर्थ लगेगो. कोई भी काम, काम लगेगो और कोई भी मोक्ष, मोक्ष लगेगो. जैसे ध्यानसु समझो के हमारे मुम्बईमें एक नम्र नामके जैन मुनि हे. उन जैन मुनिजीने अपने जैन मन्दिरमें एक राधाकृष्णकी मूर्तिकी प्रतिष्ठा करवायी. वामें अपने वैष्णवाचार्यनकु आमंत्रित कियो. मंदिर जैनको, मुख्य मूर्ति महावीरकी और साइडमें राधाकृष्णकी मूर्ति लगवाके गुसांई बालककु कही के इनकु आप पुष्ट कर दो. जैन मन्दिरमें वैष्णव भी आवे लग जायें, यालिए भाषणमें जैन मुनिजीने इतनी अच्छी बात कही के अपनो दिल फड़क उठे. उनने कही के "जैनधर्मके हिसाबसु कृष्ण पैंसठ हजार साल नरक भोगवेवालो हे. जामेंसु केवल पांच हजार साल ही बीते हें. साठ हजार साल बाकी हें. साठ हजार साल बाद कृष्णके सारे कर्मबंधन साफ हो जायेंगे और कृष्ण तीर्थंकर हो जायगो. साठ हजार साल बाद तीर्थंकर होवेवाले कृष्णकी मूर्तिकी हम प्रतिष्ठा कर रहे हें. नरकवाले कृष्णकी नहीं. जा कृष्णकु अपन् अभी मान रहे हें वो तो अभी नरकमें हे. वा मूर्तिकु बालकने पुष्ट कर दियो. अब क्या? कृष्णकु नरकमें माननो के गोलोकमें माननो? वैष्णवने पूछीके जैन मन्दिरमें आपने ठाकुरजी पुष्ट क्यों किये? बोले के "हमने भावसु पुष्ट नहीं किये केवल आंखसु पुष्ट कर दिये". बाबा रामरहीम भी तो गा रह्यो हे के *तेने तिरछी नजर चलायी तो मेरी सेटींग् हिल गयी.* या तरहसु हमारे बालकने भी कृष्णकी मूर्तिपे तिरछी नजर चला दी तो बेचारे कृष्णकी तो सेटींग् हिल गयी. अरे! तुम क्या कृष्णकी सेटींग् हिलावे गये हते? कौनसे कृष्णकु तुमने पुष्ट किये? नरकवालेकु के गोलोकवालेकु. ये सब गड़बड़ क्यों होवे हे? क्योंके मूर्ति तो कृष्णकी ही हे. वो मूर्ति तो राधा-कृष्णकी हे पर वो केह क्या रह्यो हे? वो साफ केह रह्यो हे के हम साठ हजार साल नरक भोग चुके तीर्थंकर कृष्णकी मूर्ति पधरा रहे हें. मानें बने भये शहरकु नहीं पर बनवेवाले शहरकी

ब्लूप्रिन्ट् हम प्रतिष्ठित कर रहे हें. अब न या बातकी बालककु पता और न वैष्णवनृकु पता. वैष्णव कहें के चलो जैन मन्दिर जहां बालकने राधा-कृष्ण पुष्ट कर रखे हे. बालक केह रह्यो हे के हमने भावसु नहीं, केवल दृष्टिसु पुष्ट किये हे. ये क्या हो रह्यो हे समझ नहीं आवे.

(आधिदैविक धर्मादिमें आध्यात्मिक-आधिभौतिकधर्मादिको अन्तर्भाव)

व्यक्तिकु अपने धर्मार्थकाममोक्ष पुरुषार्थके जो स्वरूप हें, आधिभौतिक आध्यात्मिक आधिदैविक उनको विश्लेषण समझनो चहिये. वासु अपन् अपनो ऑर्डर् निश्चित करें और वामें समझवेकी बात ये हे के सुख और दुःखाभाव को जो अपनी चेतनाको स्टेज् हे, वा स्टेजूपे अपनी चेतनामें धर्मार्थकाममोक्षकी अवेरनेस् नहीं हे. पर जा बखत आधिभौतिक धर्मार्थकाममोक्षकी अपनूकु अवेरनेस् हे, वा समय सुख-दुःखको खाता तो चालू रहेगो ही. जैसे एक मोतीमें अपन् धागा डालें तो वो एकके बाद दूसरे तीसरे मोतीमें आ जाय हे. ऐसे सामाजिक धर्मार्थकाममोक्षकी अपनी अवधारणामें धागाकी तरह ये सुख और दुःखाभाव चालू ही हे. या आधिभौतिक धर्मार्थकाममोक्षकी अवधारणामें आध्यात्मिक धर्मार्थकाममोक्ष मौजूद नहीं हे. पर जो धर्मार्थकाममोक्षकी आध्यात्मिक अवधारणा हे, वामें सामाजिक अथवा आधिभौतिक धर्मार्थकाममोक्षकी अवधारणा वाको एक पार्ट बनके आ रही हे. ऐसे ही आधिदैविक धर्मार्थकाममोक्षकी जो अवधारणा हे वो आध्यात्मिक धर्मार्थकाममोक्षको पार्ट नहीं हे. पर जो आधिदैविक धर्मार्थकाममोक्ष हे वामें आध्यात्मिक और आधिभौतिक धर्मार्थकाममोक्षकी अवधारणा वाको हिस्सा बनके आ रही हे.

अपन् कैसे याकु समझें के जैसे चौबुर्जाकी पहली सीढ़ी आप चढ़ रहे हो वा बखत चौबुर्जाकी बुरज आपकु दीखती होय के नहीं दिखती होय. ये एक प्रश्न ही हे पर जब आधी सीढ़ी चढ़

जाओगे तो बुरज नहीं भी दिखे पर नीचेकी सीढ़ी तो आप चढ़ ही चुके हो. और जब चौबुर्जपे आप चढ़ गये तो आपकु आपकी आंखके नीचे चौबुर्जा पूरो दिखाई देगो. वा बखत आप यों नहीं केह सको हो के नीचेकी चौबुर्जाकी सीढ़ी नहीं हे. अरे! आप वा सीढ़ीपे ही तो चढ़के गये हो. जैसे आप जा बखत क ख ग घ रट रहे हो तो आपकु शब्द नहीं आ रहे हे, बाराखड़ी आ रही हे पर जब शब्द आपकु आ रहे हे तो वाक्य आने जरूरी नहीं हे. पर जब वाक्य आ गये तो वामें अक्षर और शब्द तो आ ही जायेंगे. जब आप पुस्तक पढ़ रहे हो तो जा बखत आप वाक्य सीख रहे हो वा बखत पुस्तक नहीं सीख रहे हो. जा बखत पुस्तक पढ़वे लग गये तो वामें वाक्य तो आ ही जायेंगे. ऐसे ही ऑर्डर वाइज् याकु समझो के सुख-दुःख ऊपर तक जा रह्यो हे. जो धर्मार्थकाममोक्षकी आधिदैविक स्टेज् हे, वामें भी सुख-दुःख तो आ ही रहे हें.

(आधिदैविक पुरुषार्थ : पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं...)

वो सुख-दुःखकु महाप्रभुजी षोडश ग्रन्थमें कैसे बता रहे हें? पुष्टिमार्गमें शरणागतिके लेवल्पे सुख-दुःख क्या हे? समर्पणके लेवल्पे सुख-दुःख क्या हे? सेवाके लेवल्पे पुरुषार्थके रूपमें सुख-दुःख क्या हे? भक्तिके लेवल्पे पुरुषार्थरूपमें सुख-दुःख क्या हे? वो सब बात महाप्रभुजीने षोडश ग्रंथमें बहोत विस्तारसु और व्यवस्थित रूपसु अपनकु समझाई हे. उन समझायी भई बातन्को निष्कर्ष महाप्रभुजीने चतुःश्लोकीमें समझायो हे के **"पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं धर्मो अर्थो हरिरेव हि कामो हरिः दिदृक्षैव मोक्षो कृष्णस्य चेद् ध्रुवम्"** (वृत्रासुर चतु.४) ये अपने महाप्रभुजीकी चौबुर्जाकी तरह सबसु ऊपर रही भयी स्कीम् हे, जामें नीचेकी बातें समायी भयी हे. पर नीचेकी बातन्में ये समायो भयो नहीं हे. जैसे-अक्षरमें पुस्तक समायी नहीं हे. पर पुस्तकमें अक्षर, वाक्य समाये भये हें. वा तरहसु सुख-दुःखकु वर्णमालाके अक्षरकी

तरह समझो. वासु अपने कुछ सामाजिक पुरुषार्थके शब्द बन रहे हैं. वासु अपने आध्यात्मिक पुरुषार्थके वाक्य बन रहे हैं. वासु अपने आधिदैविक पुरुषार्थको ग्रंथ लिख्यो गयो हे.

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्य अयमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन॥
एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति।
प्रभु सर्वसमर्थोहि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत्॥

ये चौबुर्जा जैसे शिखरकु समझावेके लिए हे. यामें नीचेको नहीं हे, वो तात्पर्य नहीं हे. पर वा लेवलपे ये हे ही, ये समझनो हे. ये बात अपनकु कैसे व्यवस्थित करनी के जासु अपनो पुष्टिमार्गीय धर्मार्थकाममोक्ष क्या हे, वो यदि अपनी समझ बराबर होयगी तो ये बात ऑटोमेटीकली समझमें आ जायगी के आध्यात्मिक धर्मार्थकाममोक्ष क्या हे! और आध्यात्मिक समझमें आयो तो आधिभौतिक धर्मार्थकाममोक्ष क्या हे वो समझमें आ जायगो. वो समझमें आयो तो कहां तुम्हारो सुख हे और कहां तुम्हारो दुःखाभाव हे. वो कैसे हासिल करनो, वो समझमें आ जायगो. जीवन तुम जी सकोगे. जीवनमें शांति आयगी तो व्यवहारमें शांति आयगी. वो फिर विचारनमें शांति लायगी. विचारकी शांति तुम्हारे तर्ककी शांतिमें परिणत हो जायगी और तुम शास्त्रार्थ जीत सकोगे. यदि यामें तुमने अहंकार कियो तो पाछे अशांत हो जाओगे और फिर वो सांप-सीढ़ीको खेल चालु हो जायगो. कैसे सीढ़ीपे आके अपन् चढ़ जायें और ऊपर तक पहुंचवेके बाद वापे कैसे अपन् नीचे आ जावें! ऐसे ही अहंकाररूप जो सर्प हे वो अपनकु वहीं लाके पटक दे जहांसु अपन्ने खेल चालु कियो हतो. *"जिस जगहसे ले चला था राहबर, हम वहीं आये हैं फिर लौटके"* वा तरहकी स्थिति पैदा होवे, वो नहीं होवे यालिए महाप्रभुजीने कही के **"शास्त्रार्थ जीते सो तो अच्छो कियो. अहंकार मति करियो. जाको अहंकार करेगो वा वस्तुको नाश होयगो"**.

ये बात ध्यानसु समझवेकी हे के जो पुष्टिमार्गीय धर्मार्थकाममोक्षपे भी लागू हो रही हे. यासु ही राणाव्यासकी कथा अपनी भी कथा हे. पुष्टिमार्गीय धर्माचरण बहोत अच्छी बात हे. पुष्टिमार्गीय अर्थको सम्पादन बहोत अच्छी बात हे. पुष्टिमार्गीय कामकी सन्तुष्टि बहोत अच्छी बात हे. पुष्टिमार्गीय मोक्षावस्थाकु जीनो बहोत अच्छी बात हे. पर वाकु अहंकारसु जीयो तो दूसरी कोई चीज नाश करे के न करे पर तुम्हारो ही अहंकार वाको नाश कर देयगो. **''जाको अहंकार करो वाको नाश होय''**. ये बात यद्यपि महाप्रभुजीने राणाव्यासकु कही हे. पर उनके निमित्तसु अपन् सबन्पे ये बात लागू हो रही हे. ये राणाव्यासकी कथा नहीं हे, अपनी भी कथा हे. अपनी कथाको ॲपीसोड़ अलग हो सके पर बात सबन्पे लागु हो रही हे.

[४]

(सिंहावलोकन)

कल अपन्ने चेतना और जीवन के एक-दूसरेमें घुल-मिल जावेके कारण, प्रारंभके स्तरपे कैसे अपनी कामना सुख और दुःखभाव की होवे और वो जब अपन् थोड़े और विकसित रूपमें प्रकट होवे के जामें अपन् समाज बना सकें, जामें अपन् बुद्धिको प्रयोग कर सकें. वाके कारण सुख कैसे पानो और दुःख कैसे मिटानो, वहां-तक बात सीमित न रेहके पुरुषार्थके रूपमें विकसित होवे हें. वा विकासमें सामाजिक धर्मार्थकाममोक्ष, आध्यात्मिक धर्मार्थकाममोक्ष, आधिदैविक धर्मार्थकाममोक्ष, धीरे-धीरे वाकी आती भयी स्टेज् हें. यहां-तक कल अपन्ने देख्यो. वाके तहत मैनें एक और बात बतावेको प्रयास कियो के चतुःश्लोकीमें जो धर्मार्थकाममोक्ष हे, वो कोईकु कॅन्सल् करके नहीं आ रह्यो हे. बल्कि सबकु इन्कॉर्पोरेट् करके आ रह्यो हे. अपन् या बातकु समझे हें के नयो शहर पुराने शहरकु कॅन्सल् करे हे. पुरानो शहर नये शहरकु कॅन्सल् करे हे. क्योंके जो पुरानो शहर हे वो नयो शहर नहीं हे और जो नयो शहर हे वो पुरानो शहर नहीं हे. पर 'किशनगढ़' कहें तो वामें नयो और पुरानो दोनों शहर आ जायें. वा परिवेशमें जो अपनी सामाजिकता आ रही हे, वाके धर्मार्थकाममोक्ष, नये व पुराने शहरके धर्मार्थकाममोक्षकु कॅन्सल् नहीं करे हें अपितु उन दोनोंन्के धर्मार्थकाममोक्षको समावेश करके चले हे. अपन् याकु यों भी समझ सके हें के जैसे किशनगढ़ म्युनिसिपालिटीके अन्तर्गत आवे हे, वो राजस्थान अॅसेम्बलीके रूल्कु कॅन्सल् नहीं करे हे पर वाकु समाविष्ट करके चले हे. राजस्थानकी अॅसेम्बलीके जो नियम हे वो भारतके कॉन्स्टीट्यूशन्कु कॅन्सल् नहीं करे हे, अपनेमें समाके चले हे. पर भारतके कॉन्स्टीट्यूशन्के तहत जो अपनी जिम्मेदारी आ रही हे धर्मार्थकाममोक्षकी और राजस्थानके रूल्के तहत और म्युनिसिपालिटीके नियमन्के तहत जो अपनी जिम्मेदारी आ रही हे उनमें नीचेवालीमें ऊपरवालो मौजूद नहीं हे पर ऊपरवालेमें

नीचेवाली मौजूद होवे हे. ये सिस्टम् कल-तक मैनें आपकु बतायी हती. वाके लिए थाके निष्कर्षके तौरपे एक बात और बतायी हती के जो मूलमें चेतनाकी बात चली हती के सुख चहिये हे और दु:ख नहीं चहिये, वो बात ऊपर तक भी कायम रेह रही हे. क्योंके ऊपरके भी जो धर्मार्थकाममोक्ष हें, वो 'ये सुख चहिये हे' वाको ही तो एक विकसित रूप हे. या बातकी अपनी आवश्यकता हे, वो ही इन धर्मार्थकाममोक्षके रूपमें खिल रही हे.

(गीतोक्त वचनसु चेतना-जीव-प्राण-अहं को समन्वित अर्थ)

वामें सवाल ये आयो के गीतामें भगवान् अहंकारकु अपनी जड़प्रकृतिके तहत गिन रहे हें. **''भूमि: आपो अनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च, अहंकार: इतीयं मे भिन्ना प्रकृति: अष्टधा''** (भग.गीता ७।४) भूमि जल तेज वायु आकाश मन बुद्धि और अहंकार ये सब मेरी जड़ प्रकृति हे और **''अपरेयम् इत: तु अन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां जीवभूतां महाबाहो! ययेदं धार्यते जगत्''** (भग.गीता ७।५) एक जीवभूत मेरी चेतन प्रकृति हे. ऐसे मेरी दो प्रकृति हें, भगवान्की तो अनंत प्रकृति हो सके पर अपनी तरफ दो प्रकृति खुली हे. सारी प्रकृति अपनी तरफ नहीं खुली हे. 'प्रकृति' मानें भगवान्को कॅरेक्टर, भगवान्को नेचर्. दो नेचर् अपने सामने प्रकट भये हें. एक जड़-नेचर् और जीव-नेचर्. ये जो दो प्रकृति खुलीं, इनमें खास करके पृथ्वी जल तेज वायु आकाश में अपनकु चेतनाकी अनुभूति नहीं होवे. यासु अपन् इनकु जड़ प्रकृति समझें. अपने आपमें अपनकु चेतनाकी अनुभूति हो रही हे. यासु अपन् अपनी जड़-प्रकृति नहीं समझके अपनी जीव-प्रकृति समझ रहे हें. पर यामें खास समझवेकी बात ये हे के जा वखत अपन् 'जीव' केह रहे हें, संस्कृत भाषामें 'जीव'को अर्थ होवे के जो प्राण धारण करे. पर प्राण तो जड़ हे, चेतन नहीं हे. चेतना प्राणकु धारण करे. आजके ढंगसु समझनो हे तो ये समझो के अपन् जी रहे हें क्योंके अपनी सांस चल

रही हे. सांसके चलवेकी प्रकृतिकु अपनी चेतना धारण कर रही हे. यासु ही अपन् अपनेकु 'जीव' मान रहे हें. जा बखत सांस नहीं चलती होय वा बखत चेतना होवे के नहीं? कोई भी डॉक्टरसु पूछो तो वो बतायगो के सांस बंद होवेके पांच-दस मिनटके बाद भी अपनी आंखे जिंदा रहे हें, कान जिंदा रहे हें. शरीरके बहोत सारे अंग जिंदा रहे हें. वा दरमियान उनकु निकालके दूसरे शरीरमें लगा दियो जाय तो वे जीवित अंगकी तरह ही काम करवे लगें. उनमें चेतना होवे, पर प्राण नहीं होवे. क्योंके जब अपनूने सांस लेनी और छोड़नी बंद कर दी तो प्राण तो रहे ही नहीं. पर चेतना उनमें अभी भी हे. यामें आश्चर्य नहीं समझनो चहिये. जैसे छिपकलीकी पूंछ कट जाय पर कटवेके बाद भी वो कुछ देर तो हिलती रहे हे. कटवेके बाद भी वामें चेतना तो हे ही. आज जितने भी सी.सी.टी.वी. कॅमरा लगे हें, कोई आ रह्यो हे, वाकी उनकु चेतना हे के नहीं? वाकु पहचानवेकी भी उनकी ताकत हे. उनमें ये इन्फोर्मेशन् स्टोर् होवे तो ये व्यक्ति पहले आयो हतो के नहीं, ये बात भी वो पता लगा ले और प्रोग्रामिंग् अच्छी कर दो तो जो आयो वाको नाम भी स्क्रीनूपे दे दें, या बोल दें. चेतना तो हे पर क्या प्राण हें?

ये जो अपनी समझ हे के चेतना और प्राण एक चीज हे, ये गलत हे. चेतना एक अलग चीज हे और प्राण एक अलग चीज हे. अपने उदाहरणमें चेतना और प्राण आपसमें घुल-मिल गये हें. यासु जब भी अपन् प्राण सोचें तो चेतना समझमें आवे और चेतना सोचें तो प्राण समझमें आवे. जैसे पानीमें थोड़ी रज मिली भयी होवे, ऐसे हवामें थोड़ो पानी मिल्यो होवे, आगमें थोड़ी हवा घुली-मिली होवे हे. हर आकाशमें ये पांचो तत्त्व घुले-मिले होंवे के नहीं होंवे? ये सब आपसमें या तरहसु घुल-मिल जाय हें. या घुलवे-मिलवेके कारण अपन् उनकु छुट्टे नहीं पाड़ सके हें.

मैंने युनिवर्सिटीकी क्लासमें एक समस्या दी हती के मिट्टीसु अपन्ने घड़ा बनायो, वो काहेको हे. अपनी पहली प्रतिक्रिया रहेगी के ये घड़ा मिट्टीको हे. पर सोचो के यदि पानी वामें नहीं होतो तो मटकाके रूपमें वाको आकार ही नहीं बनतो. पानी व मट्टी के आकारमें यदि सूक्ष्म छिद्र नहीं होते के जिनमेंसु हवा बाहर भीतर आ सके तो बाहरकी गरमी अंदरके पानीकु गरम कैसे करेगी? या अंदरको ठंडो पानी बाहरकी सरफेसकु ठंडो कैसे करेगो? मतलब वामें आकाश भी हे. अपन् समझ रहे हें के ये घड़ा मिट्टीको हे पर वो तो पांचो तत्त्वन्को हे. क्योंके अपन्ने वो मिट्टीसु बनाते भये देख्यो और कब वामें पानी घुल-मिल गयो और कैसे वामें हवा और तेज घुल-मिल गयो ये अपनकु पता ही नहीं चले. जब-तक वाकु गरम नहीं कियो जाय तब-तक मिट्टी और पानी सु सानके बनाये भये घड़ामें पानीकु भरे रखवेकी ताकत नहीं आ सके. वामें तेज भी हे. एक मिट्टीके घड़ामें पांचो तत्त्व मौजूद तो हें ही, पर अपनकु वो ही बात याद रहे जो अपन्ने मिलायी होय. जो अपने आप मिल गयी होय, वाको अपनकु ख्याल ही नहीं रहे हे. आकाश अपन्ने मिलायो नहीं तो अधिकसु अधिक वा मिट्टीके घड़ामें अपनकु पृथ्वी जल और तेज दिखे. हवा और आकाश नहीं दिखे. यासु अपन् कभी नहीं कहे हें के हवा और आकाश को घड़ा हे. हमेशा अपन् ये ही कहे हें के मिट्टीको घड़ा हे.

ऐसे ही अपनी चेतनाकी समझ अपनेकु नहीं हे के ये बला क्या हे? पर अपनेकु अपनी सांस चलवेकी समझ हे. सांस घुटवेकी, तेज चलवेकी, रुकवेकी समझ हे. या कारणसु सांस चल रही हे वाकु अपन् जीव समझ रहे हें. पर ध्यानसु समझो के सांस चलवेको नाम जीव नहीं हे, वो तो एक जड़ द्रव्य हे. वो हवाके भीतर और बाहर आवेकी व्यवस्था हे. वो तो आप बाथरूममें एक ऍक्जोस्ट्

लगा दो तो दरवाजाके छिद्रन्मेंसु हवा अपने आप आने लग जायगी और पंखा वाकु काढ़तो जायगो. वो तो एक मॅकेनिकल् सिस्टम् हे. वामें चेतनाको सिद्धान्त कहां हे? चेतनाको सिद्धान्त तो हे के हवाके आवे-जावेको जो मोकु अनुभव हो रह्यो हे, वो चेतनाकु हो रह्यो हे. जब अपन् 'जीव' केह रहे हें तो वा जीवमें चेतना और प्राण घुल-मिल गये हें, जैसे मिट्टीके घड़ामें पांचो तत्त्व घुल-मिल गये हें. वामें कुछ अपनकु पता चल रह्यो हे और कुछ पता नहीं भी चल रह्यो हे. ये याको रहस्य हे. या रहस्यके कारण प्राणधारण करवेकी मॅकेनिज़म् हे, वामें चेतना अंदर घुल-मिल गयी हे. वाकु अपन्ने तो आमंत्रण नहीं दियो हे. अभी भी देखो के जब भी हार्ट-अटॅक् आवे तो डॉक्टर् आत्माकु तो नहीं बुलावे हे. वो तो हार्टकु पम्प करे हे. क्योंके अपने बुलाये न आत्मा आवे हे और न आत्मा जावे हे. वो तो अपने मनसु आवे हे और अपने मनसु जावे हे. हार्ट-अटॅक् आवेपे डॉक्टर् हार्टकु पम्प् करे तो जो मशीन् बंद हो गयी हती वो कभी-कभी चलवे भी लग जाये. ये टयूबलाईट् पंखा सभीमें ऐसो हे के वामें डंडा मारो तो वो भी कभी चलवे लग जाय. मशीनकु तो कोई चलावेवालेकी जरूरत हे. यदि कोई चला देगो तो वो चल पड़ेगी पर वो मशीन् चली के नहीं चली वाकी गवाही कौन देगो? मशीन् नहीं देगी, वाकी गवाही तो चेतना ही देगी. यासु चेतना और जीव कु सैद्धांतिक तौरपे अलग माननो चहिये पर अपने उदाहरणमें वो घुल-मिल गये हें. जैसे खीरमें दूध और चावल घुल-मिल जायें. दूधमें चावलको स्वाद आ जाय और चावलमें दूधको स्वाद आवे. ऐसे ही चेतनामें प्राणको स्वाद आ जाय और प्राणमें चेतनाको स्वाद आ जाय. वा तरीकेकी यामें घाल-मेल हे.

या कारण जब भगवान् जीवकु 'जीव' केह रहे हें और चेतनासु छुट्टो बता रहे हें. वा बखत आपकु बतानो चाह रहे हें के जैसे

मैंने आपकु बतायो के मिट्टीके घड़ामें पांचों तत्त्व मौजूद हें. ऐसे कौनसो तत्त्व आपकी चेतनामें मौजूद हे के जाकु आप चेतन तरीके रेफर् कर रहे हो, वो तत्त्व हे 'अहं'. वो जड़ तत्त्व हे, अपनी चेतनाके इर्द-गिर्द खड़ी करी भयी एक प्रकारकी मशीन् हे. वो मशीन् रोज सोते बखत बंद हो जाय. वामें ऑटोमेशन् इतनो के सुबह वो फिर चालू हो जाय. नींदमें भी जब चले तो आपकु बोध होवे के "मैं हूँ." जब गहरी नींद आ गयी तो फिर वो बंद हो जाय. गहरी नींदके बखत अपन् जिंदे हें के मरे भये? अहंकी मशीन् वा बखत नहीं चल रही हे तो अपनकु पता ही नहीं चले के अपन् कहाँ सो रहे हें. अपनी चेतनासु वो अलग हे तो आपकी चेतना हे के नहीं, वाको प्रमाण क्या? तो समझो के जब आपकु कोईने हेला पाड़्यो तो जग कौन रह्यो हे? चेतना सबसु पहले अहंकु जगायगी. सबसु पहलो बोध आपकु होवे के "मोकु कोई हेला पाड़ रह्यो हे". याको अर्थ हे के चेतना तो जग रही हे. यासु ही एक बात समझो के जो आदमी डीप् कॉमामें जावे वाकु हेला पाड़वेपे वो जगे नहीं हे. वाको मतलब हे के वाकी चेतना अहंकारकु जगा नहीं पा रही हे. जब अहंकार नहीं जगेगो तो वो जवाब भी नहीं देयगो. वैसे सोते भये अपनकु कोई भान नहीं होवे पर कोई बुलावे तो भान होवे हे. बहोत सारे बहरे लोगनमें ये माहात्म्य होवे हे के कोई बोले तो उनकु सुनाई नहीं दे हे पर उनकी निंदा करो तो उनकु फटसु सुनाई दे जाय हे. मैं नहीं मानूं के बहरे सब ढोंग करे हें. उनकु सचमुचमें सुनाई नहीं दे हे. पर उनकी बात उनकु सुनाई देवे हे क्योंकि उनको अहं जाग्यो भयो हे के कोई मेरे बारेमें तो बात नहीं कर रह्यो हे! जैसे मेलामें अपन् बच्चाकु लेके जावें और वहां हो-हल्ला हो रह्यो हे पर अपने बच्चाकी रोवेकी आवाज माँकु सुनाई दे जाय. क्योंकि माँकु माँ होवेको अहं हे और वाकी ममता जागती रहे हे. ऐसे सोवे और जागवे की प्रक्रिया हरेकमें हे.

(मन-बुद्धि-अहंमें सोवे-जागवेकी प्रक्रिया)

मन बुद्धि और अहंकार में ये दोनों प्रक्रिया हें. वे सोवें भी हें और जागे भी हें. बहोतसे वृक्ष भी रातकु सो जावे हें. उनकी पंखुडी बंद हो जाये हें. छुइमुई तो छूवेपे ही सो जावे हे. सोवे-जागवेकी प्रक्रिया तो हर चेतनामें हर लेवलपे हे. प्राणीसु लेके प्रभु तक. क्योंके अपने शास्त्रमें ऐसे कह्यो गयो हे के प्रलय होवे वा बखत भगवान् सोवे और जब जागे तो फिर सृष्टि होवे. अपन् देव-उठनी देव-शयनी एकादशी मनावे ही हें. देव भी जाग और सो रहे हें. प्रत्येक चीजमें जागवे और सोवे की प्रक्रिया तो चल ही रही हे. जैसे कोई भी बच्चा अपनी माँको भी बच्चा हे और अपने बापको भी बच्चा हे. माँके होवेके कारण वामें नाना-नानी परनाना-परनानी के गुण आ सके हे और बापको होवेके कारण वामें दादा-दादी परदादा-परदादी के कुछ गुण आ सके. जो गुण जाग रहे हें वे प्रकट हो जायें और जो गुण सो जायें वे नहीं प्रकट होय. ये हो सके के बच्चामें अचानक गुण पाछो जग गयो. अपने गुणनूमें भी सोवे और जागवे की प्रक्रिया चल रही हे. कब अपनी कोई चीज सो जाय, कब जग जाय वाको भी एक साइकल् हे. वाके कारण अपनूकु पता नहीं चले के अपनो व्यवहार कौनसे ढंगसु चल रह्यो हे. कौनसो व्यवहार अपनी जाग्रतावस्थाको चल रह्यो हे, कौनसो व्यवहार अपनी सुषुप्तावस्थाको चल रह्यो हे. सपनामें अपन् जग रहे हें के नहीं? अपनो अहंकार सपनामें जग रह्यो हे पर तन अपनो सोयो भयो हे. मन भी जग्यो भयो हे. सुबह जब नींद उड़वेवाली होय तो तन जगवेके पहले मन जगे हे. चिड़िया बोलें, नमाज पढ़ी जाय वो सब अपनूकु सुनाई दे रह्यो हे, जगवेके पहले. पर तन वा बखत तुरंत नहीं जग सके. तन सोतो रहे, मन जगके सब सुन रह्यो हे. वाकु अपने शास्त्रमें 'तन्द्रा' केहवे हे. और स्वप्नमें मन जग जावे हे और निद्रामें खाली चेतना जगे हे, बाकी सब चीज सोई भयी रहे. जब जग रहे हें तो अपनो अहंकार मन

इन्द्रियें जग जायें पर अपनो चित्त सो जाय. क्योंके चित्तकु टाईम् ही नहीं हे. आप मन बुद्धि अहंकार कु इतनो वापर रहे हो के चित्तमें क्या हे, वो अपनूकु पता नहीं चले.

मैं अक्सर एक प्रयोग याको बताऊँ के यदि आपकु खोजनो हे के चित्तमें आपके क्या हे? अभी मैं आपसु पूछूँ के आपकु मारवाड़ी भाषाके कितने शब्द आवे हैं? क्या आपकु पता हे, नहीं पता हे. आप बोल रहे हो तो भी आपकु नहीं पता हे. पर मैं कहूँ के चलो लिखवे बैठो तो वाको अन्त ही नहीं आयगो. तब चित्त जग जाय के इनकी क्या आवश्यकता हे जो ये बोल रहे हैं. वासु अधिक ये जाननो चाह रहे हैं. बुद्धिमें तो हे नहीं क्योंके होतो तो आपकु पता होतो. मनमें भी नहीं हे. अहंकारकु तो इतनी पता हे के मोकु पता नहीं हे, ये चित्तकु पता हे. जैसे ऑफीसर् डिक्टेशन् दे ऐसे वो चित्त आपकु डिक्टेशन् देवे लगे के ये लिखो, ये लिखो. एक-एक शब्द वो डिक्टेशन् देके बतावे हे. ये सब चीज चित्तमें स्टोर्ड हे. क्या स्टोर्ड हे, वो अपनूकु पता नहीं हे. अपन् नहीं जान रहे हैं के अपनेकु कितने शब्द आ रहे हे पर अपने चित्तकु पता हे. हे न ये चमत्कारकी बात! दो बात एक साथ तो नहीं हो सके. लॉजिकूली अपन् सोचें तो अपनूकु लगे के अपन् जान रहे हैं. नहीं जान रहे हैं तो आ कहांसु रहे हैं शब्द? कोर्टमें केस चले तो अपनी अविश्वसनीयता प्रकट हो जायगी के एक बाजु तो केह रहे हे के नहीं पता और दूसरी बाजु पूछवेपे सब बताते जा रहे हे. जज् कहेगो के ये व्यक्ति अविश्वसनीय हे. जब कोर्टमें साक्षीपनमें अविश्वसनीयता प्रकट हो जाय तो फिर दुनियामें अपनो साक्षीपनो कितनो विश्वसनीय होयगो! वा स्थितिमें अपनी बुद्धिमत्ता कितनी विश्वसनीय हे, अपनी मनस्विता कितनी विश्वसनीय हे और अपनो अहंकार कितनो विश्वसनीय हे? जा बुद्धि मन और अहंकार के बल-बूतेपे अपन् दुनियाको

सारो काम कर रहे हैं, जगवेके बाद वे कितने विश्वसनीय हैं, ये अपन् समझ सकें.

ये सब घाल-मेल होवेके कारण हो रह्यो हे. दो चीजें घुल-मिल गयी हैं. चेतना और जीवन आपसमें घुल-मिल गये हें और याके कारण न जीवनकु पता चले हें के चेतना क्या हे. न चेतनाकु पता चले हे के जीवन क्या हे. दोनों एक-दूसरेके अर्थमें समझ रहे हैं. जीवन समझ रह्यो हे के मैं चेतना हूँ और चेतना समझ रही हे के मैं जीवन हूँ. वा अर्थमें वा भ्रमकु मिटावेके लिए भगवान् जीवकु अहंसु अलग बता रहे हैं.

ये आपकु अब समझ आ गयी होयगी के आत्मा चेतना प्राण जीव और अहं में तफावत क्या हे? 'चेतना'को अर्थ हे अपने होवेको भास होनो. जैसे सी.सी.टी.वी. कॅमरामें भी चेतना हे. चेतना तो बहोत जगह हे पर हर चेतना आत्मा नहीं हो सके. क्योंके 'आत्मा'को मतलब ध्यानसु समझो के जब कहीं चेतना कोई चीजको ऐसेन्स् बन जाय जाकु अंग्रेजीमें core of reality कहे हे, वा बखत वाकु 'आत्मा' कह्यो जाय. यदि चेतना रीयालिटीको कोर् नहीं बन रही हे, ऐसेन्स् नहीं बन रही हे तो वो आत्मा नहीं 'चेतना' कही जायगी. कोर् बनवेको अर्थ जैसे पुरानी घड़ी आती हती और वामें चाबीसु कमान भरी जाती हती. वा कमानको छटकवेको स्वभाव हे. वो खुलनो चाहे हे और यासु वा घड़ीको कांटा चलवे लग जाय हे. घड़ीके चलवेमें वाकी आत्मा कमान हे. गाड़ी यदि चल रही हे तो वाके पिस्टन् भी चल रहे हैं, वाके टायर् भी चल रहे हें. पर कोर्में डायनेमो चल रह्यो हे, जो वाकी आत्मा हे. डायनेमो चल रह्यो हे तो गाड़ी चल रही हे. वो बंद हो जाय तो फिर गाड़ी चल नहीं सके हे. वामें यदि अपनकु हकीकत नहीं पता होय तो भ्रमणा हो जाय. पुरानी

एलार्म-क्लॉक् आती हती, वामें एक बटन् फास्ट् और एक स्लो करवेको रहतो हतो. वामें एक मक्खी घुस गयी और वो घड़ी कोई कारणसु बंद हो गयी. कैसे बंद भई कोईकु पता नहीं चल्यो. अन्तमें कोईने वाकु खोलके देख्यो तो अंदरसु मरी भई मक्खी निकली तो बोल्यो के "अब समझमें आ रह्यो हे के या घड़ीकु मक्खी चला रही हती और वो मर गयी तो घड़ी कहांसु चलेगी!"अब बात समझो के वामें मरी भई मक्खी बैठी हे. असल आत्मा वाकी मक्खी नहीं हे पर कमान हे. वो कमान यदि खुलनी बंद हो जाय तो घड़ी चलनी बंद हो जाय.

(जीवकी क्षरता, चेतनाकी अक्षरता)

जैसे मैंने आपकु बतायो के ये जो घाल-मेल भयो हे, वो दोषरूप हो सके, अपनो क्रियारूप हो सके, अपनो कोई फंक्शन् हो सके हे, अपनो कोई गुणधर्म भी हो सके हे. पर मूलमें ये उपादान हे, रॉ-मटीरियल् हे और उपादान होवेके कारण जब वो अपनेमें आ रह्यो हे, जैसे बाहरकी हवा रॉ-मटीरियल् हे पर जैसे ही वाकु खींचके अपन्ने अपने फेफड़ामें डाली, वा बखत वो बाहरकी हवा नहीं रेहके वो अपने शरीरको अंग बन जाय हे. वाके बाद वो अपने जीवनको गुणधर्म बन जाय के सांस आ रही हे. हवामें रह्यो भयो ऑक्सीजन् अपने ब्लडमें परिवर्तित हो रह्यो हे. ऑक्सीजन् परिवर्तित होवेके बाद हर अंगमें पहोंचे हे. या कारणसु ही अपन् जीवनको व्यवहार कर पा रहे हें. अपन्कु पता नहीं चल रह्यो हे के बाहर और भीतर गयी हवाको फंक्शन् क्या हे? जैसे मानो के फेफड़ा काम करनो बंद कर दें तो हवा अंदर जानी बंद हो जाय और सफोकेशन् होवे लग जाय. उन फेफड़ान्सु जो हवा मिलती बंद भयी तो आदमी मर जाय. वामें एक और बात कही जाय हे के सारे शरीरमें घूमवेके बाद ऑक्सीजन् कार्बन्-डाई-ऑक्साइड्में परिवर्तित हो जाय हे. जो ऑक्सीजन् ले रहे हे वो कार्बन्-डाई-ऑक्साइड्में

परिवर्तित हो जाय हे, वाकु अपन् नाकसु छोड़े हें, पेड़ वो ही काम उल्टो करे हें. वो कार्बन् लेवे हे और ऑक्सीजन् छोड़े हे. यदि अपन् कार्बन्-डाई-ऑक्साइड् बाहर नहीं निकाल पावें तो भी मर जायें. साइक्ल् चलतो रहे तो आदमी मरे नहीं हे. यदि ये चलती गाड़ी रुक जाय तो जीव भी खतम हो जाय.

पर क्या चेतना खतम हो जाय हे? चेतना खतम नहीं होय. चेतना कायम रहे हे. वाको एक उदाहरण बताऊँ तो आपकु समझमें आयगो. अपन् अनाज खेतमेंसु काटके लावें. अनाजको बीज चाहे गेहूँको चनाको या चोखाको होय, बीज तो मर गयो क्योंके प्राण तो वामें काम नहीं कर रहे हे. पर जैसे ही वाकु मिट्टीमें बोओ तो फिर वामें प्राण आ जाये. प्राण आवेके बाद वामें ये चेतना जगे हे के "मैं मकईको बीज हूँ तो मकई ही उगाऊँगो. गेहूँको बीज हूँ तो गेहूँ ही उगाऊँगा, मकई नहीं उगाऊँगो." वा बीजकु पता हे. प्राण नहीं होवेके बाद भी मुर्दावस्थामें याकु ये पता रहे हें के "मैं क्या हूँ." यदि चेतना वाकी खो जाय तो उपद्रव शुरु हो जायगो क्योंके अपन् चना बोएं और जौ उगके आवे, जौ बोओ और मकई निकल आवे. लोग तो परेशान हो जायेंगे. ऐसो क्यों नहीं होवे? क्योंके बीजकु पता हे. आपके शरीरके हर सॅलकु पता हे के मैं कहां हूँ और क्या काम कर रह्यो हूँ. जैसे घाव हो जाय तो तुरंत सारो ब्लड् वहां जमा हो जाय, घावकु रुझा दे और पाछी नई चमड़ी आ जावे. एक अद्भुत बात हे के चमड़ी जा नेचर्की हे, वाही नेचर्की चमड़ी आवे. जैसे गालपे घाव होय तो गालके जैसी चमड़ी आयगी, हाथ कट्यो तो हाथके जैसी चमड़ी आयगी. ये सब सॅलकु पता हे के मैं कहां हूँ और मोकु क्या काम करनो हे. कभी भी कोईकी चमड़ीमेंसु सींग उगते मिले? सींग कट जाय तो पाछो उग जाय पर कोई और जगहकी चमड़ीमेंसु सींग नहीं उगे. नखकु भी पता हे के मोकु नख तरीके ही उगनो

हे, आंखके तरह नहीं उगनो हे. अपने शरीरके हर सॅल्कु पता हे के वो कहां हे. वामें भी चेतना तो हे. क्या अपन् केह सकें के वामें चेतना नहीं हे. यदि चेतना नहीं होय तो मुश्किल हो जायगी. अचानक कुछ घाव हुओ और हाथमेंसु सींग अथवा पूंछ उग जाय. बालकु भी जितनी बार काटो तो बाल ही उगे. बालकु सब पता हे के मैं सफेद हूँ के कालो हूँ. सफेद्कु काटोगे तो सफेद ही उगेगो. ऐसो नहीं हे के काटो तो नयो कालो आवे. क्या आपकु पता हे? जा बखत आपने शेव कर दी तो आपकु पता नहीं हे के बाल सफेद उगेगो के कालो? वो तो आपने दो-चार बखत देख्यो हे के सफेदके बाद सफेद ही उगे हें, यासु अपन् केह सकें के हर सॅल्में भी अहंता तो हे ही. मैं सफेद बाल हूँ. मोकु काट दियो हे और अब मोकु उगनो हे. तो जो मैं हूँ, वो ही तो उगूंगो. बालकी जड़कु ये बात पता हे. जैसे आलूकु ये बात पता हे के मैं कौनसे जातको आलू हूँ. छोटो आलू हूँ के बड़ो आलू हूँ. वाकु पता हे. वामें इतनी चेतना हे पर आलूमें जौके गेहूँके बीजमें अपन्कु प्राण तो नहीं मिलें. वो न सांस ले रह्यो हे और न सांस छोड़ रह्यो हे.

(क्षर-अक्षर-पुरुषोत्तम)

इन दो बातन्कु जा बखत अपन् पृथक् करके देखें, वा बखत बहोत सारे कन्फ्यूजन् होवें. क्योंके अपन् इनकु पृथक् करके नहीं देख पावें हें, वाके कारण होवें हें. ये सब कन्फ्यूजन् खराब हे, ऐसो अपनो गीताशास्त्र भागवतशास्त्र उपनिषद् नहीं माने हें. उपनिषद् केह रह्यो हे के ये याके लिए कन्फ्यूजन् लग रह्यो हे क्योंके तुम अपनी छोटी बुद्धिसु ये समझ नहीं पा रहे हो. यदि बुद्धिकु विशाल करो तो फिर कोई कन्फ्यूजन् नहीं हे. जैसे हर बखत मैं उदाहरण दऊं. मेरे घरमें जो कम्प्यूटर् हे, वामें तीन भाषाके ऑप्शन् हे. इंग्लिश् हिंदी व गुजराती. पर की-बोर्ड इंग्लिशको हे. एक दिन मैं

टाईप् कर रह्यो हतो गुजरातीमें. एक भाईने कही के "आप अंग्रेजी टाईप् कर रहे हो और गुजराती कैसे आ रही हे? आप तो साक्षात् भगवान् हो!" मैंनें कही के "ये माहात्म्य तो कम्प्यूटर्को हे. यामें बटन् ऐसो कर रहे हे." यदि अपन् नहीं जाने तो अपनकु लगे के क्या चमत्कार हे! क्योंकि कोई भी गांवमें जाओ जहां गाड़ी नहीं आयी होय तो वहांके गाय-भैंस पूंछ उठा-उठाके भागें. उनकु लगे के पता नहीं क्या आ गयो! शहरकी गाय भगे कहीं. रोड्के बीचमें बैठ जाय भारी ट्रेफिक्में. तुम हॉर्न बजाओ, हम क्यों उठे? तुमकु जानो हे तो अपनी कार बचाके जाओ. वो ही गांवकी गाय-भैंसकु लगे के क्या बला आ गयी! सब भग जायें. नहीं समझें याके लिए चमत्कार हे. समझ जाओ तो कोई चमत्कार नहीं हे. अपने शास्त्रने ये बतायो हे के भगवान्की जो लीला हे वो अपनकु चमत्कार या माया यालिए लगे हे के अपन् अपनी छोटी बुद्धिसु वाकु समझ नहीं पा रहे हें. भगवान्के लिए केवल एक बटन् हे कम्प्युटर् जैसो. ये दबा दियो तो ये हो जाय, वो दबा दियो तो वो हो जाय. दूसरे जाकु पता नहीं हे वो तो ये ही समझे के पता नहीं कैसे अंग्रेजीमें टाईप् कर रहे हें और गुजराती आ रह्यो हे. आंखे मिच जायें, स्तुति होवे लग जाय के "ओहो हो, आप तो साक्षात् पुरुषोत्तम हो. कैसे-कैसे चमत्कार करो हो!" वो कितनो चमत्कार हे और कितनो अज्ञान हे, वो अपनकु पता नहीं चले. वाकी खूबसूरती ही ये हे. वो नहीं पता चले क्योंके वो लीला हे. वाकी लीला करवेकी सामर्थ्य कितनी हे वो अपनकु पता नहीं चले. यासु वो माया लग रही हे, भ्रांति लग रही हे, अपनो अहंकार लग रह्यो हे. अरे भाई! तुमने कुछ भी नहीं कियो हे. जो कुछ हो रह्यो हे, वो वहांसु हो रह्यो हे. या बातकु आपने जो गीताको प्रश्न उठायो, कैसे भगवद्गीतामें समझ रहे हें, वो आपकु चार्ट ड्रॉ करके बता दऊं. जासु आप लोगनकु सारो खुलासा हो जाय.

पुरुषोत्तम = सत् + चित् + आनन्द = परब्रह्म

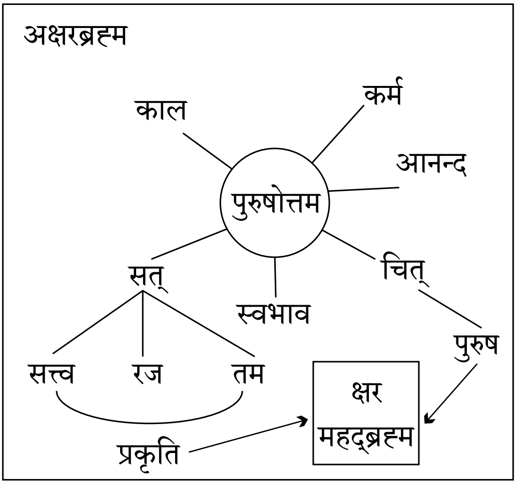

भगवान् गीतामें कहे हें ''**यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम् अक्षरादपि च उत्तमः, अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः.**'' (भग.गीता १५।१८) 'क्षर'को मतलब के जो चीज अपने सामने पैदा हो रही हे, स्थित हो रही हे और खतम हो रही हे, वे सारी चीजें क्षरकी रेंज्में आ रही हे. ये क्षर कहां पैदा हो रह्यो हे याके बारेमें एक बहोत बड़ो लॉजिकल् डायलेमा हे. आप छोटीसी एक्सरसाइज़् करेंगे तो बात समझमें आ जायगी. जितनी क्रिया अपन् करें वाको कोई कर्ता तो हे. जैसे 'जा रहा हे.' तो कौन जा रहा हे? आ रहा हे, खा रहा हे, सो रहा हे. इन सब क्रियान्को कोई न कोई कर्ता तो होयगो ही. अपन् जब भी ये केह रहे हें के ये चीज पैदा हो रही हे तो सवाल उठेगो के पैदा होवेकी क्रियाको कर्ता कौन हे? ये नहीं पूछ रह्यो हूँ के पैदा करवेवालो कौन हे? घड़ा पैदा हो रहा हे? कर्ता कौन हे? घड़ा. पर पैदा हो जायगो तो ही

तो वो घड़ा हे. पैदा होवेसु पहले वो घड़ा कैसे हे? वहां पैदा होवेको कर्ता कौन हे? जब ये समस्या आवे तो ही अपनूकु पता चले के जगत् क्षर हे. थोड़ी तकलीफ तो होयगी समझवेमें पर ध्यानसु समझोगे तो समझमें आ जायगी. समझो के ये जगत् क्षर हे. 'क्षर' होवेको मतलब के पैदा होवे हे वाके बाद बाकी जितनी आयुष्य हे, उतनी आयुष्यमें वो टिके हे. वो एक मिनिटसु लेके एक करोड़ बरस भी हो सके हे. हर वस्तु अथवा व्यक्ति की अपनी-अपनी आयुष्य हे, वा आयुष्यके पूरी होवेके बाद वो कभी न कभी खतम होवे हे. हे वा बखत तो वाको कर्ता पता चले. जब मर रह्यो हे तो भी वाको कर्ता पता चले. पर पैदा होवेके कर्ताके बारेमें बहोत लॉजिकल् डायलेमा हे. ये जब समस्या आयी तो वाकु गीता कैसे सॉल्व् करे हे के जितनो भी क्षर जगत् पैदा हो रह्यो हे, वाको कर्ता अक्षर हे. अक्षर ही क्षरके रूपमें पैदा हो रह्यो हे. जैसे सोना गहना तरीके पैदा होवे हे. रुई सूतके रूपमें पैदा होवे हे. ऐसे ही अक्षर क्षर तरीके पैदा हो रह्यो हे. नहीं तो कोई कर्ता ही नहीं मिलेगो यदि अक्षर नहीं मानो. 'अक्षर' मानें जो क्षर नहीं हो रह्यो हे. याकु एकदम सरल करके समझाऊँ. जैसे घड़ाकी तुलनामें मिट्टी तो क्षर नहीं हे. क्योंके घड़ा नहीं बन्यो होतो तब भी मिट्टी हती. घड़ा बन गयो तो भी वामें मिट्टी तो हे. जा दिन घड़ा टूटके चूरा हो जायगो वा दिन भी मिट्टी बचेगी. तो घड़ा पैदा हो रह्यो हे वामें अक्षर मिट्टी हे जासु घड़ा बन्यो हे. वाके पैदा होवेमें वो पैदा नहीं होय हे, वाके खतम होवेमें वो खतम नहीं हो रह्यो हे तो वो अक्षर हे. घड़ाके पैदा होवेमें घड़ा पैदा हो रह्यो हे, मिट्टी पैदा नहीं हो रही हे. घड़ाके फूट जावेपे घड़ा खतम हो रह्यो हे, मिट्टी खतम नहीं हो रही हे. यासु घड़ा और मिट्टी के रिलेशन्में घड़ा क्षर हे और मिट्टी अक्षर.

भगवान् क्या केह रहे हें के "यस्मात् क्षरम् अतीतो अहम्

अक्षरादपि च उत्तमः, अतो अस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः." (भग.गीता १५।१८) याके लिए मैं पुरुषोत्तम हूँ. अब अपन् देख लें के तीन लेवल् आ गये के नहीं! एक क्षर लेवल् आयो, एक अक्षर आयो और एक पुरुषोत्तम लेवल् आयो. याकु अपन् ग्राफिकली समझें.

चार्टकु देखो. पुरुषोत्तमकु बीचमें यालिए रख्यो हे क्योंके वो कोर् हे. या क्षरके आश्रय होनेके रूपेमें अक्षर यालिए रख्यो क्योंके क्षरके रूपसु अक्षर पैदा हो रह्यो हे. बिल्कुल वा ही तरह के जा तरह तालाबमें लहर पैदा होवे. लहरके पैदा होवेको कर्ता तालाबको पानी हे. लहर कर्ता नहीं हो सके क्योंकि वो तो स्वयं पैदा हो रही हे. वामें लहर तरीके पैदा कौन हो रह्यो हे? तालाबमें भर्यो भयो पानी. वो लहर बन रह्यो हे. लहर क्षर हे और वाकी तुलनामें तालाबको पानी अक्षर हे. वो पानी जा तत्त्वसु बन्यो हे, आजकी साइंस्की भाषामें अपन् H_2O केह दें, वो पानीको पुरुषोत्तम हे. पानी जा तत्त्वसु बन्यो हे, जो पानीपनेकु कंट्रोल् कर रह्यो हे.

(पुरुषोत्तमकी परिभाषा)

या सिचुएशन्में पुरुषोत्तमकी परिभाषा ऐसी हे के ब्रह्म सच्चिदानन्द हे. सच्चिदानन्दको अर्थ हे, वाकु अपने होवेकी अवेअरनेस् हे और वा अवेअरनेस्में कोई सीमा नहीं हे. असीम होवेको नाम 'आनंद' हे तो सबसु पहले वा सच्चिदानंद पुरुषोत्तममें सत्, जैसे अपन्ने दूधमें जामन मिलायो और दूधमेंसु एक भाग गाढ़ो होके छुट्टो पड़ जाय और दूसरो भाग पानी बनके छुट्टो पड़ जाय. ऐसे वो जब लीलाको संकल्प करे या जब वो लीला करनो चाह रह्यो हे, वा बखत वामें सत् चित्त और आनंद अलग-अलग हो जायें.

(अक्षरब्रह्म : प्रकृति-पुरुष-काल-कर्म-स्वभाव)

वा सत्-चित्-आनंदमेंसु सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण प्रकट हो

जायें. अब सत् क्योंके चित्सु अलग हो गयो है, यासु याकु खबर नहीं पड़े के मैं सत् हूँ. चित्कु पता नहीं हे के मैं रज हूँ और आनंदकु पता नहीं हे के मैं तम हूँ. वाके बाद सत् तीन तरहसु आगे विभक्त होवे हे. सत् रज तम विभक्त भये हें, वाकु गीता 'प्रकृति' कहे हे. चित् पुरुष भी बने हे. अब ये सब अक्षरमें बन रह्यो हे. बनवेवालो अक्षर हे. ये घड़ा अक्षरके मैदानमें गढ़यो जा रह्यो हे. अब वो जा बखत पुरुष बन गयो, वा बखत ब्रह्मकी एक शक्ति काल हे. एक शक्ति कर्म हे, एक शक्ति स्वभाव हे. 'कर्म' माने कोई फन्क्शन्. कोई भी चीज पैदा करनी होय तो बिना कर्मके तो पैदा हो नहीं सके. कुम्हार भी जब घड़ा बनावे हे तो कुछ हाथ-पैर हिलावे ही हे. कर्मसु ही तो पैदा होयगो. जो भी कर्म हे वो पैदा करवेकी क्रियामें प्रकट होवे. 'कर्म' मानें मोशन्. जो मोशन् प्रकट हो रह्यो हे, वा मोशन्की कोई एक लिमिट् हे. जैसे अपन् कोई बॉल् फेंके तो पहलो मोशन् हाथमें आवे. हाथको मोशन् बॉल्में गयो. जितनो जोर हाथने बॉल्कु दियो उतनी देर बॉल् चलेगो. वाके बाद काल वाकु रोक देगो. जितनो बॉल्में मोशन् होयगो उतनो ही तो बॉल् चलेगो. यदि तुम्हारे कर्ममें ताकत नहीं हे तो काल वाकु व्यर्थमें चलानो नहीं चाहे. जैसे फास्ट् बॉलर् होय वाकी बॉल् बहोत दूर तक जावे. बॉलर्में कितनी ताकत हे वा कर्मकु अथवा मोशन्कु बॉल्में डालवेकी वा हिसाबसु बॉल्में ॲक्शन् आवे. कर्म-कालकु स्वभाव बॅलेंस् करतो रहे. जैसे दूधसु दही बन गयो तो दही भी थोड़ी देर तो स्थित रहेगो. कुछ दिन बाद वो कुछ और हो जायगो. वो स्थिति अलग हे. पर कुछ दिन तो दही भी अपनो स्वभाव मेन्टेन् रखे हे.

यदि कोई फूल भी पैदा भयो हे तो वा फूलको एक काल हे, उतनी देर तो वो ताजो रहेगो. 'स्वभाव' मानें अपने स्वरूपकु मेन्टेन् करनो. वो कालको फॅक्टर् नहीं हे. जैसे समझो के मेरो

स्वभाव गुस्साको हे. तो वो स्वभाव कैसे प्रकट होयगो. जरासी मोकु दियासलाई दिखाओ, भड़कवेके लिए मैं तैयार हूँ. सब कहेंगे के मेरो स्वभाव गुस्साको हे. पर यदि आप कुछ भी करो और मैं भडकूं ही नहीं तो क्या आप वा स्वभावकु गुस्साको कहोगे? समझो के मेरे हसवेको स्वभाव हे. कोई बातपे मोकु हसी नहीं आ रही हे पर जब अपन् मिलें तो बस हस ही रह्यो हूँ. हमारे बम्बईमें एक कवि हते, मनहर. उनको हसवेको स्वभाव हतो. दूरसु भी देख लेते तो जोर-जोरसु हसनो शुरु कर देते. सब लोग उनकु देखते और सोचते के क्या हो गयो. मैं नर्वस हो जातो. जब भी दिखते तो इधर-उधर चल्यो जातो क्योंके सब लोग मोकु देखनो शुरु कर देते. वो कोईकु भी देखे तो इतनी जोरसु हसतो के वहां एक सीन् खड़ो हो जातो. जाको क्रोधको स्वभाव हे वो भी याही तरह प्रकट हो जाय. कोई न कोई निमित्तकी बाट देखतो रहे के कैसे प्रकट होऊँ. ऐसे अपनो एक स्वभाव हे, वो स्वभाव अपनो कायम रहे हे.

(महद् ब्रह्म)

यामें प्रकृति पुरुषको घाल-मेल हो गयो हे, यहां (चार्टमें दिखाये गये) क्षरमें. अक्षरके पार्टमें ये सब नित्य हे पर छोटेसे फ्रेम्में प्रकृति भयो हे यासु वो क्षर बन जाय हे. 'क्षर' मानें वो पैदा भयो हे पर कुछ काल बाद छुट्टी पड़ जा रही हे. छुट्टी कौनसी चीज होय जो पहले जुड़ी होय. जो जुड़ी नहीं हे वो छुट्टी भी नहीं पड़ सके. कैसो भी जोड़ होय, वो कभी न कभी तो छुट्टो पड़े ही हे. पर जो चीज जुड़ी ही नहीं हे वो छुट्टी भी नहीं पड़ सके. ये प्रकृति और पुरुष जुड़े हें यासु छुट्टे भी पड़े हें. वो मैंनें आपकु बता दियो के चेतना छुट्टी अपनकु बीजमें दीख रही हे. जीवन छुट्टो अपनकु जो व्यक्ति डीप् कॉमामें चल्यो जाय, वहां दीख रह्यो हे. वहां चेतना नहीं दीख रही हे. कई प्रसंगनमें छुट्टी

दीखे और बहोत सारे प्रसंगन्में जुड़ जाय. रेल्की पटरीकी तरह हे, जुड़ती रहे, छुट्टी पड़ती रहे. ये वाको स्ट्रक्चर् हे.

या स्ट्रक्चरमें ध्यानसु समझो के प्रकृति-पुरुषके जुड़वेके कारण जो पहली आईटम् बन रही हे, वाकु गीताने महत् कह्यो हे. **"मम योनिः महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधामि अहं सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत!"** (भग.गीता१४।३). ये महद् जगत्को एक प्रकारको रॉ-मटीरियल् हे. जैसे कोई भी चीज अपनकु बनानी हे तो वाको रॉ-मटीरियल् इकट्ठो करनो पड़े. कोई कपड़ा बनानो हे तो सूत लानो पड़ेगो, धागा लानो पड़ेगो, सुई लानी पड़ेगी. ऐसे ही महत् जगत्को पहलो रॉ-मटीरियल् हे. वा रॉ-मटीरियल्की भगवान् ऐसी परिभाषा कर रहे हें के वो महत् एक ऐसी योनि बनके प्रकटे हे, 'योनि' मतलब माँको गर्भ. वो महत् एक गर्भके रूपमें प्रकटे हे के जो या पुरुषकी चेतनाकु अपने भीतर धारण करे हे. "वा महद् रूपी योनिमें मैं पुरुष रूपी गर्भको आधान करूँ हूँ, वाके कारण सारे प्राणी, सारी चीजें पैदा हो रही हें." बात ध्यानसु समझो के यहां भगवान् स्पष्ट एक आज्ञा कर रहे हें के जड़ भी जो पैदा हो रह्यो हे वो या महत्के कारण. जीव भी जो पैदा हो रह्यो हे वो या महत्के कारण. जो कुछ पैदा हो रह्यो हे वो या महत्के कारण क्योंके महत् वो ब्लू-प्रिन्ट् हे जो मकान बनावेके पहले इंजीनियर् अपनकु बनाके देवे. जामें सारो डिझाइन् मौजूद हे के कहां बाथरूम् बनेगो, कहां रसोई बनेगी, कहां दरवाजा होयगो. महत् एक वा तरहकी योनि हे के जामें सारे जगत्को ब्लू-प्रिन्ट् हे. वा ब्लू-प्रिन्ट्में चेतनाको आधान कियो जाय. जैसे एक परब्रह्म हे, एक अक्षरब्रह्म हे ऐसे ही एक महत् ब्रह्म हे. गीता तीन तरहके ब्रह्म दिखावे. गीता पुरुषोत्तमकु परब्रह्म केहवे हे. अथवा सारे क्षर जगत्के रूपमें जो पैदा हो रह्यो हे, वाको जो पहलो ब्लू-प्रिन्ट् हे वाकु गीतामें भगवान् कहे हें, महद् ब्रह्म.

(प्रकृति-पुरुष / चेतनाको स्वरूप)

अब देखो के चित्के लेवल्पे ही घाल-मेल हो गयो हे. क्योंके प्रकृतिके जो सत्रजतमो गुण हतें, वाकु योनि बनाके वामें पुरुष रूपी चेतना डाल दी गयी. जैसे अपन्ने पंखाकी मशीन् बनाई और वाकु इलेक्ट्रीक् कॅरेंट्सु जोड़ दियो. वा कारण वा पंखाने इलेक्ट्रीसिटीको गर्भ धारण कियो. जो भी इलेक्ट्रोनिक् गॅज़ेट् होवे हें इनमें एक पार्ट ऐसो होवे हे के जामें तार जोड़े जाये और वो वा गॅजेट्कु इलेक्ट्रीफाई करे हे. वो ही सारी मशीन्कु फन्क्शनेट् करे हे. याही तरह या महत्में चेतन और अचेतन पहलेसु ही घुले-मिले भये हे. वो क्योंके सत्रजतमो गुणकी प्रकृतिसु बन्यो हे. अब वामें जब चेतना प्रविष्ट भयी, तो वो भी सत्त्व रज तमो गुण प्रकट करेगी. और वो चेतनाके गुण प्रकट करेगो के जासु पता चले के वो हे. पहले पता नहीं चलतो हतो.

पंखाकु बिजलीके तारसु कनेक्ट् कियो, तब पंखाकु पता चले हे के आप कब स्विच् ऑन्-ऑफ् कर रहे हो. तारसु कनेक्ट् मत करो और स्विच् ऑन्-ऑफ् करते रहो तो क्या पंखाकु पता चलेगो? पंखाकु पता कैसे चले? जो कनेक्शन् जा रह्यो हे पंखामें इलेक्ट्रीसिटीको, वा कॅरेंट्कु पहले स्विच् रोके. जब स्विच् छूट दे जावेकी तो वाकु पता चले के अब छूट मिली. जैसे दरवाजा खोलते ही बछड़ा कैसे गायके पास भागे हे! ऐसे ही स्विच् ऑन् करते ही तुरंत इलेक्ट्रीसिटी वा गॅज़ेट्की तरफ दौड़े हे. जैसे ही वा गॅज़ेट्में पहुंचे हे तो वा कनेक्टेड् पार्ट्कु पता चले के अब कॅरेंट् आयो, अब अपनो काम शुरु करो. पर यदि इलेक्ट्रीसिटी ही नहीं हे तो स्विच् भी क्या कर सके हे? स्विच् इलेक्ट्रीसिटी पैदा नहीं करे हे. पर वाको गॅज़ेट् तक पहोंचावेको दरवाजा खोले हे, बंद करे हे. प्रवाहकु रोके हे या प्रवाहकु चालू करे हे. ऐसे ही महदब्रह्ममें जब चेतनाको कॅरेंट् आयो, अब वा चेतनाने जीवको रूप ले लियो. सचमें चेतनाकु

न तो सुख हे और न दुःख हे पर जीवकु सुख-दुःख होवे हे.

प्रश्न : सत्त्व रज तम अपनेमें कैसे काम करे हें ?

उत्तर : आप सत्त्वको मतलब समझो यासु पहले तमको मतलब आपकु बताऊँ. 'तम'को मतलब इनर्शिया. 'इनर्शिया' मतलब अपनी स्थितिमें रेहनो. जैसे बॉल् आपने फेंकी तो जब-तक वामें फोर्स् काम कर रह्यो हे तब-तक वो चलेगी. वाके बाद इनर्शियामें जायगी. जैसे अपनी नींद अपनो इनर्शिया हे. जब-तक कार्बन्‌को कंटेंट् अपनी बॉडीमें कम हे तब-तक अपन् काम करें और जैसे ही कार्बन् कंटेंट् बढ़े, अपन् इनर्शियामें आ जायें. तब अपनकु नींद आ जाय. अपन् सब चलनो फिरनो बंद कर दें. जैसे बॉलमें जब-तक मोशन् हे, वो चलती रहे हे. वाके बाद वो इनर्शियामें आ जाय. अपने आप वो चल नहीं सके हे. याको नाम 'तम'. ऐसे ही 'सत्त्व'को मतलब हे ॲक्टिव् होनो. पर ओवर्-ॲक्टिव् नहीं. जैसे वोल्टेज् रॅग्युलेटर् लगे होय के ज्यादा करेंट् न आ जाय, नहीं तो फुक जायें. जहां ओवर्-ॲक्टिव् हो रह्यो हे, वाको नाम 'रज' हे. जो कंट्रोल्ड् ॲक्शन् हे, वाको नाम 'सत्त्व'. जो इनर्शिया हे, वाको नाम 'तम' हे. हर मॅटर्में ये तीनों गुण अपने आप होवे हें. या तो वो ओवर्-ॲक्टिव् रहे हे या कंट्रोल्ड् रूपमें ॲक्टिव् होवे हे या इनर्शियामें रहवे हे. ये तीनों गुण चेतना (पुरुष) और प्रकृति के कॉम्बीनेशनसु पैदा भये फॅक्टर् हे. मल्टीप्लीसिटी प्रकृतिके कारण हे और अवेअरनेस् पुरुषके कारण हे. चेतनाकु न सुख हे और न दुःख हे. जैसे सी.सी.टी.वी. कॅमराकु भैंसके सामने आवेपे कोई आपत्ति नहीं होवे. समझ जरूर जावे के ये भैंसे हे. हिरण आ गयो तो वाकु भी समझ जायगो. वाके लिए खूबसूरत और बदसूरत को कोई भेद नहीं हे. कोई अच्छो काम, बुरो काम वाके सामने होवे तो वाकु समझ ले, जान ले और अपने भीतर स्टोर् कर ले.

(महदात्मक अहंकार : चेतनाकी स्विच्)

अपने जीवनमें ये समस्या हे के सबकु समझवेसु अपनो काम नहीं चले हे. क्योंके सबकु समझते ही रहें और जो आ रह्यो हे वाके साथ कोई व्यवहार नहीं करें तो अपन् खतरामें पड़ जायें. यासु जीवनकी ये आवश्यकता हे के जो आ रह्यो हे वाको केवल अनुभव ही नहीं करनो हे अपितु वा अनुभवके अनुरूप वाको प्रतिकार भी करनो हे. चोर आ रह्यो हे तो हल्ला मचानो हे और अच्छो आदमी आयो तो वाको सत्कार करनो हे. अपनो आयो तो प्यार जतानो हे और दुश्मन आयो तो वाकु मारनो हे. ये सब आवश्यकता चेतनाकी नहीं हे, जीवनकी हे. क्योंके जीवन रिस्क् हे. चेतनाकु कोई रिस्क् नहीं हे. जहां रिस्क् हे वहां इन सब व्यवहारन्की जरूरत हे.

हम हरिद्वार ऋषिकेश गये. वहां हर मठके दरवाजापे लिख्यो भयो हतो के "बिवेअर् ऑफ् डॉग्." मोकु लग्यो के इन स्वामीन्कु क्या रिस्क् हे! घर छोड़के यहां एकांतमें आश्रम बनाके रेह रहे हें. मैनें एक मठके दरवाजापे खड़े होके पूछी के "स्वामीजी हे? "वा चौकीदारने कही "वो बैठे तो भये हे." मैनें पूछी के "स्वामीजीसु डरनो के कुत्तासु डरनो?" स्वामीजी आश्रमके स्वामी हे. डरनो तो उनसु चहिये. कुत्तासु काहेकु डरें. पर हे रिस्क आश्रम बनाके रहवेमें भी. ये जो सारे अपने प्रतिकारके कुत्ता हे के दोस्त आयो तो स्वागत करो, दुश्मन आयो तो दरवाजा बन्द करो, ये सारे लफड़ा अपन्कु करने पड़े क्योंके अपने जीवनकु अपन् जीनो चाह रहे हें. अपनो जीवन संकटमें हे. चेतनाकु संकट नहीं हे. जब संकट नहीं हे तो डर काहेको? संकट नहीं हे तो सुख-दुःख काहेको. अब यहां या तरहको संशय हे के एक निडर हे और एक डरपोक हे.

एक मजेदार बात आपकु बताऊँ. सरवाड़में हमारे मंदिरकी आठ दुकानें हतीं. कोई व्यक्ति किराया वसूल करवे नहीं जातो हतो. हमने कही के यासु अच्छो हे के आठ दुकानें बेच दो. वा बखत मदनगंजमें एक रेडियाजी हते. कोईने कही के दुकान निकालवेके लिये रेडियाजीको कॉन्टेक्ट् करो. रेडियाजीको काम हतो के दुकान खरीदनी नहीं पर वाके भाव बढ़ाने. हमने उनसु कही के किराया तो पांच रुपया ही हे पर आवे-जावेमें सौ रुपया खर्च हो जायें तो आप उन दुकाननकु निकाल दो. उनने पूछी "कितनेमें निकालनी हे?" मैनें कही "जितनेमें निकले उतनेमें निकाल दो." उनने कही "ऐसे कैसे निकाल दें?" मैनें कही "कुछ आ तो रह्यो नहीं हे, यासु अच्छो हे कुछ भी मिले वामें निकाल दो." उनने कही "दिखाऊँगो मैं आपकु कीमत." वो नोटकी एक थप्पी लेके आ गये और बाजारमें जाके हल्ला मचा दियो. वामें दो-चार आदमी खुदके खड़े कर दिये. एक पांच बोले तो दूसरो सात बोले. तीसरो नौ बोले. मैं साठवें दशककी बात कर रह्यो हूं. ऐसे कर-करके अड़तीस हजारमें वो दुकानें गई. यदि आठ हजारमें आठ दुकानें निकल जातीं तो हम सन्तुष्ट हो जाते. वे दुकानें अड़तीस हजार के चालीस हजारमें निकलीं. अब सवाल ये आयो के इन चालीस हजारकु कौन रखे. क्योंकि रातकु डेढ बजे सरवाड़सु किशनगढ़ पैसा लेके आनो हतो. मैनें एककु कही के आप रखो. तो बोले के "मोकु क्यों मार रहे हो? रस्तामें कोई मोकु लूटे तो मैं कहां जाऊँ." मैने कही के पैसाको हिसाब तो हमारो आप ही रखो हो. यासु लेके चलो. हुओ क्या के जब वो लेके आ रहे हतें तो बीचमें एक रेगिस्तान आयो और गाड़ी वहां बंद हो गयी. अब तो वो जोर-जोरसु "हे राम, हे राम" जपवे लगे. क्यों रामकी आवश्यकता भयी? क्योंके चालीस हजार पासमें हते. चालीस हजार नहीं होते तो फिर रामकी क्या गरज हती! तो समझो के जब अपनकु कुछ संभालनो हे, बचानो हे, मेन्टेन् करनो हे तो ही प्रतिकार करनो पड़े. भय भी

लगेगो, प्यार भी आयगो. सारो काम करनो पड़ेगो. हमारी जीप जो बंद हो गयी हती वाके पीछे एक ट्रक् आयी. ट्रक्में दोकी जगह थी. सबने मोसु कही के पहले आप बैठो. इतनेमें वो बोले के "नहीं-नहीं पहले मोकु तो बैठवे दो." कॉम्प्रोमाइज्‌ करके हम दोनों बैठे. बाकी सब पीछेसु आये. तो समझो के तकलीफ तब होवे जब अपनूकु कुछ सेव् करनो हे तो. चेतनाके लिए ऐसी कोई तकलीफ हे ही नहीं. मैं उनकु चिड़ातो रह्यो के कोई लूटवे आयगो तो मैं तो केह दऊँगो के सारे रुपया इनके पास हें. बोले "अरे आप मोकु ही मारोगे, ऐसो क्यों करो" तो समझो के जाके पास हे वाकु ही तकलीफ हे. जाके पास हे ही नहीं वाकु कैसी तकलीफ! चेतनाकु न कुछ बननो हे न बिगड़नो हे. वो तो जैसी हे, वैसी हे. वाकु इन सब प्रतिकारनूकी आवश्यकता नहीं पड़े. वाकु न तो कोई इनर्शियाको प्रोब्लम् हे, न ओवर्-ॲक्टिव् होवेपे कोई प्रोब्लम् हे और न रेग्युलेटड् ॲक्शनूसु कोई प्रोब्लम् हे. वो तो एक विटनेस् जैसी हे.

खूबसूरती देखो के वा चेतनामें महत् अथवा प्रकृति के कारण एक मॅकेनिज़म् पैदा होवे हे. वा मॅकेनिज़म्‌को नाम हे 'अहंकार'. वो अहंकार भी चेतनाकु अपनो लगे हे. अहंकारकु यों लगे के मैं चेतन हूँ. जैसे रूपकु देखवेके लिए आंखकी जरूरत हे, स्वादकु जानवेके लिए जीभकी जरूरत हे, ध्वनिकु सुनवेके लिए कानकी जरूरत हे, सुंगधके लिए नाककी जरूरत हे ऐसे ही चेतनाकु जानवेके लिए अहंकार एक इन्द्रिय = उपकरण बन जाय. जब आपकु अपनी चेतनाकु समझनो हे; या सारे क्रिया कलापमें, तो आपकु और कोई इन्द्रिय काम नहीं आयगी. अहंकार काम आयगो. यासु जब अपनूकु जगनो होय तो सबसु पहलो अपनो अहंकार जगे. अहंकार जगे तो वो सबकु जगा सके. अहंकार स्विच्‌की तरह हे के जाकेद्वारा पूरो करेंट् पास हो रह्यो हे. वो स्विच्-ऑफ् हो गयो तो पूरी मशीनूमें करेंट्

आनो बंद हो जाय. अहंकारको स्विच् बंद होते ही चेतनाको सारी इन्द्रियनसु कॉन्टेक्ट् खतम हो जाय. चेतनाको कॉन्टेक्ट् यदि आंख नाक कान आदिसु चालु करनो हे तो सबसु पहले अहंकारको स्विच्-ऑन् होनो चहिये. जैसे ही अहंकारको स्विच् चालु हुओ, तुरंत साऊँड् आ जाय, बत्ती जुड़ जाय, हवा आवे लग जाय. जितनी भी इन्द्रियें हें सब अपनो-अपनो काम करवे लग जायें. वा लिए मैनें चेतनाकु अहंकार कह्यो. सचमें तो चेतना अहंकार नहीं हे पर चेतनाको स्विच् अहंकार हे. या बातकी खूबसूरती समझें के चेतनाके स्विच्को ऑन्-ऑफ् अहंकारके स्विच्पे निर्भर हे. "मैं देख रह्यो हूँ." देखो 'मैं' पहले आ रह्यो हे. वो पहले स्विच् ऑन हो रह्यो हे. दूसरे नम्बरपे आंख आ रही हे. "मैं सुन रह्यो हूँ, मैं चल रह्यो हूँ, मैं खा रह्यो हूँ." 'मैं'को स्विच् पहले ऑन् होनो चहिये वाके बाद बाकी इन्द्रियें अपनो काम करनो शुरु करें. इतनी यदि बात आपने ध्यानसु समझी तो आगेकी बातमें कोई तकलीफ नहीं होयगी.

(अहंकारकी त्रिगुणात्मकता और व्यक्तिगत अहंकार)

अहंकार महद् ब्रह्मको बेटा हे. महद् ब्रह्म प्रकृति मानें सत्त्व-रज-तमको बेटा हे. प्रकृतिके जो सत्त्व रज तम गुण हें वो यामें भी आ रहे हें. वो अपने अहंकारमें भी आ रहे हें. यासु अपनो अहंकार राजस हो सके हे, सात्त्विक हो सके हे और तामस भी हो सके हे.

अब राजस अहंकारकु जा तरीकेको सुख-दुःख अनुभव होयगो तो वो प्रकट अलग होयगो. सात्त्विक अहंकारके सुख-दुःखको अनुभव अन्य प्रकारको होयगो और तामस अहंकारके सुख-दुःखको अनुभव अलग प्रकारको होयगो. क्योंकि अहंकार सात्त्विक राजस तामस के कॉन्स्टीट्युशन्सु बन्यो भयो हे और वामें वाकु जब सुख-दुःख हो रह्यो हे तो वाको सात्त्विक राजस तामस गुणरूप होनो जरूरी हे. वा सुख-दुःखकु बुद्धिसु मॅनेज् करनो चाह रहे हें. वा बखत पाछी

एक समस्या आ रही हे के अहंकार वा ही बातकु बुद्धिकु मॅनेज् करवे देगो जो आपके अहंकारकु सन्तुष्ट करती होय. जो मॅनेजमॅन्ट् आपके अहंकारकु सन्तुष्ट नहीं करतो होय, तो आपको अहंकार ही वाकु नकार देगो के ये मॅनेजमॅन्ट् अच्छी नहीं हे. आपकु उदाहरण दऊँ तो समझमें आ जायगी. जितने पार्लामॅन्ट्के मॅम्बर्स हें वे सब हल्ला मचाते रहें के ये खोटो खर्चा हो गयो, वो खोटो खर्च हो गयो. पर उन मॅम्बरनूकी जब खुदकी पगार या भत्ता बढ़े तो कोई हल्ला नहीं मचावे. न कोई विपक्ष, न कोई सत्ता पक्ष. सब एक मतसु वाकु पास कर दें. उनको एक अहंकार हे के सारे खर्चा सच्चे व खोटे हो सके पर हमारेपे खर्चा सच्चे-खोटेसु ऊपर हे. वामें कोई सच्चे-खोटेको विचार नहीं होवे. वो विचार दूसरे सब देश-हितके खातानूमें होवे. दिन-रात झगड़ा करते रहें. देखो अहंकार हे के हम एम.पी. हें. एम.पी. सबकु गाली दे पर एम.पी.कु गाली दो तो संसदको अपमान होवे. देखो कैसे अहंकार बोल रह्यो हे!

[५]

(धार्मिक अहंकार)

अपन् समझें के अपनेमें अहंकार बोल रह्यो हे. अपने समुदायमें भी अहंकार बोलतो होवे. हर धर्मको अपनो एक अहंकार हे. हर धर्मवालो समझे हे के वाको धर्म सच्चो बाकी सब खोटे. ये सब क्या हे? ये धार्मिक अहंकार हे. तुम्हारो धर्म खोटो, मेरो धर्म सच्चो. ये अहंकार हे के नहीं. ये हर धर्ममें हे. ये बात ध्यानसु समझो के ये धर्मकु नहीं हे पर धर्मकु पालवेवाले धार्मिककु ये अहंकार हे. कोई भी धर्मसु पूछोगे तो हर धर्म ये केह रह्यो हे के अहंकार मत करो क्योंकि अहंकार करोगे तो धर्माचरण नहीं, अधर्माचरण होयगो. जितने धार्मिक समुदाय हें सबकु या बातको अहंकार हे के हमारो धर्म सबसु अच्छो, सबसु सच्चो. तुम्हारो धर्म खोटो, तुम्हारो आचरण खोटो, तुम सब नरकमें जाओगे. हम सब स्वर्गमें जायेंगे. ये अहंकार नहीं हे तो और क्या हे! धर्मकु पूछोगे तो धर्म तो ना पाड़ देगो के धर्म और अहंकार की तालमेल तो बैठ ही नहीं सके. यालिए अहंकार मत करो. आदमी क्या सोचे हे के "सच्ची बात हे और अहंकार नहीं करने पर अपने धार्मिक होवेको अहंकार तो करनो ही चहिये." देखो, वो अहंकार वहाँ शिफ्ट हो जाय. जो व्यक्तिको अहंकार हतो वो अपन्ने धार्मिक होवेको अहंकार बना लियो. अब मोकु श्याममनोहर होवेको अहंकार नहीं हे पर वल्लभाचार्यके कुलको होवेको अहंकार हे. फिर बड़ी-बड़ी पूंछ लगा लें के "लष्टक पुष्टक अनुष्टक तुष्टक घटा टोप टंकार कोकिलानंदपुरी महाराज" अरे छोटेसे नाम बोलो, इतने बड़े-बड़े नाम काहेकु बोल रहे हो! पर अहंकार सन्तुष्ट नहीं होवे. "अखिल भूमंडलाचार्य जगद्गुरु" दोनोंको अर्थ तो एक ही होवे पर नामको सींग ऊंचो उठावेके लिए लिखे हे. केवल अपने अहंकारकी सन्तुष्टिके लिए लगावे.

(अहंकारकी स्पन्दितरूपता)

अपनूने अपनो व्यक्तिगत अहंकार हटा दियो तो हजार नये अहंकार खड़े हो जायें. जो नये स्विच् आवें उनमें देखो तो वाके छेद बंद हो जायें. जब प्लग् डालनो होय तो वाकु पेंसिल्सु हटानो पड़े. नीचेसु हटाओ तो ऊपर चल्यो जाय. ऊपरसु हटाओ तो नीचे चल्यो जाय पर वहांसु वो जावे नहीं हे. ऐसे अपनो अहंकार शिफ्ट् होतो रहे हे. जावे कहीं नहीं हे. अपन् भगवदीय हो जायें तो भगवदीय होवेको अहंकार हो जाय. अपन् संन्यासी हो जायें तो संन्यासी होवेको अहंकार, यहां-तक के गरीब हो जायें तो गरीब होवेको अहंकार. दलित हे तो दलित होवेको अहंकार. जो बने वाको अहंकार. अहंकार छूटे नहीं. छूटेगो कहांसु? अपनी संरचनामें वो अहंकार हे. छूट तो वो चीज सके जो जुड़ी भई होय. जासु अपन् गढ़े ही भये हें तो कहांसु छूटेगो! अपन् खतम होंय तो ही अपनो अहंकार खतम होवे.

(अहंकारकी पुरुषार्थरूपता)

फरक क्या पड़ सके के यहांके बजाय वाकु वहां डाइवर्ट कर दो. वहांके बजाय यहां डाइवर्ट् कर दो. जगह बदल सके हे. जैसे जो नदी बह रही हे वो तो बहेगी. बांध बांध दोगे तो नीचेके बजाय ऊपर चढ़नी शुरु करेगी. नहर बना दोगे तो नहरकी दिशामें बहनो शुरु करेगी. जो नदी बह रही हे वो बहती रहेगी, वो रुक नहीं सके हे. ऐसे ही अहंकारको एक प्रवाह हे जो रुक नहीं सके हे. वाकी दिशा बदल सको हो. थोड़ी देर वाकु सस्पेंड् कर सको हो पर बहतो प्रवाह रोक्यो नहीं जा सके हे. या प्रकृतिमेंसु अपने सारे गुण प्रवाहके रूपसु आ रहे हें क्योंके 'क्षर' मानें जो लगातार बहतो रहे. लगातार बहवेवालेको नाम 'क्षर'. जैसे समझो के नदीको किनारा या पाट अक्षर हे और दो किनाराके बीच बहती नदी क्षर हे. ऐसे पुरुष रूपी किनारामें क्षरको प्रवाह बह रह्यो हे.

अब वे दोनों मिलके अपनकु एक लग रहे हें. क्योंके नदीको किनारा, नदीको पाट और बहती नदी, तीनों मिलके एक नदी बने हे. ऐसे जीवनको प्रवाह और प्रवाहमें साथ बहती चेतना, मिलके एक बन रही हे और वो जा समय बुद्धि वापरके अपने सुख-दुःखकु धमार्थकाममोक्षके रूपमें ले हें तो वो बुद्धि सुख-दुःखकी कारण-मीमांसा करे हे के ये सुख मोकु क्यों भयो, क्योंके मैने ये धर्म कियो. ये दुःख मोकु क्यों भयो, क्योंके मैनें ये अधर्म कियो, कोईको गलत तरीकेसु पैसा लियो. जैसे अपनने कोईकी पॉकिट् मारी और अपनी कुटाई भयी तो पैसा तो अपनने कमायो ही पर कुटाई होवेपे पता चले के अधर्मसु पैसा कमायो, यालिए अपनी पिटाई हो रही हे. गलत लियो के ठीक लियो, ये सब विवेक आ रह्यो हे, अर्थके कारण वो अपने सुख-दुःखको हेतु बन रह्यो हे. कोई गलत काम हे, जैसे अपन् बहोत सिगरेट् फूंक रहे हें. यासु अपनकु कॅन्सर् हो गयो. जा बखत सिगरेट् फूंक रहे हें, वा बखत अपनकु नहीं पता चले पर जा बखत कॅन्सर् होवे तो पता चले के सिगरेट् फूंकवेको ये दुःख हे. नहीं फूंकी होती तो सुख होतो. अब समझो के धर्म अर्थ काम कोई भी पुरुषार्थ होय, वामें सुख-दुःख तो चल ही रह्यो हे.

जैसे भौतिक या क्षर लेवल्पे चल रह्यो हे, ऐसे ही अक्षर-लेवल्के धर्मार्थकाममोक्षपे भी चल रह्यो हे. जा धर्मार्थकाममोक्षकेद्वारा अपनकु क्षरके लेवल्सु अक्षरके लेवल्पे जावेको रास्ता मिले वाके धर्म कौनसे? क्योंके अपन् जो कर रहे हें और अपनो जो कर्ता होवेको भाव हे, वो घाल-मेलको भाव हे. यासु वा रस्तापे जाते बखत भी अपनो वो भाव तो बन्यो ही रहे हे के कुछ सत् हे, कुछ रज हे, कुछ तम हे, कुछ दुःख हे, कुछ सुख हे, कुछ सुख-दुःखको घाल-मेल हे. यासु वा मार्गपे चलवेपे भी कुछ न कुछ लफड़ा तो रहे ही हे, जो क्षरसु अक्षरकी तरफ जावेको मार्ग हे और

वा अक्षरमार्गसु अपन् पुरुषोत्तममार्गपे जावें, वामें भी अपनो सुख-दुःख तो लग्यो ही रहेगो. वा सुख-दुःखकु महाप्रभुजी नवरत्नमें केह रहे हें के "**चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति, भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्**" (नव.१) वो दुःख जो अपनकु हो रह्यो हे के "**चिन्ता-सन्तान-हन्तारो यत्पादाम्बुज-रेणवः**" (मंग.१) वा लेवल्पे जाके, उन दुःखन्को निराकरण भी तो अपनकु करनो पड़ेगो के जो आधिदैविक धर्मार्थकाममोक्ष पुरुषार्थ हे, वामें जो अपने सुख-दुःख हो रहे हें, वो या आधिभौतिक लेवल्के सुख-दुःख नहीं हें पर आये हे वो वाही लेवल्सु हें. यासु वाको भी अपनकु कुछ उपाय करनो पड़ेगो.

उन उपायन्की व्याख्या जैसे महाप्रभुजीने षोडश ग्रंथमें करी, ऐसे कर्म ज्ञान और भक्ति केद्वारा अपने शास्त्रीय धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष हें, जो क्षरसु अक्षरकी तरफ ले जावेवाले धर्मार्थकाममोक्ष हे, उनमें आते भये दुःख-सुखकु कैसे मॅनेज् करनो वो बात शास्त्रने समझायी, जो गीता भागवत उपनिषद् में बताई गयी हे.

याके साथ जो क्षर-जगत्के अपने धमार्थकाममोक्ष अपनी सामाजिक व्यवस्था समझावे हे, कानून समझावे हे. कानून कहे हे के ये गलत काम करोगे तो ये दंड मिलेगो और ये काम करोगे तो ये रिवॉर्ड मिलेगो. जैसे पांचसौकी और हजारकी नोट बंद कर दी तो जो अर्थ पुरुषार्थ कियो हतो वो व्यर्थ हो गयो. एक-एक लाखके नोटके बंडल् लोग रस्तापे फेंक रहे थे. क्योंके वो अनर्थ पुरुषार्थ हो गयो. जब वे नोट चलते हतें तब कोई नहीं फेंकतो थो. इन्हीं नोटनकु मानो कल कोई डिक्लेअर् कर दे के ये ॲन्टीक् हे और याकी दस गुनी कीमत मिलेगी तो फिर सब लोग वाकु खोजवे निकल पड़ेंगे. तो जो सुख-दुःख हे, वो कानूनमें भी तो आ रह्यो हे.

हमारे जो वकील हते वो बहोत अच्छी बात कहते. मैं उनकु

मार्गके सिद्धान्त समझातो तो वो कहते के "महाराज! आपके मार्गके सिद्धान्त जब मुझे ही समझमें नहीं आ रहे हे तो जजूको कैसे समझमें आयेंगे? और जज् मुझसे अधिक समझदार होता तो वकालत छोड़ कर जज् क्यों बनता!" तो मैंने पूछा "तो वकील साहब, आप ही बतायें कि क्या करें?" बोले "अरे! दस-बीस हजार ले आओ. काम हो जाएगा. जजमेंन्ट् आपके फेवर्में आ जाएगा." मैंनें कहा "मैं हारना पसंद करूँगा पर पैसे दे कर अपने फेवर्में जजमेंन्ट् नहीं लेना चाहता हूँ. क्योंकि मुझे मेरा जजमेंन्ट् मेरे सिद्धान्तोके आधारपर चाहिये." वाने मोकु छेल्ले केह दी के "महाराज! फिर एक काम करो कि मैं जजूको केह दूँगा कि इन महाराजके कुछ सिद्धान्त हे, आप इनसे सुन लो." मैंनें कही के "जज् कहेगा तो मैं जजूको भी सुना दूँगा. मुझे डर नहीं हे." एक दिन वाने जजूकु केह दी के "इन महाराजके कुछ सिद्धान्त हैं. वे आपसु चर्चा करनो चाह रहे हैं. आप सुन लो." मैंनें आखे दिन वाके सामने सिद्धान्त बोले. वाने पूछी के "महाराज! ये कोई पुष्टिमार्गीय पाठशाला तो हे नहीं. मैं समझ गया हूँ." मैंनें कही "आप समझ गये हो तो मैं बंद करता हूँ."

(अहंकारकी क्षुद्रता)

बात ध्यानसु समझवेकी हे के अपनूकु हर बातके सुख-दुःख तो हें ही. क्योंकि अपनी चेतनामें अहंकार, सुख-दुःखकी प्रक्रियासु या धर्मार्थकाममोक्ष तक भी आके आवाज तो लगा रह्यो हे. वो जो आवाज लगा रह्यो हे, वाकु अपनूकु कितनो ध्यान देनो और कितनो ध्यान नहीं देनो, ये हर बखत कानूनशास्त्रको धर्मशास्त्रको और भक्तिशास्त्रको विषय हे. जा विषयके तहत महाप्रभुजीने ये बात बतायी के "**शास्त्रार्थ जीत्यो सो तो अच्छो कियो पर जीत्यो वाको अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो सोई वस्तुको नाश होइगो**" क्योंकि अहंकार तुम कर रहे हो क्षर-वस्तुको. अपनूकु लगे

के अपन् अक्षरको अहंकार कर रहे हें पर मूलमें अक्षर यदि चेतनासु हे तो वामें अहंकार कोई विषय नहीं हे. अहंकारको विषय तो क्षर-जगत्में ही आ रह्यो हे. वाकी खूबसूरती ये हे के अपन् पृथ्वीपे रेहके आकाशकी अनंतताकु निहार तो सके ही हें. वा अनंतताकु अपने पृथ्वीके छोटेसे घरकी छतसु निहार सके हें. पृथ्वी गोल हे यासु असीम आकाशकी असीम गोलाई दीखे हे. पृथ्वी चौरस होती तो आकाश भी असीम चतुष्कोण दिखतो. ऐसे ही अपने छोटेसे अहंकारकी छतपेसु अपन् आकाशकु निहार तो सके ही हें. पर खुले आकाशकु निहारनो सबके बसको नहीं हे. सबकु अपने ऊपर छत तो डालनी ही पड़े हे. खुल्ले आकाशमें तो कोई बिरलो व्यक्ति ही जी सके हे. जापे ठंडी बरसात गर्मी सहन करवेको दम-खम होय, वो ही खुले आकाशमें जी सके हे. यासु अपनूकु छत पटवानी पड़े हे. अपनी जीनेकी पद्धति इतनी लाचारी भरी हे के खुले आकाशमें जीनो अपने बसको रोग नहीं हे. या बातकु महाप्रभुजी समझानो चाह रहे हें के "शास्त्रार्थ जीत्यो वो तो अच्छो कियो" पर वा जीतवेके बाद जो छत पटवा रहे हो, वामें एक आध बारी ऐसी रखियो के वामें खुलो आकाश भी तुमकु दिखे. ऐसी स्थिति नहीं आनी चहिये के खुल्लो आकाश अहंकारकी छत पटवेपे नजर नहीं आवे. आकाश दिखतो रहेगो तो घरकी क्षुद्रताको अंदाज तुमकु रहेगो. आकाश नहीं दिख्यो तो घर ऐसो लगेगो के कितनो बड़ो हे! वा आकाशकी तुलनामें तुम्हारो घर कितनो बड़ो हो सके हे? वा आकाशकी तुलनामें पृथ्वी भी क्या हे? वा सूर्यकी तुलनामें पृथ्वी भी सौ गुनी छोटी हे. वा सूर्यसु अब्जन गुनो ये आकाश हे. जा आकाशमें सूर्यकी कोई कीमत नहीं हे, वा आकाशमें अपनी पृथ्वीकी कीमत क्या? वा आकाशमें या आदमीकी कीमत क्या? जब आदमीकी कीमत कुछ नहीं हे, तो वाने कुछ कमायो अथवा खोयो, वाकी आकाशमें क्या गिनती? वो तो बहोत क्षुद्र हे. गिनवे लायक नहीं हे. पर अपने पॉकिट्के ॲनालसु देखें तो हर रुपयाको हिसाब रखनो

जरूरी हे. आकाशके ॲन्गल्सु कोई हिसाब रखवेकी जरूरत नहीं हे. अहंकार अपनकु नहीं होनो चहिये. ये बात महाप्रभुजीने समझायी के **''शास्त्रार्थ जीते सो तो अच्छो कियो पर अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो सोई वस्तुको नाश होइगो.''**

(जगत्के संविधानमें काल-कर्मादिकी परस्पर निर्भरता)

प्रश्न : आपने कही के कर्मकी जितनी ताकत उतने समय तक चलेगो और कही के कर्म नहीं तो काल व्यर्थमें रहने नहीं देगो. याको अर्थ तो ये हे के कालपे कंट्रोल् कर्म करे हे.

उत्तर : आपने अच्छो सवाल कियो. ये दुनिया जा तरहसु बनी हे वाकी बनावटपे यदि अपन् ध्यान दें तो कोई भी चीज ए टू ज़ेड़ पूर्णरूपसु स्वतन्त्र नहीं हे और पूर्णरूपसु परतंत्र नहीं हे. सब एक-दूसरेपे अन्योन्याश्रित हे. एक ईंट खिसकाई तो धीरे-धीरे पूरी भीत गिरेगी. क्योंके ईंटन्के जोड़सु ही तो भीत बनी हे. हर चीज एक-दूसरेके कंट्रोल्में हे. कालपे कर्मको कंट्रोल् हे, कर्मपे कालको कंट्रोल् हे. काल और कर्म पे स्वभावको कंट्रोल् हे. स्वभावपे कर्म-कालको कंट्रोल् हे. प्रकृतिपे चेतनाको कंट्रोल् हे. चेतनापे प्रकृतिको कंट्रोल् हे. इन पांचोंन्पे ईश्वरको कंट्रोल् हे.

अपन् केह नहीं सके हें पर अपन् ईश्वरके ईशितव्य हे यालिए ही तो ईश्वरत्व हे. जैसे काकाको काकापनो भतीजापे निर्भर होवे हे. यदि कोई भतीजा ही नहीं हे तो काका कैसे होयगो? ऐसे कोई ईशितव्य नहीं हे तो ईश्वर कैसे हो सके!. ईश्वरकु ईश्वर होवेके लिए कोई ईशितव्य तो चहिये ही. कोई प्रजा होय तो ही तो कोई राजा होयगो. प्रजा नहीं होय तो राजा कहांसु होयगो. कोई शिष्य होय तो ही तो गुरु होयगो. ईश्वर भी तो अपनेपे कोई रूपमें निर्भर हे ही. दुनियामें एक भी चीज ऐसी नहीं हे जो एक-दूसरेसु पूर्णरूपमें स्वतन्त्र होय. या पूरी तरह एक-दूसरेपे निर्भर

करती होय. थोड़ी बहोत स्वतन्त्रता और थोड़ी परतंत्रता सबकु हे. अपने हृदयकु अपनो मस्तिष्क कंट्रोल् कर रह्यो हे. हृदयकी नसें मस्तिष्कसु कंट्रोल्ड् हे. मस्तिष्ककु खूनकी सप्लाइ हृदय कर रह्यो हे. इनमें जैसे निर्भरता हे ऐसे ही थोड़ी स्वतन्त्रता भी हे. एक फेल् हो जाय तो दूसरो फेल् होनो जरूरी नहीं हे. वाकु थोड़ी देरमें कोई रीतसु अपन् ठीक कर दें तो उतनी देर वो टिके रहे हे. अपन् देख सके हें के थोड़े स्वतन्त्र हें और थोड़े परतंत्र भी हें.

कालपे कर्मको कंट्रोल् हे के नहीं? जरूर हे. कैसे? अपन् पुराने ऋषिमुनिन्की बात देखें तो जब वे समाधि लगा लेते तो उनकी शारीरिक घड़ी बंद हो जाती. यासु वे अधिक काल तक जी सकते हतें. अपनी बायोक्लॉक्कु बंद करनो अपन्कु नहीं आवे हे. यासु अपन् अपनी आयुष्य ही जी सके हें. कालपे कर्मको कंट्रोल् हे ही. अपन् कहे के ऋषि मुनिन्की कथाएं गप्प हें. अरे मेढकमें भी वो सामर्थ्य हे. बरसातके बाद मेढक अपनी बायोक्लॉक्कु बंद कर दे हे और बरसातमें फिर चालू करे हे. मेढककु समाधिमें जावेकी प्रक्रिया बिना गुरुके आवे हे. मैंने अपनी आंखसु एक योगीकु देख्यो हतो, जबमें छोटो हतो. वाने डॉक्टरन्कु कही के हाथ और पैर की नाड़ी देखो, मैं बंद कर रह्यो हूँ. चार डॉक्टरन्ने हामी भरी के सब नाड़ी याकी बंद हे. कोई-कोईकु बायोक्लॉक् बंद करनी आवे हे.

कालपे कर्मको कंट्रोल् तो हे ही. ये तो अपन् देख ही सके हें के कर्मपे कालको कंट्रोल् हे. चावी भरो तो थोड़े समय बाद वो खतम हो जाय. मोबाईल् भी चार्ज करवेके थोड़ी देर बाद काल पूरो होते ही डिस्चार्ज् हो जाय हे. पाछे वाकु रिचार्ज् करनो पड़े हे. हर चीजपे हर चीजको कंट्रोल् हे. हर चीज थोड़ी-थोड़ी स्वतन्त्र भी हे.

हमारे बम्बईमें एक सजावटकी चीज बेचवेवालो हतो. वाने एक भीतपे टांगवेवालो पोस्टर् लगा रख्यो हतो के "मेरे घरपे मेरो कंट्रोल् हे और मेरी घरवालीने मोकु आज्ञा दी हे के ये बात सबकु बता दो." पतिपे पत्नीको कंट्रोल् हे और पत्नीपे पतिको कंट्रोल् हे. सबपे सबको कंट्रोल् हे और सब थोड़े स्वतन्त्र भी हें. सीधीसी बात ये हे. ऐसे मत सोचो के कालपे कर्मको कंट्रोल् हे यासु कर्मपे कालको कंट्रोल् नहीं हे. अपन् कहे के भगवान् सर्वेश्वर हे पर वो भक्तिसु कंट्रोल्में आवे के नहीं आवे! भगवान् स्वयं कबूल करें के "**अहं भक्तपराधीनो**" (भाग.पुरा.९।४।६३) भगवान्को ही सबन्पे कंट्रोल् हे, ऐसी बात नहीं हे. अपनो भी थोड़ो तो कंट्रोल् भगवान्पे हे. सबको सबपे कंट्रोल् हे और सब थोड़े स्वतन्त्र भी हें. अब आगे प्रश्न ये हे के "क्या हम समझ सके के अक्षरके अंदरको तत्त्व पुरुषोत्तम हे." ये ही तो मैं समझावेकी कोशिश कर रह्यो हूँ या चार्टके द्वारा.

(अहंकारको पोषक-मारकरूप)

अब अपन् ये बात समझ सके के महाप्रभुजीने क्यों शास्त्रार्थ करवेकी प्रेरणा दी और जीतवेकी बधाई दी. वाके बाद ऐसे क्यों कह्यो के या जीतको अहंकार मति करियो. क्योंके अहंकारके अलग-अलग लेवल् हें. एक औपचारिक लेवल् हे, एक गुणधर्मको लेवल् हे, एक क्रियाको लेवल् हे, एक दोषको लेवल् हे. कोई लेवल्पे वाकी निंदा होवे हे. कोई लेवल्पे वाकी निंदा कर ही नहीं सके क्योंके यदि वो लेवल्की निंदा होयगी तो काहेसु निंदा करोगे. ये ही तो कहोगे के "मैं अहंकारकी निंदा कर रह्यो हूँ." पाछे अहंकार तुम्हारी भीतकी ओटमें छिप गयो. "मैं अहंकारको अच्छी बात नहीं मानता." मतलब साफ हे के तुम भी अहंकारी हो. इन दोनों अहंकारन्में अपनूकु प्रभेद करनो पड़ेगो. जा अहंकारकु अपन् अच्छी बात नहीं मान रहे हें, वो अहंकार कौनसो और जाके कारण अपन् ये केह

रहे हें के "मैं अहंकारको अच्छी बात नहीं मानता." ये अहंकार कौनसो? दोनोनूमें भेद दिखलाई नहीं दे रह्यो हे, पर अपनकु बुद्धिसु वा भेदकु समझनो पड़ेगो. नहीं दिखलाई देते भये भी वो भेद तो अहंमें हे. एक अहं यों केह रह्यो हे के "मैं अहंकारको अच्छी बात नहीं मानता हूँ." और वो जा अहंकारके बारेमें केह रह्यो हे वो भी एक अहंकार ही हे. बहोत ही विचित्र स्थिति हे.

जैसे मैं कहूँ के "मैं झूठ बोल रहा हूँ." अब ये सच हे के झूठ हे? ये यदि झूठ होय तो ये सच हे. और सच होय तो झूठ हे. अपन् दूसरेकु कहे तब तो गड़बड़ नहीं हे पर यदि खुदके बारेमें बोल रहे हें तो सारी गड़बड़ हो रही हे. दोनों बाजुको फांसा हे. ऐसे ही अहंकारको फांसा भी दोनों बाजुको हे. आप अहंकारकु छोड़ो तो भी वो अहंकार हे और अहंकारकु पोसो तो भी अहंकार हे. यालिए मैंनें आपकु समझायो के जो पोषक हे, वो ही मारक हे. जो मारक हे वो ही पोषक हे. ये सारो गुण अहंकारमें ब्रह्मसु आयो हे. क्योंकें अहंकार भी कोई प्रकारसु ब्रह्मकी ही संतति हे और ब्रह्मकी परिभाषामें समझायो गयो हे के जासु अपन् पैदा हो रहे हें, जामें अपन् स्थित हें और जामें अपन् मर रहे हें, वाको नाम 'ब्रह्म'. ब्रह्ममें वे तीनों गुण हें के जो पैदा करे हे, पोषण करे हे और संहार भी करे हे. वो ब्रह्मा भी हे, वो विष्णु भी हे और वो रुद्र भी हे. ऐसे अपनो अहंकार ब्रह्मा भी हे, विष्णु भी हे और रुद्र भी हे, वो अपनेकु मारवेको काम भी करे हे. दूसरो तो जब मारेगो तब मारेगो पर अपनो अहंकार पहले ही अपनेकु मार दे हे. पैदा और पालन भी अपनो अहंकार ही कर रह्यो हे क्योंके ब्रह्मको अंश हे, यालिए ब्रह्मके सारे गुण वामें हें.

अपनूकु चुनाव केवल ये करनो हे के या अहंकारकी कौनसी

लीलाकु आनंदसु अपन् जी सके हें. वस्तुतः जब अहंकार स्वयंकु मारवेकी लीला करेगो तो दुःख तो होयगो. यालिए पुरुषार्थकी जरूरत वहां आ जाय हे के जासु वो दुःख अपनकु नहीं होवे. पुरुषार्थकी जरूरत वहाँ आ जाय हे के जो अहंकार अपनो पोषक हो रह्यो हे, वा अहंकारको अपन् भी पोषण करें और जो अहंकार अपनो मारक हो रह्यो हे, कमसु कम अपन् वाको पोषण तो नहीं करें. *मौतका एक दिन मुईअन हे, नींद क्यों रात भर नहीं आती.* जब मारेगो तब मारेगो, आज तो चैनकी नींद सोओ. आज ही कलकी चिंतासु नहीं सो पानो, मानें मरवेसु पहले खुद मर गये. वो तो जा दिन मारेगो सो मारेगो, तुम तो पहले ही मर गये.

एक बात बताऊँ के सब लोग यों केह रहे हें के ये जो अनाजमें कॅमिकल् फर्टीलाइज़र् और पॅस्टीसाइड़ छांटे जा रहे हें वासु कॅन्सर् होयगो. अब देखो के कॅन्सर् होवेको कारण तो स्पष्ट हे. कारण होते भये भी जीवेको मजा लेनो के वामें दुःखी होनो के कल तो हमकु भी कॅन्सर् होयगो और मरेंगे. अरे! जब होयगो तो मर जायेंगे पर जब-तक नहीं भयो हे तब-तक जीवेको मजा तो ले लो. हां, यदि या स्थितिकु सुधार सकते होओ तो सुधार लो. पर कुछ नहीं कर पा रहे हो तो कमसु कम होवेके पहले तो मत मरो. कॅन्सर् होवेके कारण पता हे, वाके होवेको कोई आश्चर्य नहीं हे पर वाके नहीं होवेको कितनो बड़ो आश्चर्य हे! इतने कारण होवेके बावजूद अपनकु कॅन्सर् नहीं हो रह्यो हे मानें अपनो शरीर भी जीनो तो चाह रह्यो हे. ये शरीर कैसे कॅन्सर्के साथ समझौता कर रह्यो हे, जीवेके लिए, जैसे हिन्दुस्तान-पाकिस्तानको समझौता होवे हे. क्या ये कोई कम चमत्कारकी बात हे! वा चमत्कारकु देखके सुखी होवेके बजाय व्यर्थमें दुःखी होते रेहनो. मैं वा रोवेमें नहीं मानूं. ठीक हे यदि परिस्थितिकु सुधार्यो जा सके तो अवश्य सुधारनो चहिये. वहां-तक तो बात सच हे पर रोवेकी बात खोटी

हे. ऐसे ही शास्त्रार्थ जीत्यो जा सकतो होय तो जीतनो तो चहिये ही पर वा जीतवेको अहंकार खोटो है. ये बात महाप्रभुजीने राणा व्यासकु समझायी. जाकी इन चार दिननमें अपन्ने विस्तारसु भूमिका देखी. कलसु अपन् वार्ता करेंगे.

[६]

(प्राकृतिक अहंकार साधक, अप्राकृतिक अहंकार बाधक)

राणाव्यासकी कथाके अन्तर्गत अपन् मूलमें ये बात देख रहे हतें के राणाव्यासकी कथा अपन् सबकी कथा कैसे हे. वाको कथानक अलग हो सके हे पर वाकी जो व्यथा हे वो अपन् सबकि व्यथा हे. वो व्यथा हे अहंकारके असमुचित प्रयोगकी. जब अपन् समुचित प्रयोगकी बात करें तो वामें दो बात खास ध्यान लेवेकी होवे हें. एक अहंकारको अनुपयोग और दूसरो वाको अनुचित उपयोग. वो दो छोर हें अहंकारके. इन दो छोरनसु अपनकु बचनो हे. एक बाजु अपनकु अहंकारको अनुचित उपयोग नहीं करनो हे और दूसरी बाजु वाको अनुपयोग भी नहीं करनो हे. अपनने राणाव्यासकी कथामें देख्यो के शास्त्रार्थमें हार जावेके कारण राणाव्यासकु आत्मघात करवेकी इच्छा भयी. या अहंकारकी खूबसूरती देखो. मैं याकु खूबसूरती केह रह्यो हूँ, बदसूरती नहीं केह रह्यो हूँ. वो खूबसूरती क्या हे के एक अहंकार हतो के "मैं विद्वान हूँ." नहीं हतो ऐसी बात नहीं हे. विद्वान तो हते ही. अपनी विद्वत्ताको एहसास होनो वामें कोई बुरी बात नहीं हे. पर जैसे मैने आपकु बतायी हती के अच्छाई और बुराई कहांसु आ रही हे, वाको एक सीधो सो मापदंड हे के जो मार्ग अपनने चुन्यो हे और वा मार्गपे चलवेके लिए जा तरीकोको अहंकार अपन् कर रहे हें वो अहंकार वा मार्गमें सहायक हे के बाधक हे. ये पहली कसौटी हे. बहोत सारे अहंकार कोई एक मार्गपे चलवेके लिए साधक होवें, वो ही अहंकार दूसरे मार्गपे चलवेके लिए बाधक हो जायें.

जैसे कोई कर्म करनो हे तो वा कर्ममें तो भगवान् स्पष्ट आज्ञा कर रहे हें के "**यद् अहंकारम् आश्रित्य न योत्स्ये इति मन्यसे, मिथ्या एष: व्यवसाय: ते प्रकृति: त्वां नियोक्ष्यति**" (भग.गीता १८।५९) एक कोई अहंकार हे जो तोकु ये केह रह्यो

हे के तोकु युद्ध नहीं करनो हे, पर ये अहंकार तेरो मिथ्या अहंकार हे. क्योंके ये तेरो प्राकृतिक अहंकार नहीं हे. ये तेरो अप्राकृतिक अहंकार हे यालिए वो मिथ्या हे. यालिए मिथ्या नहीं हे के ये अहंकार होनो ही नहीं चाहिये. अहंकार तो वो हे. वो अहंकार कितनो हे के अर्जुनने शुरुमें ही केह दी के "**कैः मया सह योद्धव्यम् अस्मिन् रणसमुद्यमे**" (भग.गीता१।२२) मोकु युद्ध कौनके साथ करनो हे. याको अर्थ ये के कौन मेरे साथ युद्ध करवे लायक हे, वो मैं देखनो चाहूँ. दूसरो कोई लायक हे के नालायक हे, वाकी कसौटी अपनो अहंकार ही तो हे. या सन्दर्भमें ये बात स्पष्ट नहीं होवे पर जब जरासंधसु लड़वेके लिए अर्जुन भीम कृष्ण गये तो जरासंधने अर्जुनकु देखके कही के "तू दुबलो-पतलो आदमी मोसु क्या युद्ध करेगो, चल हट." वे वासु युद्धकी भिक्षा मांगवे गये हते तो अपात्रकु थोड़े ही भिक्षा दी जाय! पात्रकु दी जाय. अर्जुनकु वाने पात्र ही नहीं गिन्यो. सच बात हे के तीर चलानो जाने पर वो तीर क्यों चला रह्यो हे? क्योंकि शरीरमें ताकत नहीं हे, या लिए. ताकत होय तो शरीर ही नहीं चलावे! वो ही बात वाने कृष्णके लिए भी केह दी के "तोसु क्या लड़नो." भीमकु देखके कही के "हाँ तू मेरे लड़वे लायक हे" वोही बात वहां अर्जुन केह रह्यो हे के "मोसु लड़वे लायक कौन हे," ये एक अहंकार तो हे ही. अच्छो अहंकार हे, कोई बुरी बात नहीं हे. कोई बच्चासु थोड़े ही अपन् लड़ेंगे. लड़ेंगे तो अपने समान बलशालीसु लड़ेंगे. वो प्राकृतिक अहंकार हे. अहंकार तो पहले ही अर्जुनने वापर लियो हे जब कृष्णकु कह्यो के "**रथकु बीचमें ले जाओ. मैं देखनो चाहूँ के मोकु युद्ध कौनसु करनो हे**" वाके बाद सब घोटाला भये. जब देख्यो के सामने तो अपने स्वजन और पूज्य हें. अब प्रश्न ये नहीं रह्यो के "वे मेरेसु लड़वे लायक हें के नहीं?" अब प्रश्न उठ्यो के "मैं उनसु लड़वे लायक हूँ के नहीं?" वाको प्राकृतिक अहंकार क्षीण होवे लग्यो. वा क्षीण अहंकारकु भगवान् केह रहे

हें के या स्थितिमें तेरो जो प्राकृतिक अहंकार हे "**यद् अहंकारम् आश्रित्य न योत्स्ये इति मन्यसे, मिथ्या एष: व्यवसाय: ते प्रकृति: त्वां नियोक्ष्यति**" (भग.गीता १८।५९). ये तेरो एक दूसरो अप्राकृतिक अहंकार पैदा भयो हे. जो अर्जुनकी प्रकृतिके अनुरूप अहंकार नहीं हे, वाकी प्रकृतिके प्रतिरूप हे. ये अहंकार तो हे पर वाके सन्दर्भमें वो खोटो अहंकार हो गयो. अब वाके दो अहंकार हो गये. एक प्राकृतिक और दूसरो किनसु लड़नो हे वो. जब वाने देख्यो के वाको प्राकृतिक अहंकार खंडित भयो हे, वाके बाद एक अप्राकृतिक अहंकार पैदा भयो. वो ऐसो के "मैं या युद्धकु अच्छो नहीं मानूं. यामें मारवेके बजाय मैं स्वयं मर जाऊँ तो अच्छो. मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगो. कौरवनकु मेरेपे शस्त्र उठावे दो." मानें मैं योद्धाकी तरह नहीं मरूँगो. एक कमजोर व्यक्तिकी तरह मर जाऊँगो. जहाँ-तक योद्धाको सवाल हे, वाके लिए ये अहंकार अप्राकृतिक अहंकार हे. अप्राकृतिक होवेके कारण मिथ्या हे. यालिए भगवान् केह रहे हें.

(अहंकारको अतिरोहितरूप)

या अहंकारकी खूबसूरती ये हे के वामें ब्रह्मकी खूबसूरती हे. वेद ब्रह्मकी खूबसूरती कैसे बतावे हे? वेद यों कहे हे के "**पुरुषएव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्**" (तैत्ति.आर.३।१३।२) मानें जो कुछ अपनकु दिखलाई दे रह्यो हे, वो 'वो पुरुष' हे जो केवल भूतकालकु ही दिखलाई नहीं दे रह्यो हे, भविष्यकु दिखलाई दे रह्यो हे. और वो ऐसी अमरताको मालिक हे के दूसरे लोग खाये जावेके बाद मर जाते होंयगे पर ब्रह्म खवा जावेके बाद भी जिंदो रहे हे. कुछ भाष्यकार याको दूसरो भी अर्थ करे हें. ये मत सोचियो के ये ही एक अर्थ हे पर एक अर्थ वाको ये भी हो सके हे. "**यद् अन्नेन अतिरोहति**" (तैत्ति.आर.३।१३।२) वो अन्नसु अतिरोहति हे. मानें जो खवायो जा रह्यो हे, वामें वो खवा तो रह्यो हे पर खवा जावेके बाद भी वो बच्यो रहे हे.

ऐसी दुनियामें बहोत-सी चीज हैं. अपन् सांस ले हें नाकसु मोंहसु. अपनकु पता नहीं चले हे के अपन् हवाकु खा रहे हें. खावेको अर्थ हे, अंदर लेनो, वाकु पचानो और वाकु शरीरको हिस्सा बनानो. हवा अपन् अंदर ले हें, लेवेके बाद ऑक्सीजनकु रक्तमें भेज दे हें. रक्त अपनी सारी कोशिकान्में ऑक्सीजन् सप्लाइ करे हे. वो ऑक्सीजन् अपने शरीरको हिस्सा बन जाय. अब बोलो, हवा खवा गयी के नहीं! ये ही स्थिति अन्नकी भी हे. अन्न भी शरीरको हिस्सा बन जाय पर खूबसूरती वाकी ये हे के अन्न अपने रूपमें मर जाय हे. अपने शरीरमें जावेके बाद चना चना नहीं रेह जाय, न गेहूँ गेहूँ रेह जाय, न केला केला रेह जाय. सब अपनो शरीर बन जाय. वाको डी.एन.ए. अलग हे. अपनो डी.एन.ए. अलग हे. वाके डी.एन.ए.कु अपने ही डी.एन.ए.में परिवर्तित कौन कर रह्यो हे. अंदर एक व्यवस्था ऐसी हे के अन्नकु हवाकु पानीकु अपने शरीरमें परिवर्तित कर रही हे. अपनी थालीमें वो सब अन्न खतम हो जातो होयगो पर वाको जो सोर्स् हे पृथ्वी, वामें तो वो खतम नहीं हो रह्यो हे. अपनी नाकमें जावेके बाद हवा, हवा नहीं रेहके रक्तको कोई हिस्सा बन जाय. वामें हवा अपनकु नहीं दीखे. पर बाहर तो हवा रेहवे ही हे न! खवा जावेके बाद भी वो जिंदा रहे हे. ऐसे ही ब्रह्म तुम्हारो अन्नभावापन्न हो जाय हे, तुम वाकु खा सको. याही लिए उपनिषद् वाकु ऐसे कहे हे के **"अहम् अन्नम्! अहम् अन्नम्!! अहम् अन्नम्!!! अहम् अन्नादो अहम् अन्नादो अहम् अन्नादः"** (तैति.उप.३।१०।६) मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ. मैं अन्नकु खावेवालो हूँ, मैं ही अन्नकु खावेवालो हूँ, मैं ही अन्नकु खावेवालो हूँ. **"अहं विश्वं भुवनम् अभ्यभवाम"** (तैत्ति.उप.३।१०।६) खावेवालो भी अन्न और खवावेवालो भी अन्न और या तरहसु अन्न ही तो सब कछु बन्यो हे. जो भी बन्यो हे, अपन् जो कुछ हें वो अन्न ही तो बन्यो हे. अपने भीतर जो जल हे, वो ही तो अपन् हें. विज्ञान यों कहे हे के

अपने शरीरमें जितनो जल हे वाकु यदि सोख लें तो अपनो वजन सोलह आनामेंसु छह आना रेह जायगो. सोचो अपने शरीरमें पानी कितनो हे! आज-कल डी-हाइड्रेशनकी प्रक्रिया चले हे. रोटीकु खिचड़ीकु डी-हाइड्रेट कर दें तो बहोत सारो भी छोटेसे पॅकेटमें आ जाय हे. अपने शरीरमें पानी भी हे, हवा भी हे, तेज भी हे, आकाश भी हे. ये सब हें और ये सब अन्नकी विधिसु खाये जा रहे हें. जो भी अपन् चना गेहूँ खा रहे हें, वो पृथ्वी ही तो खा रहे हें. लोग कहे के पृथ्वी कहां खा रहे हें, अनाज खा रहे हें. अरे! पर वो अनाजने क्या खायो हे? पृथ्वीमें रह्यो भयो जो उपजाऊपन हे, वो खाके अनाज भयो. वा अनाजकु अपन् खा रहे हें. तो अपन् पृथ्वी जल तेज वायु आकाश कु ही तो खा रहे हें पर खवा जावेके बावजूद भी क्या ये खतम हो रहे हें? ये खतम नहीं होवें. अहंकारकी ये खूबसूरती हे के यदि वो खंडित हो जाय तो वाके खंडित होवेको अहंकार हो जाय.

बहोत सारे लोग जब यों कहे के "फलानो भाई बहोत अहंकारी हे अपन् अहंकार नहीं कर रहे हें." ये कितनो बड़ो अहंकार हे? ये भी बहोत बड़ो अहंकार हे. खंडित अहंकार भी तो एक अहंकार ही हे. बरसन् तक मोकु आधी मूंछ उगती हती. या बाजुकी आधी मूंछ उगती ही नहीं हती. सिंघवी जो सुप्रीम कोर्टको वकील हो गयो, वो पहले राजस्थान हाई-कोर्टको हतो. वाके पास मैं सलाह लेवे गयो. वाने मोसु कही के "महाराज! सब बात छोड़ो, ये बताओ के ये कौनसी फॅशन् हे आधी मूंछ रखबेकी?" मैनें कहीके "अरे! ये फॅशन् नहीं हे, ये तो उगती ही आधी हे." वो बोल्यो "तो आधी मूंछ निकाल क्यों नहीं देते." मैनें कहा "आधी मूंछ उगवेका अहंकार हे." कोई औरकु शरम आती होयगी पर मोकु उगे ही नहीं तो क्या करनो! वाको ही अहंकार करो. करीब पैंतीस छत्तीस बरस बाद या बाजु मूंछ उगनी शुरु भयी. अपनकु दैन्य

क्यों रखनो के आधी क्यों उग रही हे. कमसु कम आधी उग तो रही हे. ये क्या कोई कम बात हे. वो बिचारो नर्वस् हो गयो. या बातकु ध्यानसु समझो के अहंकार यदि खंडित हो जाय तो वा बातको अहंकार हो जाय. और मंडित हो जाय मानें कोई थोड़ी तारीफ कर दे तो वो चौगुनो अहंकार हो जाय. खंडित हो जाय तो भी मरे नहीं. "यद् अन्नेन अतिरोहति" मरे भये अहंकारको अहंकार हो जाय. ये गजबकी खूबसूरती हे अहंकारकी.

(प्राकृतिक और अप्राकृतिक अहंकारको रूप)

अपने बोलचालकी भाषामें वाकु ऐसे कह्यो जाय के *मियांजी गिर गये, तो भी टंगड़ी ऊँची.* ये डब्ल्यू-डब्ल्यू-एफकी जो रेसलिंग् होवे वामें एक जनो दूसरेकु उठाके पटक दे. पटके जावेके बाद भी वो कंधा ऊँचो कर ले. कंधा जमीनपे तो नहीं लग्यो यालिए अभी तो हम जीते भये हें. अरे! उठाके तुमकु पटक दियो वाको क्या? कुश्तीको कायदा भी ऐसो ही हे के कंधा ऊँचो रख्यो तो तुम हारे नहीं हो. ऐसो होवे अहंकारको कंधा. गिर भी जाय तो कंधा ऊँचो कर दे. हे के नहीं खूबसूरती? यदि बच्चा होय तो अहंकारपे प्यार आवे के उठाके पटक दियो हे फिर भी कंधा ऊँचो करके केह रह्यो हे के "कहां गिरे बताओ" भगवान् भी वाकी खूबसूरतीकु इंकार नहीं कर रहे हें पर ये अहंकार खोटो हे क्योंके यदि सामनेवालो तुमकु उठाके पटक सके हे, वाकु तुम्हारे दोनों कंधानकु जमीनपे लगावेमें कितनो टाईम् लगेगो. जो तुम्हारे अहंकारकु खंडित कर सके, प्राकृतिक अहंकारकु, वाके बाद जो अपनो खंडित अहंकार हे वाकु तोड़वेमें कितनो समय लगे? प्राकृतिककु तोड़वेमें तकलीफ हे पर जो अप्राकृतिक अहंकार हे वाकु तोड़वेमें समय नहीं लगे.

जिनने भारतको इतिहास पढ्यो होयगो वो ये बात अच्छी तरह

जानते होंयगे के जा बखत बाबर पहली बार हिन्दुस्तानमें तोप लेके आयो और राणा सांगाके सामने वाने तोप दागनी शुरु कर दी. राणा सांगामें भी प्राकृतिक अहंकार हतो क्षत्रिय होवेको. उनने ये उपद्रव कभी देख्यो नहीं हतो के दूरसु अपने किलापे तोप छोड़ें और अपनो किला गिर जाय. वाने सब सिपाहीनसु कही के "जाओ तलवार लेके." सब लोग मर गये और राणा हार गयो. वो वाको प्राकृतिक अहंकार हतो जो अन्त तक टूट्यो नहीं. ऐसे ही अपनो भी एक प्राकृतिक अहंकार हे जो अपनी प्रकृतिके रेहते खंडित नहीं होवे. पर यदि दूसरेकी कोई जबरदस्त प्रकृति हे; तोपके जैसी, तो वो तलवारके अहंकारकु खंडित कर सके. ये जो अर्जुनको अहंकार पनप्यो के "या तरीकेके युद्ध करवेके बजाय मैं मर जाऊँ." देखो वाको अहंकार कैसो हे? "ये सब कौरव समझ नहीं रहे हैं के कितनो विनाश होवेवालो हे या युद्धसु. क्योंके इन सबकु लोभ हे राज्यको. मोकु लोभ नहीं हे. मैं मरनो चाह रह्यो हूँ." "**किं नो राज्येन गोविन्द! किं भोगैः जीवितेन वा येषाम् अर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च. ते इमे अवस्थिताः युद्धे प्राणान् त्यक्त्वा धनानि च.**" (भग.गीता १।३२-३३). "अपने धन और प्राण दोनोंनकी हानि करके लड़वेके लिए तैयार हैं. इनकु ये दिखलाई नहीं दे रह्यो हे. मोकु दिखलाई दे रह्यो हे." देखो अहंकार दिखलाई दे रह्यो हे! अभी भी कौरवनकी तुलनामें खुदकु श्रेष्ठ मान रह्यो हे. पहले तीर चलावेमें श्रेष्ठ मानतो हतो. अब यों मान रह्यो हे के तीर नहीं चलावेमें मैं श्रेष्ठ हूँ. पहले मारवेमें अपनेकु श्रेष्ठ मान रह्यो हतो अब यों मान रह्यो हे के "**यद्यपि एते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः...कथं न ज्ञेयम् अस्माभिः पापाद् अस्मान् निवर्तितुम्**" (भग.गीता १।३८-३९) मर जावेमें मैं श्रेष्ठ हूँ. "**यदि माम् अप्रतीकारम् अशस्त्रं शस्त्रपाणयः धार्तराष्ट्राः रणे हन्युः तद् मे क्षेमतरं भवेत्**" (भग.गीता १।४६) "मैं प्रतीकार नहीं करूंगो, ये मोकु मारनो चाहते होंय तो मार दें. मैं मर जाऊँगो, वो मोकु ज्यादा बेहतर हे" देखो अहंकार हे के नहीं?

ये प्राकृतिक अहंकार नहीं हे, खंडित अहंकार हे. या खंडित अहंकारकु भगवान् 'मिथ्या' केह रहे हें. **"यद् अहंकारम् आश्रित्य न योत्स्ये इति मन्यसे, मिथ्या एष: व्यवसाय: ते प्रकृति: त्वं नियोक्ष्यति"** (भग.गीता १८।५९) क्योंके अहंकारकी प्रकृति ही ऐसी हे के वो मरके पाछो जिंदो हो जाय हे. वाकु मार दो तो मरे होवेको अहंकार हो जाय. जिंदा होय तो जिंदा होवेको अहंकार हे.

(गुणधर्मात्मक अहंकारकी बहुरूपता)

या बातकु लेके भगवान्ने अहंकारके दो भेद किये. जो बात मैं आपकु समझा रह्यो हतो के एक अहंकार औपादानिक = रॉ-मॅटेरियल्के रूपको होवे हे और एक गुणधर्मात्मक = अपनो कॅरेक्टरिस्टिक् मानें अपने गुणधर्मको अहंकार होवे हे और एक क्रियात्मक = फंक्शनलिटीको अहंकार होवे.

यामेंसु कौनसो अहंकार खंडित हो रह्यो हे और वो अहंकार कौनसे रूपमें जीवित रेह रह्यो हे, ये समझमें आनो मुश्किल हे. जैसे छिपकलीकी पूँछ अपन्ने तोड़ दी तो टूटी भई पूंछमें भी तो छटपटाहट रहे ही हे. वो फंक्शनल् अहंकार हे, वो रॉ-मॅटेरियल् अहंकार नहीं हे. छिपकलीसु पूँछ कटके अलग हो गयी, अब वामें छिपकली होवेको अहंकार नहीं हे. छिपकली होवेको गुण भी नहीं रह्यो, पर फंक्शनल् अहंकार अभी भी हे. इतनी छिपकली नहीं छटपटावे. वो तो पूँछ कटवेके बाद भाग जाय हे. पर पूँछ बहोत देर छटपटाती रहे हे. ये फंक्शनल् अहंकार बहोत तकलीफ देवे हे. बड़े दरबार सुमेरसिंहजी मोकु बता रहे हते के मजेलामें दस ग्यारह फुटको सांप आयो और कोईपे टूट पड्यो. उनने सांपपे गोली चला दी. सांप दो टुकड़ामें हो गयो. आधो कट्यो सांप पेड़पे चढ़ गयो, फिर मिल्यो ही नहीं. दूसरो हिस्सा तड़पतो रह्यो थोड़ी देर फिर मर्यो. ये फंक्शनल् अहंकार हे.

(प्राकृतिक अहंकारको सदुपयोग अनुपयोग दुरुपयोग)

जब ये बात अपन् सोचे हें तो अपनकु ख्याल आवे के जब राणाव्यासकु महाप्रभुजी आज्ञा कर रहे हें के "तू ब्राह्मण हे, तू शास्त्रार्थ हार गयो. वामें तेरो अहंकार खंडित भयो क्योंके ब्राह्मणकु शास्त्रार्थ करवेको अहंकार होवे हे." अहंकार बच्चाकी तरह होवे. कहां प्रकट होनो और कहां छिप जानो ऐसे चोर-सिपाहीको खेल खेलतो रहे हे. वा अहंकारकु अपनकु सुधारनो आनो चहिये. एक बात समझो के प्राकृतिक अहंकारकु सुधार्यो नहीं जा सके हे क्योंके सुधारवेको भी यदि आपकु काम करनो हे और आपके भीतर कोई प्राकृतिक अहंकार नहीं हे तो वा अहंकारके फंक्शनकु सुधारोगे कैसे? समझो के अहंकारको फंक्शन् खंडित होके बिगड़ गयो और वाकु सुधारनो हे, जैसे राणाव्यासको बिगड़ गयो और वो आत्महत्या करवे जावे लगे, जैसे अर्जुन आत्महत्या करवेकु तैयार भयो, जैसे छिपकलीकी पूँछ तड़प रही हे, ऐसे अपनेमें भी एक खंडित अहंकारकी तड़पकु ठीक करनी पड़ेगी. कर्म कुछ भी करनो हे तो अहंकार तो चहिये ही. वामें फंक्शनल् अहंकार काम नहीं आयगो, प्राकृतिक अहंकार काम आयगो. वा प्राकृतिक अहंकारके कारण अपनेमें अहंकारको एक कॅरेक्टर आवे हे. वो कॅरेक्टर हे पुरुष होवेको, स्त्री होवेको, ब्राह्मण होवेको, क्षत्रिय होवेको, वैश्य होवेको, राजस्थानी गुजराती होवेको, अंग्रेज होवेको, हिन्दु-मुसलमान-ईसाई होवेको. ये सब अहंकारके कॅरेक्टर्स हें.

वा कॅरेक्टरके बिना भी अपन् अपनो कर्म नहीं कर सकेंगे क्योंके सारे कर्म तो अपन् कर नहीं सकें. भगवानकी तरह अपन् सर्वकर्मा तो हो नहीं सकें. अपन्में धर्म करवेकी ताकत हे, कर्म करवेकी ताकत हे, पर कितने? जितने भी हें उतने कर्म करवेको अपनेमें प्राकृतिक अहंकार हे. मानें मोकु ये बोध हे के मैं पुरुष हूँ, वो मेरो अहंकार हे के मैं पुरुषोचित कार्य करूँ. मैं स्त्री हूँ

तो मोकु ये अहंकार हे के मैं स्त्रीजनोचित काम करूँ. जो भी कुछ काम करनो हे, वामें प्राकृतिक अहंकार तो चहिये ही. वा प्राकृतिक अहंकारको अनुपयोग हो सके हे, सदुपयोग हो सके और दुरुपयोग हो सके हे. जैसे ही वा प्राकृतिक अहंकारको अनुपयोग कियो तो वो चुप नहीं बैठे. अहंकार कभी चुप नहीं बैठ सके. वो तुरंत दूसरे ठिकाने जाके छुपके काम करवे लग जायगो. वो दूसरो कोई कॅरेक्टर् अपना लेगो. क्योंके वाकु पता हे के वाने जो कॅरेक्टर् तुमकु बतायो, वा कॅरेक्टर्सु यदि तुम प्रसन्न नहीं हो तो अहंकार दूसरो रूप ले ले. ऐसे बहोतसे लोग हें; लड़का और लड़की, जो अपने लड़का या लड़की होवेसु खुश नहीं हे. वो लड़का, लड़की बन जाये. जो लड़की हे वो लड़का बन जाय. वो अपने प्राकृतिक अहंकारसु खुश नहीं हे. अपने भारतकी कितनी जातिएं क्षत्रिय हती, शूद्र बन गये. ब्राह्मण हते बनिया बन गये. उनमें भी कोई प्राकृतिक कॅरेक्टरीस्टिक् अहंकार तो होयगो न! पर यदि आप वा अहंकारसु सॅटिस्फाईड् नहीं हो तो वो अहंकार तुरंत दूसरो रूप ले ले.

मोकु या गोविंदकी बात याद आ गयी. ये पहले होमियोपॅथीको डॉक्टर् बननो चाहतो हतो और रन्तिदेवजी और याके पप्पा चाहते हते के ये वकील बने. जब तू डॉक्टर बननो चाहतो हतो तो तोकु वा समय होमियोपॅथीके डॉक्टर्को अहंकार तो होयगो. पर अब हे वो अहंकार? नहीं हे, गायब हो गयो. मेरे पास फरियाद आयी हती के याकु समझाओ के याकु डॉक्टर् नहीं, वकील बननो चहिये. अब वाकु वकील होवेको अहंकार हे. अहंकारकु रूप बदलनो आवे. जैसे ब्रह्म अकेलो अनेक रूप धारण कर सके हे "एको अहं बहु स्याम्" ऐसे अकेलो अहंकार कितने रूप धारण कर सके. ये बड़ी मीठी खूबसूरती हे अहंकारकी. यदि ये ऐसे रूप धारण नहीं करे तो आदमी अकर्मण्य हो जायगो. मुश्किल ये हे के भगवान् गीतामें

आज्ञा करे हें के "**नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत् कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैः गुणैः**" (भग.गीता ३।५) दुनियाको कोई भी व्यक्ति ऐसो नहीं हे जो शपथ खाके केह सके के मैं कुछ भी नहीं करूंगो. कुछ न कुछ तो करनो पड़ेगो. प्रकृतिके गुणके कारण कुछ न कुछ तो तुमकु करनो पड़ेगो. जब कुछ न कुछ कर्म करोगे तो अहंकार वहां जाके छिप जायगो. वो खाली देखतो रहे हे के अभी तुम कहांपे खुश नहीं हो. जहां खुश नहीं हो, वा कर्मसु अपने आपकु अलग कर रहे हो. अब वो देखे के तुम क्या कर्म कर रहे हो. जैसे गोविंदके अहंकारने देख्यो के डॉक्टर् नहीं बन रहे हे तो डॉक्टर्के अहंकारसु हटके वो वकीलके अहंकारमें छिप गयो. ये बात मैं "**प्रकृतिजैः गुणैः**" की बात बता रह्यो हूं के अहंकारकी प्रकृति कैसी हे? ये कथा सबके साथ हे, गोविंदकी ही कथा हे ऐसो नहीं हे.

मैं दादाजीकु बहोत तंग करतो हतो के मोकु प्रवचन नहीं करनो हे. तबला बजानो हे. दादाजी बहोत गुस्सा होते के "कोठापे तबला बजायगो? प्रवचन कर." पंचशतीमें यहां प्रवचन करवे आयो हतो तो कोल्हापुरके बाबुभाईने केह दी के "**यद् अहंकारम् आश्रित्य न योत्स्ये इति मन्यसे, मिथ्या एषः व्यवसायः ते प्रकृतिः त्वां नियोक्ष्यति**" (भग.गीता १८।५९) "जा अहंकारकु करके तुम केह रहे हो के मैं प्रवचन नहीं करूंगो, वो तुम्हारी प्रकृति तुमकु एक दिन प्रवचन करवा देगी." और देखो आज प्रवचन कर रह्यो हूं. वो तेरी कथा हे, ऐसी बात नहीं हे, मेरी भी वो ही कथा हे. मेरी कथा हे ऐसो नहीं हे, अपन् सबकी ये कथा हे.

(औपादानिक अहंकार)

अहंकारमें ये बहुरूप धारण करवेकी सामर्थ्य हे और वाके कारण कोई भी कर्म करवेमें अपनकु कोई जातको सॅटिस्फॅक्शन् मिले हे.

धर्मको अर्थको कामको मोक्षको सॅटिस्फॅक्शन् या अहंकारसु मिल रह्यो हे. जैसे साइन्सुको सिद्धान्त हे के एनर्जीकु कन्वर्ट कर सको हो, खतम नहीं कर सको. एक फॉर्ममेंसु एनर्जी, दूसरी फॉर्ममें कन्वर्ट् हो जाय हे. मॅटर् खतम हो सके हे पर एनर्जी कभी खतम नहीं होय हे. ये साईन्स्को सिद्धान्त हे. अहंकार भी अपनी वा तरहकी पॉवरफुल एनर्जी हे. वो खतम नहीं होवे. अपनो रूप बदलती रहे हे. बहोतसे लोगन्की वार्तामें अपन् देख सकें के कोईकु धनी होवेको अहंकार हतो, कोईकु ज्ञानी होवेको अहंकार हतो. वो अहंकार मिट गयो तो दूसरो अहंकार पैदा हो गयो. एनर्जी खतम नहीं होवे, ट्रान्सफोर्मेशन्की प्रक्रिया हे, वो अहंकारकु एक एनर्जी बनावे. अपने शरीरके भीतर रही भई एक एनर्जी हे. वाके रॅफरेन्स्में भगवान् ये केह रहे हें के "**भूमि: आपो अनलो वायु: खं मनो बुद्धिरेव च अहंकार इति इयं मे भिन्ना प्रकृति: अष्टधा**" (भग.गीता ७।४) "तुम्हारेमें भर्यो जो एनर्जीरूप अहंकार हे, वो तुम्हारो नहीं हे, वो मेरो हे." जैसे या किताबकु मैं यहांसु वहां चला रह्यो हूँ वो स्वयंकी एनर्जीसु नहीं चल रही, अपितु मेरी एनर्जीसु चल रही हे. यामें एक इनर्शिया हे. ऐसे ही अपनेमें भी एक इनर्शिया हे. अपन् अपनी एनर्जीसु नहीं चल रहे हैं, भगवान्ने जो अपने भीतर अहंकारकी एनर्जी भरी हे, वासु अपन् कर्ममार्ग ज्ञानमार्ग भक्तिमार्ग पे चल पा रहे हें. यासु वो औपादानिक अहंकार हे. वो अहंकार अपनो रॉ-मटेरियल् अहंकार हे और वो बहोत पवित्र अहंकार हे. जितनो पवित्र भगवान् हे, उतनो पवित्र वो अहंकार हे क्योंके भगवान् केह रहे हें के ये मेरी प्रकृति हे. ये तुम्हारी प्रकृति नहीं हे. तुम्हारेमें तो मैंने याकु एनर्जीकी तरह इम्प्लांट् कियो हे. जैसे या पुस्तकमें मैं अपनी एनर्जी लगा रह्यो हूँ और पुस्तक चल रही हे. ऐसे अपनी चेतनाके साथ प्रभुने अपने अहंकारकी एनर्जी जोड़ दी हे, वासु अपनी चेतना चल रही हे, सो रही हे, सोच रही हे. वा भगवान्की एनर्जीसु अपनी चेतना ये सारो काम कर रही हे. वरना अपनी चेतनामें

एक जातको इनर्शिया हे. 'इनर्शिया' मानें नहीं चलवेको स्वरूप. कोई चीज स्थिर हे तो स्थिर हे. वाकु यदि चलानो होय तो कोई एनर्जी लगानी पड़ेगी. ऐसे ही अपनी चेतनामें एक जातको इनर्शिया हे. वाकु भगवान्‌को जो प्रकृतिरूप अहंकार हे, वाकी एनर्जीसु वो चलेगो. वो अहंकार कभी गलत हो ही नहीं सके.

(गुणधर्मात्मक अहंकार)

वाकी खूबसूरती समझो. गालिबको एक बड़ो प्रसिद्ध शेर हे *न मैं कुछ था तो खुदा था, न मैं कुछ होता तो खुदा होता, डुबोया मुझको होनेने, न मैं होता तो क्या होता.* मानें मेरे होनेकी दो हकीकत हैं. एक खुदाई हकीकत और एक फरेबी हकीकत. जो मेरी खुदाई हकीकत हे वो तो वो खुद हे, वामें कोई दोष नहीं हे. डुबा मोकु वो नहीं रही हे. डुबा मोकु ये हकीकत रही हे के जो 'खुदा' न होके 'मैं' हूँ. अपने होवेकु गालिब धिक्कार रह्यो हे. पर वो धिक्कार भी तब सके जब खुद होय तब. होवे ही नहीं तो धिक्कारेगो कैसे? ये अहंकारकी खूबसूरत तासीर हे. ये जो कॅरेक्टरिस्टिक् मानें प्राकृतिक अहंकार हे, वो दोषरूप नहीं हे, क्योंके कर्ममार्ग भक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग उपासनामार्ग वैराग्यमार्ग तपमार्ग धंधाके मार्गमें अध्ययनके मार्गमें चोरी-डकैतीके मार्गमें वो तो सबको मूल हे. जो भी तुम काम कर रहे हो, वो वा अहंकारके कारण कर रहे हो. वा अहंकारसु जो तुम्हारी कॅरेक्टरिस्टिक् गढ़ी गयी, वाको उपयोग तुम क्या कर रहे हो, वो अहंकारको विषय नहीं हे. जैसे खानमेंसु हीरा निकल्यो हे तो वो हीरा ही. अब वा हीराको तुम मुकुट बना रहे हो के पैरकी बिछिया बना रहे हो, वामें हीराको क्या कसूर? पैरकी बिछिया बनाके पैरमें पहन लो वाकु अथवा माथेको मुकुट बनाके सिरपे पहन लो. हीराकु थोड़े ही कोई ऑब्जेक्शन् होयगो. यहां-तक तो ठीक हे पर क्या हीराको पीकदान नहीं बनायो जा सके हे? वो भी हो सके. हीरा थोड़े ही ना पाड़ेगो के

क्यों मेरेमें थूक रहे हो! ऐसे कह्यो जाय के वाजिद अलीशाह पन्नाके प्यालामें पानी पीतो हतो. वाकी कोई बेगम हती या रखैल हती, वो पन्नाको प्याला वाके लिए भरके ला रही हती और वो गलतीसु टूट गयो तो वो बेचारी डर गयी के पता नहीं अब क्या दंड मिलेगो? वाजिद अलीशाहने कही के "तू डरे क्यों हे? जितने पन्नाके प्याला हे सबकु तू तोड़ दे." जितने प्याला हते सब तुड़वा दिये. अब यामें पन्नाको प्याला क्या करे. कोईके लिए जो गहना बने, वहां वो तोड़वेके काम आयो. ये कोई भी आपकु रोके नहीं हे कुछ करवेसु. वो तो आपको दिल वाको कैसो उपयोग करनो, ये बतावे हे. या ही प्रकारसु अहंकार भी आपकु रोके नहीं हे. वाको उपयोग करनो होय तो उपयोग करो. दुरुपयोग करनो हे तो दुरुपयोग करो और सदुपयोग करनो हे तो सदुपयोग करो. ये कथा और वा अहंकारसु कियो जातो कोई और चीजको अनुपयोग दुरुपयोग सदुपयोग, ये दोनों अलग कथा हें. वो बात समझनी चहिये. जैसे मेरो एक अहंकार हे के मैं प्रवचन कर रह्यो हूँ. अब आप वामें अड़चन डालोगे तो मेरो अहंकार डिस्टर्ब् होयगो. क्योंके मेरेमें अहंकार हे के मैं प्रवचन कर रह्यो हूँ, यालिए वो अहंकार डिस्टर्ब् होयगो.

मैं अक्सर अपने एक शिक्षककी बात करूँ. एम.ए.में वो मेरे शिक्षक हते, कारानी. पारसी बाबा हते. वाको शिक्षक होवेको अहंकार इतनो अच्छो हतो. इतनो खूबसूरत अहंकार मैंनें कभी कोईको देख्यो नहीं. कठिनसु कठिन विषय समझा सके. वे ब्लॅकबोर्डके पास खड़े रेहते. जैसे ही कोई शिष्य शंका प्रकट करतो तो वो ब्लॅकबोर्डसु वा शिष्यकी तरफ आगे बढ़नो शुरु करते समझावेके लिए. यदि शिष्य समझ जाय तो वापस चले जाते और नहीं समझे तो शिष्यके बाजुमें बैठ जाते और वाकु समझाते. वाकु अपने शिक्षक होवेको अहंकार इतनो मीठो हतो के विद्यार्थीकि बाजुमें बैठवेमें वाको अहंकार मंडित होतो हतो. खंडित नहीं होतो हतो. कोईको अहंकार खंडित

हो जाय के "मैं शिक्षक हूँ, मैं गुरु हूँ, मोसू सवाल कैसे कियो?" मेरे एक गुरुजी ऐसे भी हते. कुछ भी सवाल करें तो उनके हाथ कांपने शुरु हो जाते और फटसु मार देते. अहंकार इतने फोर्ससु आतो उनकु के 'पूछ्यो क्यों?' अब लप्पड़ खावे तो कौनकु नहीं समझ आवे. हम भी केह देते के सब समझ आ गयो. आयी न बात समझमें के अहंकारकी बहोत वॅराइटी हैं. कारानी सरको अहंकारको सदुपयोग हे और दूसरो अहंकारको दुरुपयोग हे. दोनोंमें शिक्षक होवेको अहंकार हे. पर एक वाको सदुपयोग कर रह्यो हे और एक दुरुपयोग.

ऐसे अनुपयोग भी हो सके. आजकल बहोत सारे शिक्षक अपने अहंकारको उपयोग नहीं करे हैं. वाको कारण हे के पढ़ानो इतनो जिम्मेदारीको काम हो गयो हे के बच्चा तूफान करें और उनकु कुछ करो नहीं तो तूफान बन्द नहीं करे. कुछ कहो और बच्चा रोवे लग जाय और शिकायत करे तो मां-बाप वा शिक्षककु पीटवे आवें. वामें कौन शिक्षक अपने अहंकारको उपयोग करेगो. कौन झगड़ा मोल ले. सारे एन.जी.ओ. इकट्ठे हो जायें के विद्यार्थीनूंपे बड़ो अत्याचार हो रह्यो हे. वा स्थितिमें कौन शिक्षक अपने अहंकारको उपयोग करेगो? धीरे-धीरे डॉक्टरनूमें भी वो समस्या खड़ी हो रही हे. कोई मरीज मर जाए तो सारे मरीजके संगेवाले आके डॉक्टरकु पीट जायें. आज-कल अहंकारके मॅनेजमॅन्टकी समस्याएं बहोत विकट होती जा रही हें. प्रॅक्टीकली आजकी तारीखमें अपन् सबके अहंकार मिस्-मॅनेज्ड् होते चले जा रहे हें. जितने अपन् ज्यादा मॅनेज् होते जा रहे हें, उतने ही अपने अहंकार मिस्-मॅनेज्ड् होते जा रहे हें. सब विषयनूके जैसे एम.बी.ए.के कोर्स बन रहे हें पर अहंकारके मॅनेजमॅन्टको कोई कोर्स चालू नहीं भयो हे. हर क्षेत्रमें वो मिस्-मॅनेज् ही हो रह्यो हे.

वालिए महाप्रभुजीने कही के "ब्राह्मण होवेके कारण तेरो शास्त्रार्थ

हारवेको जो अहंकार खंडित भयो, तो चल मैं तोकु जितवा दऊँ." और वाकु जितवा भी दियो पर जीतके आयो तो अहंकार तो सॅटिस्फाइड् हो गयो. वा बखत महाप्रभुजीने टोक दियो के "जीतवेको अहंकार मति करियो." ये कौनसो गीताको संदेश हे? "**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन मा कर्म फलहेतुः भूः मा ते संगो अस्तु कर्मणि**" (भग.गीता २।४७) "तू ब्राह्मण हे, वाके कारण शास्त्रार्थ करनो तेरो कर्तव्य हे क्योंके जाने शास्त्र पढ्यो हे, वो ही तो शास्त्रार्थ करेगो. शास्त्र नहीं पढ्यो तो वो या तो अशास्त्रार्थ करेगो या शास्त्रको अनर्थ करेगो. यदि ब्राह्मणने शास्त्र पढ्यो हे और यदि वो पराजित भयो हे तो वाको प्राकृतिक अहंकार खंडित भयो हे. वाकु रिस्टोर् करनो पाछो जरूरी हे. क्योंके अहंकार रिस्टोर् हो गयो तो वाको ब्राह्मणत्व रिस्टोर् हो जायगो. वाकी शास्त्रज्ञता रिस्टोर् हो जायगी.

(क्रियात्मक अहंकार)

हमारे बम्बईमें एक भट्टजी हते, महाविभूति. एक दिन मेरे पास आये और बोले के "श्यामबाबा, इस भट्ट प्यारेको महाप्रभुजीकी सुबोधिनी ऐसी लगी के जो गुसांईजीकु भी नहीं लगी." मैनें पूछी "ऐसी कैसी सुबोधिनी लगी." मेरो अहंकार भी खंडित हो गयो के ऐसी कैसी सुबोधिनी इनकु लगी के जो गुसांईजीकु नहीं लगी. मैनें पूछी के "बताओ क्या लगी?" मैं तो खार खाके बैठ्यो हतो. जैसे ही उनने अर्थ कियो मैनें वामें चार-पांच गलती निकाल दी. वे बोले "मैं तो महामूर्ख हूँ." मैनें कही "नहीं! आप महामूर्ख नहीं हो, अहंकार आपकु गलत हो गयो हे." देखो खंडित अहंकार या ॲक्स्ट्रीम्सु वा ॲक्सट्रीमपे चल्यो जाय. क्योंके सुबोधिनी बांची और कोई मनमें फितूर आ गयी के ये अर्थ ऐसो हे और वो गुसांईजीकी पंक्तिन्में स्फुट नहीं भयो, तो हो गयो अहंकार. अपन् ऐसे ही ॲक्सट्रीम्में झूलते रहवे हें.

वो ही स्थिति राणाव्यासकी हे और कभी न कभी अपनूकी

भी स्थिति आवे हे. ये बिचारे भट्टजीकी हे ऐसी बात नहीं हे. यदि अपन् डायरी लिखें तो पता चले. कभी अपनूकु लगे के मैं महाविद्वान हूँ और कभी लगे के महामूर्ख हूँ. इन दोनों अतिरेकसु बचनो चहिये क्योंके ये फंक्शनल् अहंकार हे. ये प्राकृतिक अहंकार नहीं हे. ये अहंकारको फंक्शन् हे जो आपकु एक बाजू ये बता रह्यो हे के मैं सबसु श्रेष्ठ हूँ और दूसरी बाजु ये समझा रह्यो हे के सबसु निकृष्ट हूँ. न दुनियामें कोई सबसु श्रेष्ठ हे और न दुनियामें कोई सबसु निकृष्ट हे.

(स्वस्थ अहंकारके प्रबन्धकी प्रक्रिया)

हर व्यक्ति जो हे सो हे. वो स्वस्थता अपने अहंकारमें होनी चहिये. संस्कृतमें एक बहोत अच्छो श्लोक हे "न सर्ववित् कश्चिद् इह अस्ति लोके न अत्यन्त मूर्खो भुवि चापि कश्चित्" दुनियामें न तो कोई सर्वज्ञ हे, न कोई महामूढ़ हे. "ज्ञानेन नीचोत्तम मध्यगेन यो यद् विजानाति स: तेन पण्डित:" डिग्रीमें कोईको बीस हे तो कोईको उन्नीस ज्ञान हे, कोईको इक्कीस ज्ञान हे. वो इक्कीसवालो ये समझे के "मैं सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी हूँ." और उन्नीसवालो समझे के "मैं सबसु निष्कृष्ट हूँ." अरे उन्नीसवालो अठारहसु तो अधिक हे. और इक्कीसवालो पच्चीससु तो कम हे. वामें क्या तो घबरावेकी बात हे और क्या अपने आपकु श्रेष्ठ मानवेकी बात हे. जो जितनो जान रह्यो हे वो उतनो पण्डित हे. सर्वविद् तो दुनियामें कोई नहीं हे और सर्वमूर्ख भी कोई नहीं हे. ये अहंकारके मॅनेजमॅन्टकी कथा हे. अपनी हकीकतकु बिना कोई पूर्वाग्रहके स्वीकार करनो. ये यदि अपन् कर सके तो अपने प्राकृतिक अहंकारको और अपने गुणधर्मरूप अहंकारको अच्छी तरहसु अपन् मॅनेजमेन्ट् कर रहे हें. जब अच्छी तरहसु इनकु मॅनेज् कर रहे हें तो उनको फंक्शन् भी अच्छो होयगो. यदि बराबर मॅनेज् नहीं कर रहे हें तो मॅल्-फंक्शनिंग् हो जाय अहंकारको. ये सिद्धान्त हे.

या सिद्धान्तके लिए महाप्रभुजीने कही के **"शास्त्रार्थ कियो सो तो अच्छो कियो पर जीतवेको अहंकार मति करियो"** क्योंके **"कर्मण्येवाधिकारस्ते"** (भग.गीता २।४७) कर्म तेने अपने रॉ-मटेरियल्के अहंकारके अनुसार कियो, वो औपादानिक अहंकार. वाको ब्राह्मण तरीके एक गुणधर्म प्रकट कर्यो हतो, शास्त्रज्ञ होवेके नाते. "जाको अहंकार करेगो वाको नाश होयगो." वो कौनसो अहंकार? औपादानिक नहीं, गुणधर्मात्मक नहीं पर क्रियात्मक अहंकारको नाश होयगो. गये तीन-चार दिननमें ये बात आपकु समझायी. ये मैनें यालिए दुहराई के अपनी गाड़ी ट्रॅकपे आ जाय. अब भगवान् गीतामें एक बात समझा रहे हें, गीतामें दो जगह भगवान्ने या समस्याकु विस्तारसु समझायो हे. एक योगमें और एक अठारवें अध्यायमें, इन सारेन्को फंक्शन् कैसे हो रह्यो हे! क्यों इनको वेल्-फंक्शन् हो रह्यो हे और क्यों इनको मॅल्-फंक्शन् हो रह्यो हे और क्यों ये नॉन्-फंक्शन् मोड्में जा रहे हें. इन सबको भगवान्ने गीताके इन दो अध्यायन्में विस्तारसु उल्लेख कियो हे. थोड़ी अपन् यापें दृष्टि डालेंगे.

(दर्शन-कर्तव्योपदेशमें चित्रकलावत् दृष्टि)

अपन् अहंकारकी मॅकेनिज्म्के सन्दर्भमें राणाव्यासकी वार्ताकु देख रहे हें और ये जो बात मैनें आपकु समझायी के उनकी कथाकी जो व्यथा हे, वो अपन् सबकी व्यथा हे. अपन्की कथाको कथानक और उनकी कथाको कथानक अलग हो सके पर व्यथा अपन् सबकी एक ही हे. वो व्यथा कैसे एक हे, वो अपन् थोड़ो देखें. यद्यपि एक खुलासा मैं करनो चाहूं के प्राय: अपनो प्रोग्राम् ऐसो हतो के इन वार्तान्में आते भये महाप्रभुजीके वचनामृतको अपन् चिन्तन मनन करेंगे, वार्ताको नहीं करेंगे. यासु ये जो संकलन बाहर पाड्यो, यामें सब वार्ता अपन्ने संकलित नहीं करी हे. वो ही वार्ता संकलित करी हें के जिनमें महाप्रभुजीको कोई वचनामृत हे. इन वचनामृतन्की हैसियत; जो महाप्रभुजीके उपदेशात्मक बाइस ग्रंथ हें मानें षोडशग्रंथ

शिक्षाश्लोकी पंचश्लोकी साधन-प्रकरण वगैरह, उन ग्रंथनमें आये कर्तव्योपदेश जैसी हे. बहोत सारे कर्तव्योपदेश महाप्रभुजीके बिखरे भये भी हें. सुबोधिनीमें बहोत ज्यादा, निबन्ध और भाष्य में भी थोड़े हें. क्योंके अपनी भारतीय संस्कृतिको ये माहात्म्य हे के अपने यहां कर्तव्यकु हर समय कोई दर्शनकी पृष्ठभूमिमें देख्यो हे और वा दर्शनकी पृष्ठभूमिमें कोई कर्तव्यको चित्र उभार्यो हे. ये महाप्रभुजीको चित्र हे, वामें अपन् देख सके हें के ये बॅकग्राउन्ड्में ग्रीन् हे और वामें महाप्रभुजीको महत्त्व फिगर्सु होवे हे. पुष्टिमार्गने प्रारम्भसु ही एक पॉलिसी ॲडोप्ट् करी. पुष्टिमार्गमें कलाको विकास कैसे भयो वाके इतिहासमें अपन् नहीं जायें. कुछ लोग मानें हे के श्रीनाथजी जब व्रजसु राजस्थान पधारे तब व्रजकी चित्रशैली लेके पधारे. चित्रकार भी वहांसु ही आये. इतिहासकार या बातकु नहीं माने हें. श्रीनाथजी बहोत पहले पधारे और नाथद्वारा कलम बहोत बादमें पनपी. वाके पहले उदयपुरकी एक कलम हती. किशनगढ़-कलम ऐसे बूंदीकी कलम भी पुष्टिमार्गसु प्रेरित हे. जोधपुर और जयपुर कलम पुष्टिमार्गसु प्रेरित नहीं हे. दक्षिणकी कुछ कलम भी पुष्टिमार्गसु प्रेरित हें. आंध्रा-कलम मुगल साम्राज्यके बाद यहींसु विकसित भयी हे. सहज संभव हे के उनने अपनेसु ही लियो होय. केह नहीं सके क्योंके उनको कुछ स्वतन्त्र भी हो सके.

अपने यहां हरी बॅकग्राउन्ड् क्यों चुनी वाको कारण समझो. वो गुसांईजीने सेवाविधिमें कारण बतायो हे के ठाकुरजीको नीलवर्ण स्वामिनीजीको पीतवर्ण, उनकु मिक्स करें तो हरितवर्ण होवे. अपने पुष्टिमार्गमें बॅकग्राउन्ड् हर बखत ग्रीन् रंगकी ही होवे. अपनी बॅकग्राउन्ड् न राधाकी हे और न अकेले कृष्णकी हे पर राधाकृष्णको रंग लिए भयी हे. ये पुष्टिमार्गकी एक चॉइस् हे, पुष्टिमार्गको एक सिग्नेचर् हे के अपने जितने भी फिगर् उभरें वे राधाकृष्णके बॅकग्राउन्ड्में ही उभरें. बहोत बादमें जयपुरमें गुसांईजीके वा भावकु लेके बिहारीने

एक दोहा लिख्यो हतो. *मेरी भवबाधा हरो राधामाधव सोय, जा तनकी झांई परे श्याम हरित द्युति होय* ये बात अपने गुसांईजीने पहले कही हती जो बिहारीने वाको भाव लेके लिख्यो अनुवादके रूपमें. वो हरो रंग अपने यहां प्रेरक विषय रह्यो, अपने कोई भी फिगर्की बॅकग्राउन्ड्के रूपमें. वा बॅकग्राउन्ड्को रोल् हे.

(कृष्णभक्तिके चित्रमें राधावेशात्मिका पृष्ठभूमि)

जितने भी टीकाकार देखोगे के जहां भी 'श्रीकृष्ण' पद आवे, वहां या बातको उल्लेख करे हें के "श्रिया राधया सहित कृष्ण: 'श्रीकृष्ण:'" अपन् कृष्णवादी नहीं हे, अपन् राधावादी भी नहीं हे. वृंदावनकी बहोतसी शाखाएं कृष्णवादी हतीं. बहोत सारी शाखाएं राधावादी हतीं. अपनो सम्प्रदाय न राधावादमूलक हे और न कृष्णवादमूलक हे पर राधाकृष्णवाद-मूलक हे. क्योंकि अपने यहां राधाके बारेमें महाप्रभुजी खुलासा करे हें के "राधा नामकी भगवान्की एक शक्ति हे और वो शक्ति कभी कृष्णसु अलग नहीं रहे हे, जुड़ी भयी रहे हे. जा बखत जो अवतार ले हे, वाके साथ वो भी प्रकट हो जाय. जब वो राम बने तो वो सीता बन जाय. कृष्ण बने तो राधा बन जाय, रुकमणि बन जाय" वाके बाद महाप्रभुजीने एक लोंग्-जम्प् लगाके एक बात कही हे के "यालिए जो भी कृष्णकु चाह रह्यो हे, वामें राधाको आवेश हे." ध्यानसु समझो बातकु के अपनी भक्ति राधावेशात्मिका हे. भक्ति कृष्णके प्रति पर आवेश राधा-भावको. बालकन्में एक मिथ्या भ्रांति फैले हे के कृष्ण-आवेशात्मक हम पुरुषोत्तम हें. वो उनकी भ्रांति हे. राणाव्यासकी तरह अहंकारको कोई एक प्रकार हे. वाकु अपन् नहीं डिस्कस् करेंगे. अपनी कृष्ण-भक्ति राधावेशात्मिका-भक्ति हे. वाको अर्थ हे के जैसे महाप्रभुजी समझावे हें के राधाकु कृष्णकी कामना नहीं हे, कृष्णके प्रति रतिको भाव हे. कुब्जाकु कृष्णकी कामना हती.

(रति और कामना को भेद)

रति और कामना में मूल भेद यह हे के रतिमें एक प्रकारको धैर्य होवे पर कामना हर बखत अधीर ही होवे हे. मैं याकु अक्सर एक उदाहरणसु समझाऊँ. अपने भीतर भोगकी दोनों प्रकारकी वृत्ति काम करे हें. अंग्रेजीमें वाकु 'हंगर्' और 'ॲपेटाइट्' कहे हें. 'ॲपेटाइट्' मानें जैसे आप राजस्थानके हो तो आपकु दाल-बाटी-चूरमा भावे. दक्षिणके हो तो इडली-डोसा भावे. गुजरातके हो तो गांठिया-ढ़ोकला भावे. ये सब ॲपेटाइट्के विषय हे. हंगर्को यासु कछु लेनो-देनो नहीं हे. 'हंगर्'को अर्थ हे के आपकी कॅलेरी खतम हो गयी हे और कॅलेरीको रिप्लेसमॅन्ट् चाह रही हे. वो आप काहेसु पूरी करो वामें आपकु आपकी ॲपेटाइट् गाइड् कर सकती होयगी. अपन् याकु सरल भाषामें समझें तो भूख और स्वाद. भूख रति-रूप हे और स्वाद कामना-रूप हे. एक स्वाद-रुचि होवे और एक भोजन-रुचि होवे. भोजनरुचिमें आइटम्को झगड़ा नहीं होवे. खावेकी आवश्यकता हे, वामें बड़ी धीरज हे. स्वाद-रुचिमें धीरज नहीं हे. आदमी अधीर हो जाय. जैसे आप राजस्थानी हो और खावेके बाद कोई सामने दाल-बाटी-चूरमा रख दे तो कहेंगे के एक धर दो. पेट भरवेके बाद भी वो चले. भूखकु सन्तुष्ट करवेमें स्वाद नहीं बिगड़े पर स्वादकु सन्तुष्ट करवेमें स्वास्थ्य बिगड़ जाय. ये मूल भेद हे कामना और रति में.

'रति'को अर्थ कोई चीजके साथ निरन्तर इन्वॉल्व् रेहनो. जो चीज जाके साथ निरन्तर इन्वॉल्व्ड् हे, वाकु वाके साथ रति हे. वो कामना याही लिए नहीं हे क्योंके वो इनवॉल्व्ड् हे. कामनाके साथ समस्या ये हे के जा वस्तुकी कामना आपकु हे वामें आपको इन्वॉल्वमॅन्ट् नहीं हे पर वाके उपभोगकी आपकु अदम्य इच्छा हे.

एक साधारण उदाहरणसु आपकु समझ आ जायगो. अपन् धर्मशाला

अथवा होटल् में उतरें. अपनी आकांक्षा होवे के सब साफ-सुथरो होनो चहिये. वहां रति नहीं होवे यालिए साफ छोड़के नहीं आवें. गंदो छोड़के आवे. अपने घरकी अपनूकु कामना नहीं होवे. वामें अपनी रति होवे क्योंके अपन् वामें इन्वॉल्व्ड् हें. यासु अपन् अपने घरकु साफ चाहे ही नहीं हे पर साफ रखें भी हे. ये फरक पड़ जाय. ट्रेनूमें भी अपन् जब बैठें तो अपनी कामना होवे के ट्रेन्को डिब्बा साफ होनो चाहिए और साफ रखनो चहिये, ये रति हे. यालिए कामनामें अहंकार अपनो प्रबल होवे हे और रतिमें अहंकार सोबर् हो जाय हे. जब भी अपनूकु कामना हे तो अपने अहंकारके अलावा कुछ दिखाई नहीं देवे. रतिमें अहंकार अपनूकु नहीं दिखे पर ममता दिखे हे के "ये मेरो हे." जाकु अपन् "मेरो" मान रहे हें वामें अपनो इन्वॉल्वमॅन्ट् हे. जहां कामना हे वहां अहंकारवश अपन् ऐसे सोचे हें के याको इन्वॉल्वमॅन्ट् मेरेमें होनो चहिये, मेरो यामें होय के नहीं. जैसे ट्रेनूमें चढ़े तो ट्रेन्को कम्पार्टमॅन्ट् मेरे लायक साफ-सुथरो होनो चहिये. जा भी धर्मशालामें उतरें, वाको रूम मेरे लायक साफ-सुथरो होनो चहिये. घरमें ये भाव नहीं होवे. घरमें अपनी ममताकी भावना होवे के मोकु या घरकु साफ रखनो हे. यामें अहंता ढीली पड़ जाय और ममता प्रबल हो जाय. ये आखो मेकेनिज़म् हे.

(पुष्टिभक्तिको मूल आत्मरति/पुष्टिशक्ति)

ये तो दिखलाई देती बात हे, उनमें या तरहसु राधाकृष्ण काम कर रहे हे. राधा कृष्णकी आत्मरति हे. 'आत्मरति' मतलब के कृष्णको अपने आपमें इन्वॉल्वमॅन्ट्. या फिनोमिनाकु अपन् सॅल्फ्-इन्वॉल्वमॅन्ट् केह सके हें. अपनी प्रॉब्लेम् ये हे के सौमेंसु कोई दो व्यक्ति ऐसे होवे हें के जिनकु सॅल्फ्-इन्वॉल्वमॅन्ट् होवे. अपनूकु बाहरी विषयमें इन्वॉल्वमॅन्ट होवे, अपने आपमें इन्वॉल्वमॅन्ट् नहीं होवे. जाकु मैंने आपकु ढोसा-इडली, फाफड़ा-जलेबी आदिके उदाहरणसु समझायो. खावेको

पीवेको सूंघवेको छूवेको इन बातन्में अपनो इन्वॉल्वमॅन्ट् रहे हे. अपने आपमें इन्वॉल्वमॅन्ट् नहीं होवे. अपनो इन्वॉल्वमॅन्ट् अपने अहंकारके कारण हो रह्यो हे. अहंकारमूलक इन्वॉल्वमॅन्ट् कामनाको रूप ले ले हे. ममतात्मक इन्वॉल्वमॅन्ट्में अहंता अपने आप ढीली पड़ जाय हे.

जैसे पुरुषोत्तमदासजीकी वार्तामें अपनूने देख्यो के वृद्ध होते भये भी सेवा इतने इन्वॉल्वमॅन्ट्सु करते हते के जैसे सेवा कृष्णकी आवश्यकता न होके उनकी आवश्यकता हे. वो अपनो ममता-मूलक इन्वॉल्वमॅन्ट् हे. माँकु अपने बच्चामें ममता-मूलक इन्वॉल्वमॅन्ट् होवे हे. बच्चा रातकु चार बार जगावे, तो भी जगे हे, गुस्सा नहीं आवे. कई बखत पति जगावे, तो गुस्सा आवे. पर बच्चा जगावे, तो माँकु गुस्सा नहीं आवे. वाको कारण हे के बच्चाके सन्दर्भमें माँकी अहंता डाइल्यूट् हो जाय हे और ममता बढ़ जाय हे.

ये जो आत्मरतिको मॉडल् हे राधा, वा आत्मरतिके रूपमें अपनूकु कृष्णसु रति होवे, तो महाप्रभुजी केह रहे हें के पुष्टिभक्ति हे. यदि कृष्णकी कामनासु भक्ति हो रही हे, तो महाप्रभुजी पहले ही केह दे रहे हें के ये पुष्टिभक्ति नहीं हे, मर्यादा-भक्ति हे. कृष्ण-कामनाके कारण होती भक्ति मर्यादा-भक्ति ही हे. कृष्णके साथ रतिसु जो भक्ति प्रकट हो रही हे वो वृत्ति ही पुष्टिभक्ति हे. अपन् 'पुष्टि' शब्द या अर्थमें वापर रहे हें. कोई मोटापाके अर्थमें नहीं वापर रहे हें के एक भगवान्की क्रियाशक्ति हे, एक भगवान्की बोधशक्ति हे और एक भगवान्की पुष्टिशक्ति हे. वैसे, तो द्वादश शक्ति गिनाई हें. एक अविद्या-शक्ति हे, एक विद्या-शक्ति हे और एक पुष्टि-शक्ति हे. 'अविद्या'को अर्थ हे के समझमें नहीं आ रह्यो हे के क्या हे. 'विद्या'को अर्थ के समझमें आ रह्यो हे के क्या हे. जैसे अपनूकु नींद आ रही हे, तो अपनो बाह्य संपर्क छूट जाय और समझमें नहीं आवे के पुस्तकमें क्या लिख्यो हे. पुस्तक पढ़ रहे हें, प्रवचन सुन रहे हें, वा बखत भी नींद आ जाय,

वो अविद्याशक्ति प्रबल हो जाय हे. जब अविद्या-शक्ति प्रबल हो जाय तो अपनी जिज्ञासा-वृत्ति ढीली पड़ जाय हे. विद्या-शक्ति जा बखत प्रबल होवे, वा बखत जानवेकी इच्छा-शक्ति प्रबल हो जाय. इन दोनोंसु हटके एक तीसरी शक्ति हे, पुष्टिशक्ति. वो विद्या और अविद्या दोनोंकी मोहताज नहीं हे. क्योंके वाकु जानके भी यदि अपनकु आत्मरति नहीं हो रही हे, तो पुष्टि नहीं हे और वाकु नहीं जानते भये भी यदि आपकु आत्मरति हो रही हे, तो पुष्टि-शक्ति काम कर रही हे.

(अहंकारकी सन्तुष्टि : कामकी सन्तुष्टि)

यालिए उपनिषद् एक बात कहे हे के "**अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते, ततो भूयइव ते तमो यः उ विद्यायां रताः**" (ईशा.उप.९) जो केवल अज्ञानसु चोंट जावे हें, वे अन्धन्तममें प्रविष्ट हो जायें, मानें गहरे अंधकारमें प्रविष्ट हो जायें क्योंके उनकु अज्ञान ही पसंद हे. ये तो कॉमन्-सॅन्सकी बात हे जो कोई भी केह सके. पर उपनिषद्की महत्ता यामें हे के वो ये केह रह्यो हे के "**ततो भूयइव तमो यः उ विद्यायां रताः**" वा अज्ञानके कारण चेतनाके चारों ओर जो अन्धकार छावे हे, वासु अधिक अंधकार विद्याके कारण छा जाय हे. क्योंके अज्ञानीमें अहंकार प्रबल नहीं रेह जाय हे और विद्यामें अहंकार प्रबल हो जाय. जितनी भी पंचपर्वा अविद्याएं हें वे कोई न कोई अहंकारपे अवलम्बित हें. कर्म देखो तो अहंकारपे, त्याग देखो तो अहंकारपे. जब-तक अपनकु गाम त्याज्य नहीं लगतो होय, अपने अलावा सब चीज त्याज्य नहीं लगती होंय, तब-तक आप त्याग कैसे करोगे! यदि त्याग करनो हे, तो पहले स्वयंको त्याग करो. आपकु खुदमें वैराग्य नहीं हे, बाकी सबमें वैराग्य हे, तो वहां वैराग्यमें भी अहंकार बोल रह्यो हे. योग और सांख्य में देखो. वामें अपन् क्या कहे हें के मेरे अलावा सारो अस्वरूप हे. मेरो स्वरूप नहीं हे. मेरो जो स्वरूप हे वामें मोकु स्थित

होनो हे. यालिए महाप्रभुजी आज्ञा करे हें के "अहंता-ममता नाशे सर्वथा निरहंकृतौ, स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः सः निगद्यते" (बा.बो.७) पर जीव अहंताके बिना स्वरूपस्थ होयगो कैसे? पहले वो अहंता तो आपकु जागृत करनी पड़ेगी के मेरो स्वरूप मेरो स्वरूप हे, बाकी सब अस्वरूप हे. वा अहंकारके बिना योग और सांख्य की विद्या चले नहीं हे. बादमें अहंकार छूट जाय, वो बात दूसरी हे. और पंचपर्वा विद्यामें जो भक्ति आयी वामें भी अपन् देखें. मेरे कुछ काम ऐसे हें, जो धर्मके होंय, कामके होंय, अर्थ अथवा मोक्ष के होंय, वो भक्तिके बिना सिद्ध नहीं होंयगे क्योंके भक्तिको उत्कर्ष अधिक हे. मैं अपने अहंकारके वश यदि भक्ति करूँ, तो मेरी मुक्ति होयगी. भक्ति मोकु यालिए नहीं करनी हे के भगवान् भजनीय हे. भक्ति मोकु यालिए करनी हे के मैं संसारसु त्रस्त हूं. और इन वैराग्य सांख्य योग तप सु मुक्ति पावेकी मेरी तैयारी नहीं हे. अब भगवान्‌की भक्ति नहीं करूँ, तो करूँ क्या? गुजरातीमें एक कहावत हे के *घडपणमां गोविंदगुण गाशुं* अब बुढ्ढे होके गोविंद गुण नहीं गाओगे, तो करोगे क्या? जाके गुण गाओगे वो ही लप्पड़ मारेगो. गोविंद लप्पड़ नहीं मारे यालिए तुमकु लगे के गोविंदके गुण गाने चहिये. देखो भक्तिमें भी पाछो अहंकार तो बोल ही रह्यो हे. ये पंचपर्वा विद्याकी भक्तिकु बहोत सारे टीकाकारन्‌ने कही हे के ये पुष्टिभक्ति नहीं हे, ये मर्यादा-भक्ति हे. याको खुलासा मैं आपकु बादमें बताऊँगो. अभी या रहस्यकु अच्छी तरहसु समझो के जितनी विद्या हे, वाके पीछे अपनो कोई न कोई अहंकार काम कर रह्यो हे और वा अहंकारकी अपन् सन्तुष्टि चाह रहे हें. जब अहंकारकी सन्तुष्टि चाह रहे हें, तो ये बात साफ हो गयी के ये आत्मरति नहीं हे. ये कामकी सन्तुष्टि हो सके पर रतिकी सन्तुष्टि तो नहीं हे.

(भक्तिमार्गमें क्रियात्मक अहंकारकी साधकरूपता : शरणागति)

रतिको भाव तो ऐसो भाव हे के जहाँ अपनी अहंताकु अपन्

पहले समर्पित कर दे हैं ''श्रीकृष्णः शरणं मम'' केहके. अपन् ''श्रीकृष्णः शरणं मम'' या अर्थमें नहीं कहें के श्रीकृष्ण मेरी शरणमें हैं. संस्कृतमें शरणको अर्थ ये नहीं हे. 'शरण'को अर्थ हे अधिष्ठान या रक्षक. ''श्रीकृष्ण मेरो रक्षक हे.'' याको मतलब ये हे के मेरो ये सामर्थ्य नहीं हे के मेरी रक्षा मैं स्वयं कर पाऊँ. यालिए वेदान्तदेशिक बहोत अच्छी मीठी बात कहे हें ''**अहं मद्रक्षणभरो मद्रक्षणफलं तथा न मम श्रीपतेरेव इति आत्मानं निक्षिपेद् बुधः**'' (न्यासदशक.१) मैं और मेरी रक्षाकी जिम्मेदारी ये दोनों मेरे नहीं हे, तेरे हें. मैं भी तेरो हूँ और मेरी रक्षाकी जिम्मेदारी भी तेरी हे. मेरी रक्षाको जो फल हे, वो फल भी मैं मेरो नहीं मान रह्यो हूँ, तेरो मान रह्यो हूँ. मानें जा फलके लिए मेरी रक्षा तोकु करनी होय, वालिए तू मेरी रक्षा कर. वा प्रकारकी शरणागतिमें अपन् अपने अहंकारकु तोड़े नहीं हें, ठाकुरजीकु अपने अहंकारको नज़राना पेश करे हें. तोड़नो एक अलग चीज़ हे और नज़राना पेश करनो एक अलग चीज हे. पुराने जमानामें नज़राना थोड़ो झुकके दियो जातो हतो.

मोकु बराबर याद हे के किशनगढ़के राजमाता हमारे बम्बई आके रहते. हम उनके घर जाके रहते. उनकु हम मासीजी कहते. हमारी माँके वो दोस्त हते. वो वैष्णव-संस्कारके हते यालिए हमकु भेंट धरते. मैं उनसु कहतो के ''लाओ दे दो'' वो डपट लगाके कहते के ''ऐसे ली जाय कोई भेंट!'' फिर हाथसु उठाके कहते के ''आप ऐसे उठाओ. मैं रखूँ, तो आप हाथ आगे करके मांगो मत. मैं झुकके रखूँ वाके बाद आप उठाओ'' मासीजी बहोत भाववाले हते. मांगतो तो गुस्सा हो जाते. या तरहसु झुकनो एक बॉडी लँग्वेज् हे. ये मुद्रा अहंकारको डायल्यूशन् हे. क्योंके मासीजीके मनमें ये भाव हतो के ''मैं कौन आपकु भेंट देवेवाली! पर भेंटको नज़राना तो मैं पेश कर सकूँ'' अपन् या बातकु अच्छी तरहसु समझ सके के अपने अहंकारकु ठाकुरजी मांगे, तो अपन् भी केह सके के

"ऐसे कहीं मांग्यो जाय हे! मैं आपकु नज़राना अपने अहंकारको पेश करूं." वो भाव हे "श्रीकृष्णः शरणं मम"के मंत्रमें. अपन् अपने अहंकारको नज़राना पेश कर रहे हें. मैं और मेरे रक्षणकी जिम्मेदारी और रक्षणको फल, इन तीनोंन्कु मैं इन्कार कर रह्यो हूं. वो तीनों मैं तेरे मान रह्यो हूं. मैं तेरो, मेरे रक्षणकी जिम्मेदारी तेरी और वाको फल मेरो नहीं होनो चहिये. जाकु तू फल मानतो होय के याकी रक्षा क्यों करनी, वाको जो भी कोई कारण होय वो भी तेरो.

वार्ता साहित्य पढ़ें, तो उनमें जिनके पास पैसा नहीं हे वाकु अकिंचन कह्यो जाय. यहां पैसाकी अकिंचनताकी बात नहीं हे. अपनी अहंताकु कोई भी रूपमें मैं अपनी प्रॉपर्टी मानके नहीं रखनो चाह रह्यो हूं. तोकु सौंप दे रह्यो हूं. मैं तोकु अनुकूल बनानो नहीं चाह रह्यो हूं, तेरे अनुकूल बननो चाह रह्यो हूं. दूसरे कोईकी मोकु अपेक्षा नहीं हे. **"विश्वासः प्रार्थनापूर्वम् आत्मरक्षाभरं त्वयि"** (न्यासदशक-२) ये मेरो विश्वास हे. मेरी प्रार्थना हे. अपनी रक्षाकी जिम्मेदारी मैं तोकु सौंप रह्यो हूं. ये प्रक्रिया अहंकारके डायल्यूशन्की हे. अहंकारकु पिघलावेकी प्रक्रिया हे. वाकु खतम करवेकी तोड़वेकी अथवा छोड़वेकी प्रक्रिया नहीं हे पर वाकु ऐसे अनुकूल बनावेकी प्रक्रिया हे. जाकु अपन् अपनो रक्षक मान रहे हें, वाके अनुकूल बनावेकी प्रक्रिया हे. याको नाम अपने यहाँ 'शरणागति' कह्यो जाय हे. अपनो अहंकार भक्तिमें साधक हे. ये अहंकार औपादानिक अहंकार नहीं हे, गुणधर्मात्मक अहंकार नहीं हे. ये फन्क्शनल् अहंकार हे और ये अपने अहंकारको सदुपयोग हे.

(ज्ञानमार्गमें शरणागति बाधक)

ज्ञानमार्गकी दृष्टिसु या तरहसु सोचनो अहंकारको दुरुपयोग हे. ये ही प्रकार ज्ञानमार्गकी दृष्टिसु दोष हे क्योंके वहाँ ये नहीं चाह रहे हें के मोकु तेरे अनुकूल होनो हे. वहाँ ये भी नहीं चाह

रहे हें के तोकु मेरे अनुकूल होनो हे. वहां ये चाह रहे हें के "मोकु तू बननो हे" "अहं ब्रह्मास्मि" "मैं ब्रह्म हूँ" ये ज्ञानमार्ग हे. "अहं ब्रह्मणो अस्मि" नहीं. जा बखत अपन् "अहं ब्रह्मणो अस्मि" केह रहे हें वा बखत ज्ञानमार्गमें याकी निंदा होवे. वो ऐसे के अभी तक तुम अपने लौकिक सम्बन्धन्के दास रहे हते. अब तुमने लौकिकता तो छोड़ दी पर वो आदत नहीं छोड़ी. या कारण तुम कोई देवताके नीचे रेहनो चाह रहे हो. ये अहंकार ज्ञानमें दोष हे.

(अहंकारकी साधकताके पहेलु, सहयात्रीसहिष्णुता और मार्गावलम्बन सु)

यालिए मैंने आपकु फन्क्शनल्की बात समझाई के कोई भी सदुपयोग या अनुपयोग या दुरुपयोग क्या हे, वो अहंकारकी दृष्टिसु निश्चित नहीं होयगो. अपन्कु पहले ये निश्चय करनो पड़ेगो के जो मार्ग या जो राह मैंने चुनी हे वामें वा प्रकारके अहंकारको प्रयोग साधक हे के बाधक हे. ज्ञानमार्गमें या प्रकारको प्रयोग बाधक हो जाय. क्योंके जब आप ऐसे सोच रहे हो के "मैं ब्रह्म नहीं हूँ, ब्रह्मको हूँ" मतलब आप ब्रह्मसु फासला निभा रहे हो. मानें तब आप ब्रह्म कैसे बनोगे, जो ब्रह्मको हे वो ब्रह्म कैसे बनेगो! वहाँ वो अहंकार आपकु तोड़नो पड़े हे. भक्तिमार्गमें या अहंकारकु संजोनो पड़े हे. ये मौलिक बात हे.

जब भक्तिमार्गमें या तरहसु अहंकारकु संजोके चल रहे हें, तो वा बखत इतनेसु काम नहीं चलेगो. क्योंके कोई भी मार्ग ऐसो नहीं हे के कोई भी मार्गपे कोई यात्री अकेलो जा सके. कोई न कोई तो साथ चहिये ही. अपन् कहे के कोई साथ नहीं हे, तो अन्तमें अपने ईश्वरकु तो साथ रखनो पड़ेगो. जो भी आपको ईश्वर हे. शैव हो तो शिव हे, शाक्त हो तो शक्ति हे, वैष्णव हो तो विष्णु हे, सौर हो तो सूर्य हे. कौन ईश्वर हे, सवाल

ये नहीं हे पर कोई न कोई ईश्वरकु तो अपनकु साथ रखनो ही पड़े हे. गुरु हे, गुरुभाई हे. यात्रामें तो कई हो सकें. सहयात्री तो हरमार्गमें कई तरहके हो सके. सबसु बड़ो अपनो सहयात्री भगवान् हे. पर वाके अलावा भी कई सहयात्री अपनकु रखने ही पड़े हें. अकेलो तो कैसे जायगो आदमी और कहाँ जायगो! अपन् स्टेशनपे भी जायें तो कुलीसु पूछे ही हें के डब्बा कहाँ आयगो! अकेले तो यात्रा कभी भी सम्भव नहीं हे. वो अहंकार अपने सहयात्रीकु चुभनो नहीं चहिये, ये सावधानी भी तो अपनकु रखनी पड़ेगी. ये सावधानी यदि आपने नहीं रखी, तो वो सहयात्रा आपके मार्गमें बाधक बनेगी क्योंके आप वाकु चुभ रहे हो, तो वो आपकु चुभनो शुरु करेगो. वो न चुभे यालिए आपकु अपने अहंकारकु वा तरहसु पॉलिश् करके रखनो पड़ेगो, जैसे नखकु अपन् कितनो काटें, जितनो कोईकु हाथ लगावेसु नख चुभे नहीं. कोईकु हाथ मिलावेमें दूसरेकु चोट लग जाय. बन्दर यदि हाथ मिलावे तो हाथमें खरौंच आ जाय. बन्दर शेर सबके ये हाल हे के हाथ मिलावे तो खरौंच आये बिना रहे नहीं. उनकु नख काटनो नहीं आवे. मनुष्यकु नख काटवेकी या लिए सूझी के अपने बहोत सारे व्यापार स्पर्शसु शुरु होवे हें. अपन् नहीं भी चाहते होंय, तो भी यदि अपने नख कोईकु चुभ रहे हें, तो काटके रखने पड़ेंगे. छोटे बच्चानकु आपने देख्यो होयगो. वे स्वयंको गाल खुरच लेवे हें और यालिए माँकु उनके हाथमें थेली पहरानी पड़े हे. उनकु कुछ समझ नहीं पड़े. स्वयं ही अपने नखसु घायल हो जाय हे. नख तो अपने हें पर उनकु अपन् तराशके रखें. वैसे ही अहंकार तो आनो हे और आनो हे ही पर वाकु थोड़ो अपन् तराश तो सके ही हें. अहंकारकु जड़सु नहीं काट्यो जा सकेगो. जैसे नखकु जड़सु नहीं काट्यो जा सके. पर वो अहंकार चुभतो भयो नहीं हो जाय, इतनी सावधानी तो आपसमें अपनकु रखनी पड़े हे.

मेरे दादाजीकी बात अचानक मोकु याद आ गयी. मेरे दादाजीकी एक शिष्या हती. दो साल दादाजीसु पढ़के वाने पी.एच.डी. करी. पी.एच.डी.में दादाजीको आभार मान्यो के दीक्षितजी महाराजने पढ़ायो. पर अपनी थीसीस्में महाप्रभुजीको खंडन कियो. अब दादाजीकु अंग्रेजी तो आती नहीं हती. वो खंडनवाली पुस्तक दादाजीकु भेंट करके गयी. दादाजी भी खुश हो रहे हते के चलो पढ़ाई भयी बच्ची पी.एच.डी. हो गयी. मैं तब-तक वहाँ पहुँच्यो और वो पुस्तक देखी. तब मैंने पुस्तक देखके दादाजीकु कही के "दादाजी आप तो खुश हो रहे हो पर ये तो महाप्रभुजीको खंडन कर रही हे और वामें आपको आभार मान रही हे." दादाजीने कही "ऐसो हो नहीं सके." मैंने कही के "आपकु पढ़के सुनाऊँ" और कुछ पॅसेज् सुनाये तो दादाजी इतने गुस्सा हो गये के केहवे लगे "मैं तोकु चीर दऊँगो, तू ऐसी बात कर रह्यो हे" और नाखूनसु मेरी जांघपे गहरी खरौंच मार दी. मैंने कही "दादाजी मैं थोड़े ही खंडन कर रह्यो हूँ. वो तो आपकी शिष्याने कियो हे और वामें वो आपको आभार भी मान रही हे" हमारे दादाजी महादेवजीको अवतार हते. घड़ीमें खुश हो जाते, घड़ीमें क्रोधित हो जाते. दादाजी जल्दीसु नख कटवाते भी नहीं हते. हाथ-पैरके लम्बे नख रखते हते. जब क्रोधित होते, तो नरसिंहजी जैसे प्रकट दिखते. चहेरा भी शेरकी तरह लगतो ही हतो, क्रोधमें पूरे नरसिंह अवतार. अब वो दादाजीके नख होंय या और मनुष्यके नख हों, उनकु नखर नहीं रहवे देनो चहिये. पर अपने अहंकारको जो नख हे, वाकी खासियत अपनूकु ये समझनी चहिये के वो जड़सु तो नहीं काट्यो जा सके. काटोगे तो अंगुली घायल हो जायगी. पर जो अंगुलीके आगे निकलते नख हे, उनकु काटके धार घिसके कोमल बनाके रखनो, अपने भी हितमें हे और दूसरेके भी हितमें हे. अहंकारकु कोमल बनानो अपने भी हितमें हे और दूसरेके भी हितमें हें. जब अहंकारकु नखर बना रहे हें, वा बखत कुछ-कुछ गड़बड़ होयगी ही. अपनूकु पता नहीं चले

के अपनूने कब गलतीसु अपने अहंकारसु दूसरेकु खरौंच लगा दी. खरौंच लगा दें वाके पहले अपने अहंकारकु थोड़ो संवारके घिसके सोफ्ट् बनाके रखें तो अंगुलीकी शोभा नखसु हे. कल्पना करो के नखके बिना अंगुली कैसी लगेगी? नखके साथ वो अंगुली अच्छी लगे. पर नखर नख होय तो अपनी आंख भी गलतीसु घायल हो जाय हे.

अहंकारकी दो आवश्यकताएं हें. वाके ऊपर दृष्टि रखवेकी दो प्रक्रिया हें. एक प्रक्रिया हे के जो राह अपनूने चुनी हे वा राहमें अपनूकु स्थित रखवेके लिए अपनो फन्क्शनल् अहंकार साधक हे के बाधक हे? जैसे ज्ञानमार्गमें वा तरीकेको अहंकार बाधक हे. ज्ञानमार्गको ''अहं ब्रह्मास्मि''को अहंकार भक्तिमार्गमें बाधक हो जायगो. भक्तिमार्गको जा तरीकेको फन्क्शनल् अहंकार हे, वो ज्ञानमार्गमें बाधक हो जायगो. ज्ञान-मार्गमें वर्णाश्रमके अभिमानकु छोड़्यो जायगो. क्योंके यदि आपकु वर्णाश्रमको अभिमान हे, तो आपकु ब्रह्मको बोध नहीं होयगो. मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं वैश्य हूँ, मैं शुद्र हूँ, मैं ब्रह्मचारी हूँ, मैं गृहस्थ हूँ, मैं संन्यासी हूँ. या तरीकेको अहंकार यदि आप पाल रहे हो वाको अर्थ ये निकलेगो के आप ब्रह्म नहीं हो. पर जब ''मैं ब्रह्म हूँ'' ये सोचनो हे, तो ब्रह्म या तो सब कछु हे या कुछ भी नहीं हे. स्वरूप-दृष्टिसु तो ब्रह्म कुछ भी नहीं हे. लीला-दृष्टिसु ब्रह्म सब कुछ हे. ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ब्रह्मचारी संन्यासी शेर कुत्ता सूअर सभी कुछ ब्रह्म हे. आपकी वो तैयारी हे के स्वयंमें और सूअरमें भेद नहीं समझते होओ, तो आप सच्चे ज्ञानमार्गी. ब्रह्म तो कुछ भी अवतार ले सके. वाकु लीलया कुछ भी होवेमें परहेज नहीं हे. स्वरूपत: ब्रह्म कुछ भी नहीं हे, खाली आत्माराम हे. यालिए या तरीकेको वर्णाश्रमको अहंकार जो अपने लौकिक अहंकारको फन्क्शनल् कॅरेक्टर् हे, वो कॅरेक्टर् ''मैं ब्रह्म हूँ'', ऐसो सोचवेमें बाधक होवे हे. कर्ममार्गमें ये ही

कॅरेक्टर् साधक होवे हे.

(स्वाभाविक कर्ममूलक अहंकृति)

क्योंके भगवान् गीतामें स्पष्ट आज्ञा कर रहे हें के "**स्वभावप्रभवै: गुणै:**" (भग.गीता १८।४१) जितने भी वर्णाश्रमके धर्म हें, वे मनुष्यके वा तरीकेके स्वभावके कारण पैदा होते भये धर्म हें. क्योंकि ये स्वभाव हे, तो ये मेरो धर्म हे और ये स्वभाव नहीं हे, तो ये मेरो धर्म नहीं हे. जैसे गीतामें भगवान् कहे हें के "**न तद् अस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुन: सत्त्वं प्रकृतिजै: मुक्तं यद् एभि: स्यात् त्रिभि: गुणै:**" (भग.गीता १८।४०) न तो या पृथ्वीमें, न ऊपरके स्वर्ग लोकनमें, कोई भी ऐसो व्यक्ति हे के प्रकृतिके तीन गुणनसु मुक्त होय? सब जननकु प्रकृतिके गुण तो नियंत्रित कर ही रहे हें. यालिए भगवान् आगे आज्ञा कर रहे हें के "**ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्राणां च परन्तप! कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवै: गुणै:**" (भग.गीता १८।४१) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के कर्म क्यों अलग-अलग हें? क्योंके उनके स्वभाव अलग-अलग हें. जब तुम्हारो स्वभाव अलग हे तो तुम्हारे कर्म अलग होंयगे ही. जैसे पृथ्वीको स्वभाव हे ठोस होवेको, तो वाके कर्म अलग हे. जलको स्वभाव हे बहवेको, तो वाके कर्म अलग हो जायेंगे. पृथ्वी बहवे लग जाय तो सत्यानाश हो जायगो. जल अटक जाय तो सड़ जायगो. जाके जो स्वभाव हे, वा स्वभावके कारण जो कर्म पैदा हो रहे हें, वाके वे स्वाभाविक कर्म हें. जाको जो स्वभाव नहीं हे, वासु जो कर्म पैदा हो रहे हें वे अस्वाभाविक हें.

वाके बाद भगवान् आज्ञा कर रहे हें, अपन् अरीसा देखें तो खबर पड़े. हम ब्राह्मणनूकी एक खासियत हे के हम सबकु अरीसा दिखावें, खुद कभी अरीसा नहीं देखें. आप लोगनकु शायद पता नहीं होयगी के पुराने जमानामें ऐसो नियम हतो के बड़े लोग

जब होली खेल लें और रंगसु रंग-बिरंगो उनको चेहरा होय, वा बखत नाई आके उनकु अरीसा दिखातो और वाकु शकुनके पैसा देने पड़ते. नौजवानने वो रीति नहीं देखी होयगी. पर पुरानी पीढ़ीकु जरूर ये बात याद होयगी. ऐसे हम ब्राह्मणनूकी भी नाइयनूके जैसी एक आदत हे के सबकु चेहरा धर्मके विधि-विधानमें हम दिखाते रहें पर स्वयं देखनो भूल जायें. ठाकुरजीकु ये समस्या नहीं हे यालिए वो ब्राह्मणकु भी अरीसा दिखा रहे हैं के देख लो अरीसामें के तुम्हारो चेहरा कैसो होनो चहिये. ठाकुरजी ब्राह्मण नहीं हे यालिए. ब्राह्मण होते तो पक्ष लेते ब्राह्मणको. ऐसो अन्याय नहीं करते. **''शमो दमः तपः शौचं क्षान्तिः आर्जवमेव च ज्ञानं विज्ञानम् आस्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्''** (भग.गीता १८।४२) खतरनाक आरसी दिखा दी ब्राह्मणनूकु. *बंद कर दास्तां शकील अपनी, सुननेवालोंके दिल दहलते हें.* 'शम-दम' मानें मानसिक शारीरिक शान्ति. 'तप शौच' मानें सहन करवेकी क्षमता. वाके बाद 'आर्जव' मानें कठोरता नहीं मृदुता. ज्ञान विज्ञान और आस्तिक्य, ये तो ब्राह्मणके स्वभावसु कर्म हें. अब ऐसो ब्राह्मण खोजवे कहां जायें. कहीं मिले ऐसो ब्राह्मण? भगवानूने तो हम सब ब्राह्मणनूकु आरसी दिखा दी. ये तो प्रारंभिक स्वभावकी अवस्था हे, धर्म तो बादकी कथा हे. बड़ी क्रूरता कर दी अपने साथ. जैसे बच्चाको रोनो स्वभाव हे, ऐसे ही ब्राह्मणको ये स्वभाव हे. अरे! महाराज, जुलाब लगा रहे हो व्यर्थमें. ये स्वभाव लानो कहाँसु!

''शौर्यं तेजो धृतिः दाक्ष्यं युद्धे चापि अपलायनं, दानम् ईश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्'' (भग.गीता १८।४३) जो क्षत्रिय हे वामें शूरवीरता होयगी, वामें तेज होयगो. क्षत्रिय होवेके अहंकारको तेज वाके चेहरापे चमकतो होयगो. 'धृति' मानें धीरजवालो होयगो, 'दाक्ष्यं' मानें दक्षता होयगी और 'अपलायनम्' युद्धमें भागवेकी वृत्ति नहीं होयगी. शायद ये अर्जुनकु आरसी दिखा रहे हें. 'दान' मानें देवेकी वृत्ति. 'ईश्वरभावश्च' शासन करवेकी वृत्ति, ये क्षात्रके स्वभावसु कर्म हें.

"**कृषि-गोरक्ष्य-वाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजं, परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्**" (भग.गीता १८।४४) कृषि वाणिज्य और गौरक्षा, ये वैश्यको स्वभावसु प्राप्त कर्म हे और परिचर्या करनो शूद्रको स्वाभाविक कर्म हे.

(स्वाभाविक कर्मको योजन भगवदर्थ)

वाके बाद भगवान् केह रहे हें के "**स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः स्वकर्मनिरतः सिद्धिं तथा विन्दति तत् शृणु**" (भग.गीता १८।४५) अपने कर्ममें निरत रहके जो तुमकु सिद्धि मिलेगी वाको प्रकार कैसो होयगो? अब देखो भगवान् या बातकु कैसे समझा रहे हें! "**यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन सर्वम् इदं ततं स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः**" (भग.गीता १८।४६) जासु ये भूतन्की प्रवृत्ति हो रही हे मानें ये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अथवा मनुष्येतर जो जीव हें, जाके कारण अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त हो रहे हें और वो सबमें व्याप्त हे, वाकी तुम अपने कर्मसु अर्चना करो. अपने कर्मकु निभाते भये यदि वाकी अर्चनाको तुम्हारो भाव हे, तो आपकु सिद्धि मिलेगी. पाछी दो बात आयीं वो देखो. यदि अपने कर्मकु तुम अपने अहंकारसु निभा रहे हो, तो सिद्धि मिलवेमें संशय हे पर यदि अपने कर्मकु वाकी अर्चनाके भावसु निभा रहे हो के ये मेरे स्वभावसु प्राप्त जो कर्म हे वासु सिद्धि प्राप्त हो सके. थोड़ोसो याको विस्तार करके देखो. स्वभावसु प्राप्त मोकु आहार निद्रा हे. वे सब पशुस्वभावसु तो मोकु प्राप्त हे ही. ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्वभाव सु प्राप्त भी कुछ हे, वो थोड़ो ॲडवान्समॅन्ट् हे. पर आहार निद्रा भय मैथुन ये पशु स्वभावसु अपन्‌कु प्राप्त हे. वो भी अपने स्वभावको अहंकार रखके नहीं पर भगवान्‌की अर्चनाके रूपमें यदि अपन् कर रहे हें, तो सिद्धि मिल सके हे. जा बातकु महाप्रभुजी निरोधलक्षणमें समझा रहे हें "**...संकल्पादपि तत्रहि, दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं.....; यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न**

दृश्यते, तदा विनिग्रहः तस्य कर्तव्यः इति निश्चयः, नातः परतरो मन्त्रो'' (नि.ल.१७-२०) **यासु बड़ो कोई** मन्त्र नहीं हे. मानें अपने स्वभावसु जो **कर्म** हे, वा **प्राप्त कर्मकु** अपने अहंकारसु निभावेके बजाय भगवदर्थ निभाओ. अपने अहंकारसु प्राप्त होते **कर्मनकु अहंकारकी सन्तुष्टिके** लिए निभावे के वाकी पूजाके लिए निभाने? गीताको प्रोग्राम् क्या हे वो ध्यानसु समझो. वे सब **कर्म** अपनकु अहंकारसु प्राप्त हें **पर वासु** अपने अहंकारकु सन्तुष्ट नहीं करके वाकी पूजाके लिए निभानो हे, तो सिद्धि मिलेगी. जब अहंकारकी सन्तुष्टिके लिए निभाओगे, तो महाप्रभुजी कहे हें के **''शास्त्रार्थ जीत्यो सो तो भली करी पर अहंकार मति करियो. अहंकार जा वस्तुको कर्यो सोई वस्तुको नाश होयगो.''** महाप्रभुजीके या वचनामृतमें गीता कैसे बोल रही हे, वो देखो. **'स्वकर्मणा..'** 'स्व'में पाछो अहंकार आयो. **''स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः''** ये अपने अहंकारके ट्रीटमॅन्ट्की मॅनेजमॅन्ट्को प्रोग्राम् हे. मानें अनुपयोग नहीं करनो हे, दुरुपयोग नहीं करनो हे पर वाको सदुपयोग करनो हे. जाकी मैंने दो गाइडलाइन् आपकु बतायी के जो मार्ग अपनने चुन्यो हे वा मार्गमें अपनो अहंकार बाधक न हो जाय और अपने सहयात्रीनकु सहमार्गीनकु नखर बनके चुभवे नहीं लग जाय.

एक बहोत बड़े विचारककी एक सूक्ति हे. वो यों कहे हे के ''मैं ग्रुपके आगे नहीं चलनो चाहूँ क्योंके आगे चलूँगो तो अहंकार आ जायगो. पीछे क्यों नहीं चलनो चाहूँ क्योंके कोई खड्डामें पड़ेगो तो मैं भी खड्डामें पडूँगो. मैं तो साथ चलनो चाहूँ'' आगेवाली गाड़ी खड्डामें जा रही हे के टकरा रही हे कोईसु, ये पीछेवाली गाड़ीकु क्या पता! यदि आगेवाली गाड़ीके बेतहाशा पीछे दौड़ावे अपनी गाड़ीकु, तो ॲक्सीडॅन्ट् होवे. क्योंके आगेवाली गाड़ीपे अपनो कोई कंट्रोल् तो हे नहीं. बम्बईमें सात गाड़ी एक-दूसरेसु टकरा गईं. पीछेवालेकु पता क्या चले के आगे क्या हो रह्यो हे! पीछे चलवेमें

ये खतरा हे. आगे चलवेमें व्यर्थमें अहंकारको खतरा हे. उन दोनोंनूसु बचवेके लिए वो विचारक कहे हे के "न तो आगे चलूंगो, न पीछे चलूंगो. अपन् सब साथ चलेंगे" "**हली-मलीने चालिया चरणाट ज्यां निज धाम नवरंग नागर प्रकटिया मन पूरवा बहु काम**" (वल्लभाख्यान-२) ये महाप्रभुजीके लिए कही भयी बात हे. अजगरकु देखके महाप्रभुजीकु चिंता भयी हती क्योंके आगे चलवेवालेकी गति अजगरकी हो सके. यासु महाप्रभुजीने शिष्य नहीं बनाके ठाकुरजीकी सेवाके लिये सेवक बनाये, स्वयंकी सेवाके लिए नहीं. अपने यहां शिष्य बनावेको गुरुत्व नहीं हे. ठाकुरजीके सेवक बनावेको गुरुत्व हे और सेवक वे स्वयंकु भी केह रहे हें "**इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः**", "**सेवको अहं नच अन्यथा**" (अन्त.प्र.१०,७) अन्तःकरण-प्रबोधमें केह रहे हें, "मैं सेवक हूं." स्वयं भी सेवक हें और सेवक होके सेवक बना रहे हें. गुरु बनके शिष्य नहीं बना रहे हें. हमकु महाप्रभुजीके वंशज होवेके कारण गुरुसु भी ऊँची पुरुषोत्तम होवेकी पदवी अच्छी लगे हे. वो कथा अहंकारकी भ्रांतिकी कथा हे. वा कथाको पुष्टिमार्गकि साथ कोई सम्बन्ध नहीं हे. श्रीपुरुषोत्तमजीने तो खुलासा कर दियो हे के "**स्वस्मिन्नेव एतन्मार्गीयगुरुत्वं नियच्छन्तः आहुः तदभावे स्वयं वापि**" (त.दी.नि.आ.२।२२८) पर मनमेंसु वो बात निकले नहीं हे. ऐसी बल जाय तो भी एंठन तो रेह ही जाय हे हम लोगनमें. वो अहंकारकी कथा हे. जो राणाव्यासकी व्यथा हे, वो हमारी भी व्यथा हे. वो आपकी भी व्यथा हे. कथा अलग-अलग हे पर व्यथा सबकी एक ही हे. अहंकार मॅनेज् नहीं हो रह्यो हे. अहंकारको ऐसो तूफानी बंदर हे के वो मॅनेज् नहीं होवे. "**स्वकर्मणा तम् अभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः**"

(अस्वाभाविक कर्मकी दोषरूपता)

वाके आगे भगवान् आज्ञा करे हें के "**श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषम्**" (भग.गीता १८।४७). जो तुम्हारो स्वधर्म हे, जो तुमकु स्वाभाविक रूपमें धर्म लग रह्यो हे वो यदि तुमसु थोड़ो नहीं निभ्यो तो भी कोई बुरी बात नहीं हे, पर तुम्हारे अहंकारसु जो धर्म तुमकु नहीं लग रह्यो हे, वो धर्म तुमने अच्छी तरहसु कियो, वो बुरी बात हे. क्योंके वो तुम्हारे स्वाभाविक अहंकारसु तो उत्पन्न नहीं हो रह्यो हे. तुम्हारे स्वाभाविक अहंकारसु जो धर्म उत्पन्न हो रह्यो हे वो विगुण होवेपे भी श्रेयस्कर हे और परधर्म जो तुमने परफॅक्ट् कियो वो अश्रेयस्कर हे. जैसे झारी यों धरनी तो यों ही धरनी. बंटा यहां रखनो, तो यहां ही रखनो. वो सब अपने परधर्मके अहंकारसु निकलती भयी विधि हे. "हमने सेवाकी विधि पढ़ी हे. हम भगवदीय हें, झारीको ॲन्गल् ये होनो चहिये." ये सब फन्क्शनल् अहंकारनुकी फजीहत हे. परधर्म एकदम बराबर निभायो पर यदि स्वाभाविक धर्मकु अच्छे अथवा बुरे प्रकारसु निभायो, तो तुमकु पाप तो नहीं लगेगो. क्योंके वो तुम्हारो स्वाभाविक धर्म हे. तुम्हारो फंक्शनल् अहंकार हे, वो तो स्वयं विकृत हे. वाके कारण तुम जो परधर्मको अनुष्ठान बड़े अच्छे ढंगसु कर रहे हो, वामें कुछ न कुछ खतरा तो रहेगो ही.

(सदोष सहजकर्मकी महत्ता)

याके लिए भगवान् अन्तमें केह रहे हें के "**सहजं कर्म कौन्तेय! सदोषमपि न त्यजेत् सर्वारम्भाहि दोषेण धूमेन अग्निरिव आवृताः**" (भग.गीता १८।४८) जो तुम्हारे सहज कर्म हें, 'सहज' मानें के जा स्वभावकु लेके तुम पैदा भये हो, वा स्वभावके कारण वो कर्म भी पैदा हो रह्यो हे. "सहजायते इति सहजः" अपने साथ पैदा

भयो हे या लिए वो सहज हे. जो सहज कर्म हे, वो सदोष होय तो भी मत त्यागो. क्योंकि "**सर्वारम्भाहि दोषेण धूमेन अग्निरिव आवृता:**" कोई भी चीजकु यदि तुम शुरु करोगे तो वो कुछ तो धुआँ छोड़ेगी. जब भी कोई आग जलाओगे तो कुछ धुआँ तो निकलेगो ही. जब-तक लकड़ामें थोड़ीसी भी नमी हे और आग जलायेंगे तो धुआँ निकले ही हे. जब पूरी नमी खतम हो जायगी तब वो लकड़ी धुआँ छोड़नी बंद करेगी. अपनेमें जो नमी हे वो आगको विरोधी धर्म हे. लकड़ा ज्वलनशील हे, ज्वलनशीलमें नमी नहीं होनी चहिये. पर वो हे ही ऐसो के पैदा ही नमीमें हो रह्यो हे. वामें जब आग लगाई जाय, तो सबसु पहले लकड़ा अपनी नमीकु उड़ा दे. जब सारी नमी उड़ जाय, वाके बाद वो धुआँ छोड़नो बंद करके शुद्ध आग बन जाय. ऐसे जितने भी आरम्भ = इनीशियेटीवमें कुछ न कुछ दोष तो होयगो ही. जैसे अपन्ने संस्कृत बोलनो आरम्भ कियो तो कुछ तो व्याकरणके दोष आयेंगे ही. यदि आप डर रहे हो के व्याकरणके दोष नहीं आने चहिये, तो आप बोल ही नहीं पाओगे. संगीत गानो शुरु कियो हे तो कुछ बेसुरे सुर तो लगेंगे ही. यदि आप डर रहे हो के कहीं बेसुरो सुर न लग जाय, तो आपकु गाना गानो आवेवालो नहीं हे. यदि आपने खिचड़ी बनानो शुरु कियो हे, तो कोई न कोई चीज वामें कम अधिक पड़ेगी ही. पांच-दस बार जब-तक आप बनाके देख न लो तब-तक सही अनुपात क्या होनो चहिये वो समझमें नहीं आवे. "**सर्वारम्भाहि दोषेण**" जब साइकल् चलानो शुरु कियो हे, तो एक-आध बार घूटन छिलेगो ही. यदि अपन् सेवा करवे भी बैठे तो ये सब प.भ., पू.पा., पा.पी. अपनूकु डरावें के तुम सेवा कर रहे हो तो ठाकुरजीकु परिश्रम हो जायगो. अरे भई! परिश्रम तो होयगो ही. ये तो ठाकुरजीने भी स्वीकार कियो हे और या कारणसु ही तो पुष्टि करी हे. उतनो परिश्रम स्वीकारवेकी तैयारी प्रभुकी नहीं होय, तो प्रभु पुष्टि करे ही नहीं. पुष्टि करवेको अर्थ ही ये हे के तुम मोकु थोड़ो

बहोत परिश्रम दोगे स्वभावसु, वो मैं लेवेके लिए तैयार हूँ. क्योंके तुमने समर्पण कियो हे, यालिए मैं उन दोषनकु नहीं मानूँगो, वो पुष्टि हे. "**ब्रह्म-सम्बन्ध-करणात् सर्वेषां देहजीवयो: सर्वदोष-निवृत्तिर्हि दोषा: पंचविधा: स्मृता: सहजा देशकालोत्था लोकवेद-निरूपिता: संयोगजा स्पर्शजाश्च न मन्तव्या: कथञ्चन. अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्ति: कथञ्चन**" (सि.र.२-३) भगवान्ने तुम्हारे इतने दोषनकु तो मानके ही तुम्हारो अंगीकार कियो हे. जाकु अंग्रेजी भाषामें As it is where it is जानके स्वीकार कियो हे. जैसे तुम हो, जहाँ तुम हो, वहाँसु, वैसे ही तुमकु पकड़ रह्यो हे. जो भी तुम्हारे दोष हें, उनके साथ तुमकु स्वीकार कर रह्यो हे. अहमदाबादवाले महाराजकु कामवनमें गोकुलचन्द्रमाजीके चरणस्पर्श नहीं मिलते हते. उनकु बड़ी इच्छा हती. उनने कामवनवाले महाराजकु बात करी के "हम ब्रज आ रहे हें. हमकु गोकुलचन्द्रमाजीके दर्शन मिलेंगे क्या?" कामवनवाले महाराजने कही के "चरणस्पर्श तब मिलेंगे जब हमारे घरमें एक कानी लड़की हे वासु तुम विवाह करो." अहमदाबादवाले महाराज कानी लड़कीसु व्याह गये. उनके पिता घरमें बंदूक लेके बैठ गये के "मेरे घरको अपशकुन कियो, कानी बहु लाके. अभी दोनोंकु शूट कर दऊँ." हमारे तातजी महाराजने बीचमें पड़के समाधान कियो. "भई! वाने कानी लड़कीसु शादी क्यों करी, वाको कारण तो देखो!" "**सर्वारम्भाहि दोषेण**" कानी लड़कीसु व्याहवेमें अपशकुन तो भयो. पर गोकुलचन्द्रमाजीके दर्शनके लिए वो भी स्वीकार कियो. अब तो कोई अपशकुन नहीं मानें पर पुराने जमानेमें यदि घरसु बाहर निकलें और कोई कानो दिख जाय, तो पाछे घरमें घुस जाते. आज तो वो बात नहीं हे. अब कानी बहु लानो तो कितनो बड़ो अपशकुन! पर उनकी ठाकुरजीके प्रति भक्ति हती के चरणस्पर्श मिलने चहिये. अब बहु कानी हे, तो कानी सही. कोई भी चीजको आरम्भ करोगे तो वामें कुछ दोष तो होयगो ही. इतने दोषकु तो वो स्वीकार करके चले हें, कानी बहुकी तरह. अपन् काने हें तो क्या हे, अपन्पे उनकी पुष्टि

तो भई हे न! अपनेसु भक्ति लेवेको भी उनने स्वीकार्यो हे तो अपन् उनकु मंजूर होंयगे. ठाकुरजीकु काणेको अपशकुन नहीं लगे. अपन् पूछ तो नहीं सके ठाकुरजीसु. पर समझो पूछ्यो होतो के "जब आप गाय चरावे पधारते हते तो कोई काणो दिखवेके बाद वापस घर पधारते हते के नहीं?" ठाकुरजी कहते के "नहीं. मोकु वाको अपशकुन नहीं लगे" ठाकुरजीने जापे पुष्टि करके स्वीकार्यो वाको काणेपनको दोष आप नहीं विचारे हैं.

(क्रियात्मक अहंकारको सदुपयोग भक्तिमार्गमें)

यासु उपनिषद् कहे हे "**अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते ततो भूयइव ते तमो यः उ विद्यायां रताः**" (ईशोप.९) जो ब्रह्मकु विद्या और अविद्या दोनोंसु सहयुक्त मानें हे के ब्रह्मके पास पहुँचवेमें विद्या भी कामकी हे और अविद्या भी कामकी हे. प्रश्न अविद्या अथवा विद्या को नहीं हे. प्रश्न ये हे के हमकु ब्रह्मके पास पहुँचनो हे. वाके पास पहुँचवेमें यदि अविद्या काम आती होयगी तो हम अविद्या काममें लेंगे. विद्या काम आती होयगी, तो विद्या काममें लेगे. अविद्या तो सहज हे हमारे लिए थोड़ी विद्या भी सहज हे. भगवान्ने हमारे भीतर थोड़ी जानवेकी शक्ति भी रखी हे और बहोत सारी बातन्की जानकारी अपन्कु नहीं भी होवे. वो अविद्या-शक्ति भी रखी हे. समझो के विद्याके कारण अपनी एक आंख हे और अविद्याके कारण एक आंख नहीं हे, तो अब अपन् काणे भये के नहीं? अविद्या भी रखी हे और दूसरी आंखमें विद्या सभी रख दी. हम काणे हें पर तेंने हमकु स्वीकार कर्यो हे. हम तो काणी आंखसु भी तेरे पास आयेंगे. ये जो भाव हे के "**विद्यां च अविद्यां च यः तद् वेद उभयं सह, अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतम् अश्नुते**" (ईशा.उप.११) वाकी अविद्यासु वो मृत्युकु लांघ जायगो और विद्यासु अमृतताकु प्राप्त होयगो. ये बात प्रकट होवे जब के विद्या और अविद्या दोनोंनकु अपनो मानके ब्रह्मके लिए

दोनोंनुको प्रयोग करनो. ये होवे हे जब ब्रह्म अपनेमें अपनी पुष्टि-शक्ति प्रकट करतो होय, तो ब्रह्ममें इतनी ममता जगे. ब्रह्मके साथ अपनी रति प्रकट होवे. वा रतिके कारण अपनकु न अपनी विद्याको ख्याल आवे हे और न अपनी अविद्याको ख्याल आवे हे. अपनेकु केवल ब्रह्मको ख्याल आ रह्यो हे. हमारी अविद्या हे तो हे. हमारे पास विद्या हे तो हे. हमकु हमारी विद्या-अविद्याको खोटो दैन्य नहीं हे और खोटो अहंकार नहीं हे. तेरे काम जो भी चीज आती होय, वो सब मैं करवेकु तैयार हूँ. तेरेमें रति बढ़े, बस वो वस्तुकु हम वापरेंगे. वाको नाम 'पुष्टिभक्ति' हे. यहां जाके देखो के अहंकार कैसे डाइल्यूट् हो रह्यो हे! अहंकारकु छोड़्यो नहीं जा रह्यो हे. ये अहंकारको एक प्रॉपर् भक्तिमार्गीय फंक्शन् हे और फंक्शनल् अहंकारको सदुपयोग हे.

(क्रियात्मक अहंकारको सदुपयोग ज्ञानमार्गमें)

जैसे अपने कर्म और भक्ति मार्गमें हे, ऐसे ही फंक्शनल् अहंकारको उपयोग ज्ञानमार्गमें भी हो सके हे. पर ऐसे फंक्शनल् अहंकारको उपयोग यदि आपने ज्ञानमार्गमें कियो, तो वो वाको दुरुपयोग हो जायगो और ज्ञानमार्गमें जो ''अहं ब्रह्मास्मि''को फंक्शनल् अहंकार हे जाकु श्रीशंकराचार्य बहोत मीठे शब्दनुमें कहे हें के ''**न भूमिः न तोयं न तेजो न वायुः न खं न इन्द्रियं वा न तेषां समूहः अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धः तदेको अवशिष्टः शिवो अहं शिवो अहम्**'' (दशश्लो.१) ये फंक्शनल् अहंकार हे ज्ञानमार्गको. ये ज्ञानमार्गमें साधक हे. ''न तो मैं पृथ्वी हूँ, न मैं जल हूँ, न मैं तेज हूँ, न वायु हूँ, न मैं आकाश हूँ '' अपनो शरीर पंचमहाभूतसु गढ्यो भयो हे. कभी डी-हाइड्रेशन् हो जाय, ज्यादा दस्त हो जाय. सूखी हवामें चले जाओ तो चमड़ी फटवे लगे. गीली हवामें चले जाओ तो चमड़ीमें दाद हो जाय. कभी तेज बढ़ जाय. कभी कुछ बढ़ जाय, कभी कुछ घट जाय. स्थिरतासु तो वो रहवे नहीं हे. कभी

कोई आदमी काणो हो जाय, अंधो हो जाय, तो लकड़ी टेकके चलवे लग जाय. "**अनैकान्तिकत्वात्..**" श्रीशंकराचार्य केह रहे हैं के मेरो स्वरूप सुषुप्तिको हे, जामें मोकु मेरे होवेमें न देहको, न इन्द्रियको भान होवे. न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र होवेको भान होवे हे. न बाप होवेको, न बेटा होवेको भान होवे. "**अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धः तदेको अवशिष्टः**" उन सबमें जो बच जाय हे वो शिव मैं हूँ. ये ज्ञानमार्गको फंक्शनल् अहंकार हे. ज्ञानमार्गमें साधक हो रह्यो हे.

(मार्गानुरूप अहंकारकी साधकता-बाधकता)

भक्तिमार्गमें ये बाधक हो रह्यो हे क्योंके भक्तिमार्गमें अपन् समर्पण कर रहे हैं. पंचमहाभूत इन्द्रिय चार अन्तःकरण और पंच-प्राण के त्यागकी अपन् नहीं सोच रहे हैं. इनको समर्पण अपन् सोच रहे हैं के ये प्रभुकी तरफसु मोकु मिले हैं यासु प्रभुके काममें ही इनकु लानो हे. उनके काममें लावेके लिए मोकु इनमें थोड़ोसो अहंकार रखनो पड़ेगो के ये मेरो देह मेरे प्रभुके काममें आवे, ये मेरी आंखे प्रभुकु निहारवेके काममें आवे. जा बातकु श्रीमहाप्रभु निरोधलक्षणमें समझा रहे हैं के मेरो पुत्र मेरे प्रभुसेवाके काममें आवे. ये मेरो घर प्रभुके बिराजवेके काममें आवे. इन्द्रियकु सन्तुष्ट करवेके लिये नहीं परन्तु प्रभुके काममें आवे और निरुद्ध होवे वाके लिए अपने अहंकारकु अपन् रख रहे हैं. अपने यहाँ ज्ञानमार्गीय अहंकार बाधक हे. भक्तिमार्गमें ये अहंकार साधक हो रह्यो हे. ये मैं आपकु समझानो चाह रह्यो हूँ के कुछ फंक्शनल् अहंकारको स्वरूप हे, वाको दुरुपयोग कब होयगो के जब या भक्तिमार्गीय अहंकारको आप ज्ञानमार्गमें उपयोग कर रहे हो, तो वाको दुरुपयोग हो गयो. ज्ञानमार्गीय अहंकारको उपयोग यदि भक्तिमार्गमें कर रहे हो, तो वाको ये दुरुपयोग हो गयो. ज्ञानमार्गीय अहंकारको ज्ञानमार्गमें उपयोग कर रहे हो तो सदुपयोग हो गयो. भक्तिमार्गीय फंक्शनल् अहंकारको उपयोग यदि भक्तिमार्गमें

कर रहे हो, तो ये वाको सदुपयोग हो गयो. वैसे ये कथा दूसरी हे कि ज्ञानमार्गमें भी थोड़ोसो फंक्शनल् अहंकार स्वीकार्यो गयो हे, 'प्रसक्तप्रतिषेध' न्यायेन बाधार्थ चेतनामें अहंकारको मिथ्यारोप लगायो जावे हे.

(अस्वाभाविक अहंकारकी कथा)

आपकु एक उदाहरण दऊँ, तो बात बिल्कुल स्पष्ट हो जायगी. अर्जुनकी जो समस्या हती महाभारतमें, कृष्णने तो नहीं कही हती के महाभारत करो. कृष्ण तो बल्कि पांडवन्की ओरसु दुर्योधनकु समझावे गये हते के पांच गांव दे दो तो युद्ध टल जायगो. सारो तो नहीं मांग रहे हें. दुर्योधनने कही के पांच गांव छोड़, पांच कदम भी नहीं दऊँगो. कृष्णके साथ ज्यादती करनी चाही जो दूतके साथ करनी नहीं चहिये. कृष्णने वाके बाद कोई और सुझाव नहीं दियो. वो तो द्वारकामें बैठे हते. अर्जुन वहां आके चरणकी तरफ बैठ गयो. दुर्योधन आके मस्तककी तरफ बैठ गयो. दोनों ही कृष्णसु सहयोग मांगवे आये हते. कृष्णकी तटस्थता देखो के आंख पहले खुली, तो अर्जुन दीख्यो. दुर्योधनने कही के "मैं तो यहाँ पहलेसु बैठ्यो भयो हूँ" कृष्णने पूछी के "क्या चक्कर हे" दोनोंन्ने कही के हमारो युद्ध होवेवालो हे, आपको सहयोग वामें चहिये. उनने कही के "तुम दोनों आये हो, तो दोनोंन्कु कैसे सहयोग दऊँ." कृष्णने सुझाव धर्यो के "एक मोकु चुन ले और दूसरो मेरी सेनाकु चुन ले" दुर्योधनकु तो युद्ध-उत्साह इतनो हे के वाने कही के "ठीक हे तुम नहीं आओ तो चलेगो पर तुम्हारी सेना हमारे साथ आ जाय तो हमारो सैन्य-बल अधिक हो जायगो" वहां अर्जुनने कही के "ठीक हे सेना नहीं मिली तो न सही पर आप मेरे साथ आ जाओ" अब अर्जुनकु और फंसायो के "मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगो" शस्त्र उठावेको अर्थ के मेरी सेनाकु मैं मारूं. अरे! शस्त्र नहीं उठाओगे तो युद्धमें जाके करोगे क्या! वहां क्या चना-चिड़वा

खावेके लिए जानो. अर्जुनने सुझाव दियो के "सारथी बन जाओ." तो सारथी बन गये. अब कोई कृष्ण थोड़े ही गये हते युद्धकी बात करवे! अर्जुन वहाँ आयो हतो. अब कृष्ण परब्रह्म हे, परमात्मा हे, वा तथ्यकी बात मैं नहीं कर रह्यो हूँ. स्टोरीकी बात कर रह्यो हूँ. स्टोरीके लेवलपे तो कृष्णकु युद्धमें अर्जुन ले गयो. युद्धमें घसीटके ले जावेके बाद तुम केह रहे हो के "मैं भाग जानो चाह रह्यो हूँ. अब मैं मर जानो चाह रह्यो हूँ." "अरे! तो मोकु यहाँ क्यों बुलायो?" अब कृष्ण गीता नहीं कहे तो क्या कहे बेचारो? वो क्या करे वा स्थितिमें? एक तो बुलायो युद्धमें रथ चलावेके लिए और अब केह रहे हो के "आप चलाओ मैं तो भाग रह्यो हूँ." अब बताओ के कृष्ण कहाँ जाय! सेना तो सब कौरवन्में चली गयी, अब मैं कहाँ जाऊँ, बहोत ही भयंकर डायलेमा हे. यासु भगवान्ने गीता समझा दी.

ऐसी ही एक स्थितिकी एक कथा और हे. एक शास्त्रीजी भागवत-कथा करते हते. भागवत करते उनकु भाव जग गयो के मेरी पत्नी मेरी माँ हे. अरे यदि माँ ही माननी हती तो शादी क्यों करी? पत्नी भागवत-सप्ताह छोड़के प्रजापति ब्रह्मकुमारीमें आबू चली गयी. वाने कही "तुम ढोंगी हो. यदि माँ ही माननी हती, तो फिर शादी क्यों करी! और शादी करी, तो माँ कैसे मान सको" ये सब फंक्शनल् अहंकारके डांवाडोलके कारण होवे. बैठे-बिठाये भागवत-सप्ताहमें एक भाव जग गयो के स्त्रीकु माँ माननो. अरे! परस्त्रीकु मातृवत् देखवेकी बात कही हे, स्वयंकी स्त्रीके लिए थोड़े ही कह्यो हे! पत्नी बेचारी वाकु बेटा कैसे माने? समस्या ये हे. यालिए वो ब्रह्मकुमारीमें चली गयी. अहंकारके मिस्-मॅनेजमॅन्ट्सु ऐसे भयंकर उपद्रव होवे. जो अर्जुनके साथ भयो, भागवत-सप्ताह करवेवाले शास्त्रीजीके साथ भयो. ये बात मैं यालिए केह रह्यो हूँ के ये कथा केवल राणाव्यासकी नहीं हे, अपन् सबकी व्यथा हे के अपन्

अपने अहंकारकु अच्छी तरहसु मॅनेज् नहीं कर पा रहे हें.

(असहजकर्मसु सहज विगुणकर्मकी महत्ता)

यालिए भगवान् केह रहे हें के "**श्रेयान् स्वधर्मो विगुण: परधर्मात् स्वनुष्ठितात् स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषम्**" (भग.गीता १८।४७) जो तुम्हारो सहज-कर्म हे वाकु करवेसु कभी पाप नहीं लगे हे. पाप लगे हे जब तुम या प्रकारको असहज-कर्म करो. अर्जुनकु पाप कब लगेगो? वो केह रह्यो हे के "**पापमेव आश्रयेद् अस्मान् हत्वा एतान् आततायिन:**" (भग.गीता १।३६) और भगवान् वाकु आरसी दिखा रहे हें के सहज-कर्म तेरो युद्ध करनो हे और तू युद्धमेंसु पलायन कर रह्यो हे, तो तोकु पाप लगेगो. तुम पति बने हो, वाको हाथ पकड्यो हे और अब वाकु मां मानो! ये अर्जुनकी संग्राममेंसु भागवेकी तरह दाम्पत्यसु पलायन ही तो हे. यदि दाम्पत्यसु पलायन ही करनो हतो तो हाथ पकड़के वाकी जिन्दगी क्यों बिगाड़ी. वाकु कोई दूसरो पति मिल जातो. वो तो दोनों बाजुसु गयी. वाकी स्थिति सोचो. जैसे कृष्णकी स्थिति हे के वो दोनों बाजुसु गयो क्योंके सेना चली गयी कौरवनूमें और जाको रथ चलावे आयो वो केह रह्यो हे के मोकु लड़नो नहीं हे तो वो जाय तो कहां जाय!

अपने यहां वार्तामें भी आवे हे के शाकमें डंठुल आ गये, तो गुसांईजीने कही के "अब तो हम संन्यास लेंगे. मेरे कपड़ा भगवा रंगवा दो" नवनीतप्रियाजीकु जब खबर पड़ी तो उनने कही के "तुम्हारे भरोसे तो गज्जन धावनके घरसु तुम्हारे घर आयो और तुम संन्यास लेवे जा रहे हो!" थोड़ी गलती हे के शाकमें डंठुल आ गये, वाको इतनो दंड? नवनीतप्रियाजीने कही के "चलो, मेरो भी तनिया भगवा रंगो." जब गुसांईजीने नवनीतप्रियाजीको तनिया सूखते भये देख्यो, तो उनने कही के यदि नवनीतप्रियाजीकु संन्यास लेवेकी

वृत्ति जगी तो संन्यास लेनो उचित नहीं हे. गलती हे, तो वाको क्या करनो? सेवा कर रहे हें, तो कुछ न कुछ अपराध तो होयगो, होयगो और होयगो. जो करे हें वासु ही तो अपराध होयगो. दौड़वेवालो ही तो गिरेगो. सोवेवालो तो गिरे नहीं हे. "न शयानो पतति अध:" सोयो भयो आदमी गिरे नहीं हे, दौड़तो भयो गिरे.

आवश्यकता हे के अपने साध्य-कर्ममें यदि कुछ विगुणता हो गयी तो अपने अहंकारमें विकृति लावेकी नहीं हे. अपने कारण अपनो काम बराबर नहीं हो रह्यो हे. अब नहीं हो रह्यो हे तो नहीं हो रह्यो हे. सुधारनो कामकु चहिये. याको दंड अहंकारकु नहीं देनो चहिये. क्योंके अहंकारकु दंड देवेके लिए एक दूसरो विकृत अहंकार पैदा करनो पड़ेगो और वो अधिक अस्वाभाविक होयगो. ये तो फिर भी स्वाभाविक हे. डंठुल आ जाय तो उतनी गलती तो प्रभु मानके चले ही हें. यदि नहीं चलते होंय तो अपने घरमें पधारते ही क्यों? हमने अपने ठाकुरजी बड़े मन्दिरसु पधराये, वहां तो सुबह-शाम दूधको बड़ो डबरा आतो हतो. मेरे एक चचेरे भाईने मोकु पूछी के "श्यामु! क्या तेरी इतनी ताकत हे के सुबह शाम तू इतनो बड़ो दूधको डबरा धर सके?" मैंनें कही "नहीं इतनी ताकत तो नहीं हे पर मोकु एक बात अच्छी तरहसु पता हे के यदि ठाकुरजीकी नौ लाख गाय हें तो या बड़े डबराकी भी कीमत कितनी हे? मैं यदि एक छोटी कटोरी भी धरूंगो तो वो भी ठाकुरजी मान लेंगे. यालिए मोकु यामें दर्द नहीं हो रह्यो हे के बड़ो डबरा नहीं धर सकूं या लिए मैं अपने ठाकुरजीकु नहीं पधराऊँ. मैं दूधको नहीं ठाकुरजीको सेवक हूं. दूधके डबराके लिए ठाकुरजीकु क्यों छोड़ूंगो? नहीं धर्यो जायेगो तो नहीं धरूँगो." फिर पूछी "सुबह-शाम बंटामें मठड़ी धर सकेगो?" "मठड़ी नहीं होयगी तो मिश्री धरूंगो. वापे भी तो मिश्री लगी होवे. यामें क्या इतनी बड़ी बात हे! जो सहज होयगो वो धरूंगो." ये असहज अहंकार हे के हमारे

यहां इतनो बड़ो डबरा दूधको आवे. जाके पास नौ लाख गाय हें वाके सामने दो बखत वा दो लीटर दूधके डबराको अनुपात क्या?

श्रीरामानुजाचार्यके गुरु श्रीयामुनेयाचार्य बहोत सुंदर बात कहे हें. "मैं सबसु पहलो नमस्कार खुदकु कर रह्यो हूँ, क्योंके मैं तेरी स्तुति करनो चाह रह्यो हूँ." तो पूछें के "भगवान्‌की स्तुति तुम कैसे कर सकोगे? क्योंके ब्रह्माजी महादेवजी सरीखे जब भगवान्‌की पूरी स्तुति नहीं कर सके, तो तुमकु ये हिम्मत कैसे भयी भगवान्‌की स्तुति करवेकी?" यामें श्रीयामुनेयाचार्य बहोत मीठी बात कहे के "**यद्वा श्रमावधि यथा मति वापि अशक्तः स्तौमि एवमेव खलु तेऽपि सदा स्तुवन्तः वेदाः चतुर्मुखमुखाश्च महार्णवान्तः को मज्जतो रेणुकुलाचलयोः विशेषः**" (आळवन्दार स्तोत्र.११) हर व्यक्ति भगवान्‌की स्तुति उतनी ही करे हे के जितनेमें वो थक नहीं जातो होय. थक जाय तो स्तुति बंद कर दे. "**यथा मति**" उतनी ही स्तुति करे हें के जितनी वामें अकल हे. "**वापि अशक्तः**" जहां-तक वाकी शक्ति काम करे हे, वहीं तक वो करे हे. वाके बाद वो बंद कर दे हे. "**स्तौमि एवमेव खलु तेऽपि सदा**" जैसो हूं तैसो. तू स्तुति करवे लायक हे के नहीं? यदि तू स्तुति करवे लायक हे, तो मैं स्तुति करूंगो. जब थक जाऊंगो, तो नहीं करूंगो. जब-तक नहीं थकूं तब-तक तो करूंगो. "**वेदाः चतुर्मुखमुखाश्च**" वेद भी तेरी स्तुति करे हें. कितनी करें? जितनी कर सके उतनी करे हें. ब्रह्मा भी चार मुखसु जितनी स्तुति कर सकतो होयगो उतनी ही करेगो. "**महार्णवान्तः**" बड़े समुद्रमें पत्थरकी कोई चट्टान डूबे के कोई कंकड़ डूबे. डूब तो दोनों ही रहे हें समुद्रमें. वामें फरक क्या पड्यो. बड़ी चट्टान और छोटे कंकड़ में भेद तभी तक हे जब-तक वो समुद्रमें डूबे नहीं. "**को मज्जतो रेणुकुलाचलयोः विशेषः**" डूबवेके बाद तो वो भेद खतम हो जाय हे. मेरी स्तुति कंकड़ जितनी होयगी और ब्रह्माजीकी

चट्टान जितनी होयगी. मैं काहेके लिए डरूं? छोटी कटोरी दूधकी भोग धर सके यदि डबराकी सामर्थ्य नहीं होय तो. तू नंदके घरमें जन्म्यो हे. तोकु दूध मख्खनकी जैसी भी आदत हे वो हे. तो हम तोकु जितनो हमारे पास हे, उतनो भोग धरेंगे. तेरी नौ लाख गायन्के दूधमें छोटी कटोरी और दो-चार लीटरके डबरामें फरक क्या पड़ेगो? पर अपने अहंकारके कारण अपनुकु वाकी स्तुत्यतापे ध्यान नहीं जाय हे. या बातपे पहले ध्यान जाय हे के हम क्या धर रहे हैं? ये भक्तिमार्गमें अहंकारको विकृतरूप हे. ये ही अहंकार अच्छो हो सके जब आप कोई बारातमें जा रहे हो. क्योंके वरकी बारातमें वरकी मूंछ होवेके नहीं होवे पर सब बारातीन्की मूंछ होवे हे. बारातमें पुरुषकी होवे सो होवे, लड़कीन्की भी मूंछ आ जायें. अरे भाई! वहां मूंछको क्या काम हे? मूंछ क्या और पूंछ क्या? या मूंछ और पूंछ के भेद अपने समाजमें हैं.

शहाबुद्दीन राठौड़ने बड़ी मजेदार बात कही के गुजरातके कुत्ताकु बम्बई आनो हतो. बम्बईके कुत्ताने वाको विरोध कियो. पर गुजरातके कुत्ताने बम्बईके माहात्म्यकु जानके दृढ़ विचार कियो के बम्बई तो जानो ही हे. बम्बईके सारे कुत्ता रास्ता रोकके खड़े हो गये और हाऊ-हाऊ शुरु कर दी. पर गुजरातके कुत्ताने बम्बई आवेकी जिद नहीं छोड़ी. तब वाके बाद बम्बईवालेन्ने अपनी जातको समझके घुसवे दियो. घुसवेके बाद वाने पूछी के "कुत्तान्की पूंछ तो आजू-बाजू हिले तुम बम्बईवाले ऊपर-नीचे क्यों हिला रहे हो?" तो उनने जवाबमें कही के "हमने पहले ही कही हती के बम्बईमें पूंछ हिलावेकी जगह नहीं हे, यहां मत घुसो. पर एक तो तू घुस्यो और अब हमारेमें ही खोट काढ़ रह्यो हे. अरे यहां जगह नहीं हे, तो कैसे हिलायेंगे? जहां जगह होयगी उधर ही तो पूंछ हिलेगी!" हर जगहकी कुछ-कुछ लाचारी हे. यालिए अपनी पुरानी आदत छोड़के अपनो अहंकार घटानो पड़े.

हम बनारसमें जिनके यहां रुके हते, उनको एक पेटेंट् डायलॉग् हतो. उनकु हवेलीमें धक्का खाके दर्शन करनो अच्छो नहीं लगतो हतो. वो दरवाजाके पास खड़े रहके कहते ''अरे भाई साहब! संभलना, मैं अछूत हूँ'' आस-पासके लोग भाग जाते और वो शांतिसु दरशन कर लेते. ये उनको बहोत मीठो डायलॉग् हतो. या बातकु सुनके कोई धक्का नहीं मारे और सब दूर हट जाते. हवेलीन्में पूंछ हिलावेकी जगह कम होवे हे यालिए ये सब लीलात्मक बातें हें. याकु अहंकारके रूपमें न समझके लीलाके रूपमें समझोगे, तो बहोत मजा आयगी. सो ये अहंकारको तत्-तत्मार्गके अनुसार वाको विवरण हे, जाकु गीतामें समझायो हे. या विषयकु गीताके आधारपे और समझानो हे. वाकु अपन् कल करेंगे. कोईको कोई प्रश्न होय, तो कर सको.

(कामभाव और रतिभाव को अन्तर)

प्रश्न. कुब्जाकी कामनाकु कैसे समझनो? वाने ठाकुरजीके लिए काम सामग्री संजोई जैसे शैया बगैरहा. याकु समझाओ.

उत्तर. वो कामात्मिका रति हती. रत्यात्मक काम नहीं हतो. कामनाके कारण वो रमण करनो चाहती हती. रमण करवेके लिए वो कामकु नहीं वापर रही हती. प्रायः वो व्यवहार आजकल नहीं रह्यो पर डेढसौ-दोसौ साल पहले तक वो हतो. वो व्यवहार ऐसो हतो के ब्राह्मण समुदाय अपने आपकु पुण्यात्मक मानतो हतो और या कारणसु वाकु पापकी शंका अधिक रहती हती. वो शंका कौनसी हद-तक होती हती वाको एक उदाहरण आपकु बताऊँ. हम महाराजन्में थोड़ो रह्यो हे और लोगन्में इतनो नहीं रह्यो. ब्राह्मण हर बखत अपनो एक आसन साथ रखते. कोई बिछावे के नहीं बिछावे, वो दूसरेके आसनपे नहीं बैठते. उनकु डर लगतो के दूसरेके आसनपे बैठेंगे तो दूसरेके पाप हमकु लग जायेंगे. यालिए हर बखत वो अपनो आसन खुद साथ रखते और वामें अपने आपकु नीचो नहीं समझते. आप उनको आसन नहीं बिछाओ तो वो अपनो आसन

स्वयं बिछाके बैठ जाते. दूसरेके आसन शेअर् करवेपे अपन् वाके पाप-पुण्यके सहभागी हो जायें. ऐसी ब्राह्मणन्की धारणा हती. जैसे ब्राह्मण स्वयंको आसन बिछातो ऐसे ही कुब्जाने भी स्वयंको आसन बिछायो. स्वयंके लिए शैया सिद्ध करी. कृष्णके लिए शैया नहीं बिछाई. क्योंके स्वयंकु कृष्णके साथ कामपूर्ति करनी हती. कामपूर्तिके लिए वाने स्वयंकी शैया बिछाई. कृष्णार्थ शैया बिछाई होती तो रमणको भाव आ जातो. वो ही काम के हमकु पाप नहीं लग जाय, हम इतने शुद्ध हें. ये हे एक ब्राह्मण होवेको अहंकार. आप लोग तो हम महाराजन्के लिए जो आसन बिछाओ हो वो वा परम्पराको ढह्यो भयो खंडहर हे. वो या कारणसु के कहीं महाराजकु पाप न लग जाय कोईके साथ बैठवेको. याके लिए महाराजके लिए अलग आसन बना दो. मूलमें ब्राह्मणकु ये भय होतो हतो. क्योंके धर्मपरायण होते हते और कोईके साथ आसन शेअर् करवेसु व्यर्थमें कोईको पाप अपने सर मढ़ जाय. यालिए वो अपनो आसन अपने साथ रखते. ये पुरानी बात हे. अब नये लोगन्कु अथवा ब्राह्मणन्कु भी ये बात पता ही नहीं होयगी. वाके खंडहर अभी भी या तरहसु मिल रहे हे. पर वो महल तो सब ध्वस्त हो गये हें. ऐसे ही कुब्जाने भी स्वयंकी कामनापूर्तिके लिए आसन बिछायो हतो, भगवान्के लिए नहीं.

एक बात ध्यानसु समझो के घरमें पत्नी भी सजे हे और वेश्या भी सजे हे. पत्नी सजे हे अपने पतिकु सुहावेके लिए और वेश्या सजे हे कोईकु सुहावेके लिए नहीं पर खुदको मोह बढ़ावेके लिए. कैसे कोई दूसरेको स्वयंपे मोह बढ़ा सके अपने सौंदर्यकु दिखाके. वाको मेक-अप् खुदके लिए हे. अहंकारमूलक हे. पत्नी सजे हे पतिकु सुहावेके लिए, वाकु मोहवेके लिए नहीं. यदि पतिकु मोहवेके लिए पत्नी सज रही हे, तो थोड़ी गड़बड़ हे. क्योंके तब वामें रमणभाव नहीं आके कामभाव आ रह्यो हे. पति भी यदि सजतो

होय तो वो ही सिद्धान्त लागू होयगो. यदि दूसरेकु मोहवेके लिए पति सज रह्यो हे तो पतिमें भी कुछ गड़बड़ हे. सजें तो सब हें पर क्यों सज रहे हें? वो तो अपनूकु समझनो पड़ेगो. ऐसे कुब्जाने क्यों ये सारो सरंजाम कियो? क्योंके स्वयंकी कामनाकी पूर्ति करनी हे. कृष्ण-कामनाकी पूर्तिके लिए नहीं. यासु वो काम-भाव हे रति-भाव नहीं हे.

(अर्जुन-कृष्णको सम्बन्ध रतिभावमूलक)

राणाव्यासकी कथामें जो उलझे भये अहंकारके इश्यु हें, उनकु अपन् लगातार राणाव्यास-श्रीमहाप्रभु और अर्जुन-कृष्ण के कम्पेरिजन् और कॉन्ट्रास्ट में देख रहे हें. वामें अर्जुनको काम-भाव हे के रति-भाव हे, ऐसो या प्रश्नको आशय लग रह्यो हे. शब्दमें स्फुट नहीं हो रह्यो हे पर आशय ये ही लग रह्यो हे के अर्जुनको कृष्णके साथ काम-भाव हे के रति-भाव हे?

जैसे अपनूने देख्यो के अहंकारको एक औपादानिक स्वरूप हे, एक गुणधर्मात्मक स्वरूप हे और एक क्रियात्मक या व्यवहारात्मक स्वरूप हे. बिल्कुल याके समानान्तर अर्जुन और कृष्ण के भी तीनों रूप हे. और वे तीनों रूप कैसे हें? भगवान्के चौबीस अवतारन्में एक नर-नारायण अवतार हे. नर-नारायणको अवतार कृष्णावतारके पहलेको हे. वो ही नर-नारायण फिरसु कृष्ण-अर्जुनके रूपमें प्रकट हुए हें. अर्जुन 'नर' हे और कृष्ण 'नारायण' हे. एक कृष्णावतारके बखत कृष्ण और अर्जुन, क्योंके कुन्ती कृष्णकी बुआ हे, यासु अर्जुन कृष्णको बुआ-भाई भी हे. दोनों सखा भी हे. हर भाईको आपसमें सखा होनो आवश्यक नहीं हे. भाई यदि सखा होय, तो वासु अच्छी कोई बात नहीं हे और भाई सखा नहीं होय, तो वासु खतरनाक भी कोई बात नहीं हे. वो अर्जुन स्वयं केह रह्यो हे के **''सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तम्''** (भग.गीता ११।१४) सखा मानके मैंने तेरे साथ

ऐसो व्यवहार कियो के जो करनो नहीं चहिये हतो पर अब खबर पड़ी के मैं अपने सख्यभावके कारण मान रह्यो हतो पर वस्तुत: तुम सखासु भी ऊपर कोई और तथ्य हो. जहां-तक गीताको प्रश्न हे वहां वो गुरु-शिष्यके रूपमें भी आपसमें जुड़ रहे हें, रथी-सारथीके संबंधके अलावा. एक साला-बहनोईको भी रिलेशन् हे. इतने रूपसु अर्जुन कृष्णसु जुड़्यो भयो हे और जितने रूपसु अर्जुन जुड़्यो भयो हे उतने सब रूपन्में कृष्ण वाको साथ दे रहे हें.

एक बात खास समझो के कोई एक संबंध कोईके साथ जीवनमें निभानो बहोत कठिनाई भरो काम हे, पर संबंध बांधनो बहोत सरल काम हे. यदि इतने मल्टीप्लीसिटी और कॉम्प्लॅक्सीटी वाले संबंध आपसमें निभा रहे हें, वो ही या बातको प्रमाण हे के वो काम-संबंध हो ही नहीं सके.

(पुष्टि-प्रवाह-मर्यादाभेद एवं वचनामृतकी महत्ता)

ये कथा दूसरी हे. अपने यहाँ व्रजभक्तन्के हिसाबसु अर्जुनकु पुष्टिभक्त नहीं मानके मर्यादा-भक्त मान्यो गयो हे. पर या प्रकारसु जब भी अपन् विभाजन करे हें, वा बखत श्रीमहाप्रभुकी मौलिक स्कीम् अपन् भूल जाय हें. वामें पुष्टिको जो सर्ग हे वामें शुद्ध-मिश्र-भेद हे. शुद्ध-पुष्टि, पुष्टि-पुष्टि, मर्यादा-पुष्टि और प्रवाह-पुष्टि.

पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा भेद ग्रंथको अध्ययन करते बखत एक बातपे लोगन्को ध्यान नहीं जावे और प्राय: कोई टीकाकारने भी या बातको साहस नहीं दिखायो हे क्योंके "प्रसरं न लभन्ते हि यावत् क्वचन मरकटा:" जा गाममें बन्दर बहोत होंय अपनी बारी खुली नहीं रखनी चहिये. भूले-चूके बारी खुल्ली रखी, तो अपने घरकी व्यवस्थाकु अव्यवस्था होवेमें समय नहीं लगे. मेरो विद्यार्थी रेडिंग्टन् जाने पुष्टिमार्गपे पी.एच.डी. करी वाने मोकु ये बात बताई के "मैं वृन्दावन गयो,

तो अद्‌भुत दृश्य देख्यो के बन्दर सब बाहर खुले और मनुष्य सब पिंजरामें बंद'' वो कहे के ''हम अमेरिकामें तो ऐसो सोच भी नहीं सके हें.'' आदमी पिंजरामें बंद रहे, तो भी बंदर तो कुछ उपद्रव करें ही हे. क्योंके बन्दर कभी शांतिसु नहीं बैठे.

वो बन्दर कोई तूफान नहीं करे यालिए टीकाकारनूने साहस नहीं कियो, ऐसो मोकु लगे. बाकी मोकु लगे के एक बारी और खोली जा सके पुष्टि-प्रवाह-मर्यादामें. जाकु श्रीमहाप्रभु 'चर्षणी' केह रहे हें, 'चर्षणी' मानें भटकतो जीव. भटकतो जीव क्या कभी पुष्टिमार्गमें नहीं आ सके? भटक्यो भयो चर्षणी जीव यदि पुष्टिमार्गमें आयो हे, वो प्रवाह-पुष्टिसु भी नीचेको एक दर्जा, चर्षणी-पुष्टिको भी बनेगो के नहीं बनेगो? बनेगो. ये बात सच हे के वो टिकेगो नहीं पुष्टिमार्गमें क्योंके वो भटकतो जीव हे. आयाराम-गयारामकी तरह वो आ तो जाय हे. पर समझो के वो आ गयो पुष्टिमार्गमें, तो पुष्टिकी वॅराइटीमें वो भी तो गिन्यो जायगो. जैसे एक शुद्ध-पुष्टि, पुष्टि-पुष्टि, मर्यादा-पुष्टि, प्रवाह-पुष्टि वा तरहसु चर्षणी-पुष्टि. थियोरेटिकली अपन् या बातकु इन्कार नहीं कर सकें. टीकाकारनूने क्यों नहीं याको खुलासा कियो, वाको कारण मैनें आपकु बता दियो के साहस नहीं करनो.

जैसे जामनगरवाले हरिरायजी जघन्यताकी बहोत परिभाषा करे के जघन्य जघन्यतर जघन्यतम अतिजघन्य अतिजघन्यतर इत्यादि. कई-कई कॅटेगरी करते जाओ, वामें कोई हरकत नहीं हे. जितनी कॅटेगिरी करनी होय करी जा सके हें. वा बातकु अपन् इन्कार नहीं कर सके हें. क्योंके **''पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा विशेषेण पृथक्-पृथक् जीव-देह-क्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च. वक्ष्यामि सर्व-सन्देहाः न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः''** (पु.प्र.म.१-२) ये केहके सर्ग-भेद, मार्ग-भेद, फल-भेद, इनसु सारे मार्गनूको प्रभेद समझायो हे. वाके अन्तर्गत चर्षणी भी समझायो हे. अपने दुर्भाग्यसु ये ग्रंथ पूरो नहीं मिले हे. पर वाके कारण

वो पिक्चर साफ नहीं हे के चर्षणी प्रवाहकी कॅटेगिरीमें हे के पुष्टि-प्रवाह-मर्यादासु अलग कोई पृथक् चौथी कॅटेगिरी हे. जैसे अपन् एकाउन्ट् लिखें वामें सब-हेडिंग्में सारे खर्चा डालें. पर जाकु हेडिंग् नहीं दे सकते होंय, वाकु मिसलेनियस् कहे हें. हो सके के शायद ये चर्षणी कोई मिसलेनियस् भी हो सके. प्रचलित भाषामें वाकु 'खिल' कहे हें. जैसे यजुर्वेद ऋग्वेद में 'खिलकाण्ड' आवे. 'खिलकाण्ड'को अर्थ हे के जामें वेदके जो वर्गीकृत मंत्र हे, उनके अलावा कुछ अवर्गीकृत मंत्र सब खिलमें आवे. ये सहज सम्भव हो सके के चर्षणी कॅटेगिरी कोई अवर्गीकृत होय. यामें सन्देहकी बात ये हे के यदि चर्षणी प्रवाहकी कोई सब्-वॅराइटी हे, जोके मेरे हिसाबसु लग नहीं रही हे. प्रवाहके बाद तुरंत आवेके कारण कई टीकाकार याकु वा तरहसु देखें. पर यदि वो प्रवाह नहीं हे और चौथी कोई वॅराइटी हे तो, यदि पुष्टिमार्गमें आ गयी हे तो पुष्टिमार्गकी एक सब्-वॅराइटी हे. मर्यादामार्गमें जा रही हे तो मर्यादामार्गकी सब्-वॅराइटी हे और यदि प्रवाहमार्गमें जा रही हे, तो प्रवाहमार्गकी सब्-वॅराइटी हे. यदि प्रवाहकी वॅराइटी नहीं हे और खिल वॅराइटी हे तो "'**चर्षणी**' **शब्दवाच्यास् ते सर्वे सर्ववर्त्मसु, क्षणात् सर्वत्वम् आयान्ति रुचिः तेषां न कुत्रचित्**" (पु.प्र.म.२२) 'न कुत्रचित्' मानें न पुष्टिमार्ग, न मर्यादामार्ग और न प्रवाहमार्ग. वा स्थितिमें वो कोई चौथी वॅराइटी हो जायेगी और वैसे सब जीव जब पुष्टिमार्गमें आयेंगे तो वाकी सब्-वॅराइटीमें टॅम्परेरी हो जायेंगे. मर्यादामार्गमें आयेंगे तो मर्यादामार्गकी टॅम्परेरी सब्-वॅराइटी हो जायेंगे और प्रवाहमार्गमें जायेंगे तो प्रवाहमार्गकी टॅम्परेरी सब्-वॅराइटी हो जायेंगे. वो पर्मेनेन्ट वॅराइटी नहीं हे, इतनी बात अपन् चर्षणीके कॅरेक्टर्सु देख सके हें. मेरो केहवेको मुद्दा ये हे के या बातपे बहोत ध्यान नहीं दियो गयो हे.

ऐसे एक और बातपे लोगन्को ध्यान नहीं गयो हे और वो हे के मर्यादाकी भी तो पाछी तीन वॅराइटी हे. मर्यादा-पुष्टि, मर्यादा-मर्यादा

और मर्यादा-प्रवाही और चौथी मर्यादा-चर्षणी भी हो सके हें, यदि चर्षणी मर्यादामें घुस गये तो. ऐसे ही प्रवाहकी भी तीन वॅराइटी हो सके हें. प्रवाह-पुष्टि, प्रवाह-मर्यादा, प्रवाह-प्रवाह और चौथी प्रवाह-चर्षणी. हमेशा अपनूकु ये समझनो पड़ेगो के प्रवाह-चर्षणी हे वो प्रवाहमार्गकी टॅम्परेरी वॅराइटी हे, पर्मनेन्ट् वॅराइटी नहीं हे. बात इतनी सी हे. ये थिअरी अपनूकु माननी पड़े हे. इन बातनूपे बहोत विचार अपने यहां नहीं भयो हे. जब अपन् पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा ग्रन्थको अध्ययन-अध्यापन प्रवचन-श्रवण करे हें तो इन बातनूकु भी समझनो जरूरी हे.

जो बात मैं समझानो चाह रह्यो हूं वो ये हे के यदि पुष्टि-मर्यादाकी तरह कोई मर्यादा-पुष्टि हे, कोई प्रवाह-पुष्टि हे, तो कुछ न कुछ पुष्टिको पुट वामें हे तो सही. वो पुट वामें हे वो अपनूकु पता कैसे चले? ग्रंथनूकी व्याख्यानूसु वो पता नहीं चले. पर वो बात वचनामृतनूसु पता चले. बड़ेनूने वचनामृत जो किये हें वासु मेरो ये हेतु हतो इन वचनामृतके संकलनको. महाप्रभुजी गुसांईजी श्रीगोकुलनाथ के बहोत सारे अद्भुत खुलासा अपनूकु जो ग्रंथमें नहीं मिले हें, वो वचनामृतमें मिले हें और उन वचनामृतपे अपनूकु उतनी ही गंभीरतासु ध्यान देनो चहिये. वाके लिए अपने यहां इन वचनामृतनूपे प्रवचनको कार्यक्रम हे.

(रतिकी विविधताके प्रसंग)

जैसे श्रीगोकुलनाथको एक प्रसंग हे के आप अपरसमें नहावे पधार रहे हते और फारसीमें लिख्यो भयो एक कागजपे पैर पड़ गयो, तो श्रीगोकुलनाथने कही के "छू गये". फिर आज्ञा करी के "पढ़के देखो क्या लिख्यो हे यामें". उनने कही के "यामें शीरी-फरहादकी कथा हे." उनने कही के "शुद्धप्रेमकी कथा हे, यासु नहीं छुओ, भले म्लेच्छ हे तो भी." शुद्धप्रेमको अर्थ हे रतिभाव. ये अपनेकु तो समझ ही नहीं आवे के ये कथा शुद्धप्रेमकी कैसे हो गयी?

ये शुद्धप्रेमकी कथा ऐसी हे के शीरी खूबसुरत नहीं हती. वाको नाम बहोत खूबसुरत हे पर खुद इतनी सुंदर नहीं हती. 'शीरी'को अर्थ मीठी. वो काली भी हती और काणी भी हती. याके बावजूद फरहाद वाकु चाहतो हतो. यालिए वो कामभावसु नहीं चाहतो हतो, रतिभावसु चाहतो हतो. वो कोई कृष्णकु चाहवेकी कथा नहीं हे. एक काणी-काली लड़कीकु एक मनुष्य शुद्धभावसु चाह रह्यो हे, तो वामें प्रवाह-पुष्टि समझो के चर्षणी-पुष्टि समझो. पर कोई न कोई तरहकी वामें पुष्टि तो बोल ही रही हे.

जैसे रसखानजीकी वार्ताको एक वचनामृत हे. ये महाप्रभुजी गुसांईजीको कथन नहीं हे पर शायद कोई भगवदीयको हे. "याको जैसो या लड़कामें स्नेह हे, ऐसो श्रीजीमें हो जाय तो याको बेड़ा पार हो जाय" या बातपे रसखानजीकु इतनो धक्का लग्यो के मैं जा लड़काकु चाह रह्यो हूं वासु भी अच्छो कोई लड़का हो सके! उनने कही के "है न श्रीजी" श्रीनाथजीके दरशन करके उनके भक्त हो गये. रसखानजी स्वयं केह रहे हें के *छिनक पातसाह वंशकी ठसक छांडि रसखान* मैं बादशाही वंशको हूं, वाकी ठसक मैंने छोड़ दी. माधोदासकी वार्तामें आवे के वेश्याकु चाहते हते. सबनूने फरियाद करी के "महाराज, ये वेश्याकु चाहे हे और कंठी लेवे आ गयो हे" महाप्रभुजीने थर्मामीटर् कौनसो वापर्यो? थोड़ी जोरसु पूछी के "हे माधोदास! तू वेश्याकु चाहे हे?" उनने कही के "हाँ चाहूं." दूसरी बार घुड़कके पूछी के "तू वेश्याकु चाहे हे?" तो भी वाने वो ही उत्तर दियो. तीसरी बार फिर पूछी, तो वाने कही के "इतनो चाहूं के वो छोड़ी नहीं जा सके." तब महाप्रभुजीने कही "तो फिर कंठी ले लो" सबनूने कही के इतने नालायक व्यक्तिकु कंठी देवेको अधिकारी आपने कैसे समझ्यो? महाप्रभुजीने कही के "ये जितनी सच्चाईसु वेश्याकु चाह रह्यो हे, वो चाहनाकी सच्चाई यदि कृष्णकी तरफ मुड़ गयी, तो यासु अच्छो भक्त और कहां मिलेगो?"

ये वार्ताएं अपनकु कुछ-कुछ हिन्ट् तो दे रही हें, रतिके जो वॅराइटीवाले केस हें उनकी.

(विषयासक्तिकु चेनलाइज् करवेसु भगवदासक्ति)

प्रहलादजी बतावे हें के **"या प्रीतिः अविवेकानां विषयेषु अनपायिनी त्वाम् अनुस्मरतः सा मे हृदयाद् मा अपसर्पतु."**(विष्णुपुरा.१।२०।१९) अविवेकी व्यक्तिकु विषयमें जितनी आसक्ति हे, ऐसे जब मैं तोकु याद करूँ हूँ तो वो विषयासक्ति मेरी, तेरी आसक्तिमें कल्मिनेट् हो जाय. मतलब तेरे लिए नई आसक्तिकु लावेकी जरूरत नहीं हे. मेरी विषयासक्ति ही तेरी आसक्तिमें कल्मिनेट् होनी चाहिए. यदि विषयासक्तिकु मैं तेरी तरफ चॅनेलाइज् कर सकूं तो वैसी मेरी आसक्ति कभी खतम नहीं हो सके.

(* पुष्टिसौरभ गैरपुष्टिमार्गीयन्में सम्भव)

ये ही बात मैं तुमकु केहनो चाह रह्यो हूँ के पुष्टिकी रतिको जो स्वभाव हे वाकु अपन् जा पर्स्पेक्टिव्में समझ रहे हें, कौनसो पर्स्पेक्टिव् ? 'कंठी-बंद'को मतलब अपन्ने पुष्टिमार्गकी कंठी पहरी हे बस वो ही पुष्टि हे और सब पुष्टि नहीं हो सके. बहोत करके या कंठी-बंदकी पुष्टिमार्गितामें अपनी रतिके बजाय कोई अपनो अहंकार बोल रह्यो हे. या अहंकारकु डाइल्यूट् करवेकी जरूरत हे. 'वल्लभ-विज्ञान' मासिकपत्रिकाके जो मालिक कालानीजीने मोकु कही के "आप वल्लभ-विज्ञानको संपादकत्व संभालो." दो साल मैंने संभाल्यो. वामें मैंने एक स्तंभ शुरु कियो हतो 'पुष्टि सौरभ', वामें चुन-चुनके मैंने गैरपुष्टिमार्गीयने पुष्टिमार्गीय बात कैसे करी. जिन जिनने भी कंठी-बंद पुष्टिमार्गीय नहीं होवेके बावजूद जो पुष्टिमार्गीय बात कही हे, वा बातकु मैं पुष्टि-सौरभके रूपमें छापतो हतो. मेरे केहवेको अर्थ ये हतो के पुष्टिको फूल तो खिलेगो पुष्टिके बगीचामें ही पर वाकी

---

*पुष्टि-सौरभ स्तभंकी कवितायें परिशिष्टमें

खुश्बू तो बगीचाके बाहर भी फैलेगी. जरूरी नहीं हे के पुष्टिमार्गीको फूल जो पुष्टिमार्गके बगीचामें खिल रह्यो हे, वाकी खुश्बू वा बगीचाके बाहर नहीं फैले. वो फैल सके हे. वाही बातकु इंगित करवेके लिए वल्लभ-विज्ञानमें मैंने पुष्टिसौरभको स्तंभ चलायो हतो और तेलगुमेंसु तमिलमेंसु बंगालीमेंसु अंग्रेजीमेंसु मराठीमेंसु जहां-जहां पुष्टिसौरभ मोकु दिख्यो, उन सबकु मैंने वामें संकलित कियो. मेरो हेतु वा बखत भी वो ही हतो. पुष्टिपुष्प पुष्टिकी चार दीवारके अंदर होयगो पर पुष्टिसौरभकी महक तो चार दिवारन्के बाहर भी हो ही सके हे.

(कृष्ण कोईकी मोनोपॉली सहन नहीं करे)

अपनूकु कंठी-बंद वैष्णवताको खोटो अहंकार नहीं करनो चहिये के वो सिर्फ हमारी ही मोनोपॉली हे. क्योंके कृष्ण कोईकी मोनोपॉली नहीं सहन करे हे, सबसु बड़ी बात ये हे. हम बालकन्कु लगे हे के कृष्ण हमारी मोनोपॉली हे. हमारे हवेलीमें तुम नहीं आओ तो तुम्हारो उद्धार ही नहीं हो सके, क्योंके कृष्ण हमारी मोनोपॉली हे. वो तो अहंकार हे, भक्ति नहीं हे. कृष्ण कोईकी मोनोपॉली सहन नहीं करे हें. जब अवतार-लीलामें सहन नहीं करी तो अब कैसें करेगो! देखो जा अर्थमें केह रह्यो हूँ वाकु गलत अर्थमें मत लीजियो पर बातको सच्चो अर्थ समझियो. जब वाने राधाजीकी और रुक्मणीजीकी मोनोपॉली सहन नहीं करी, कुब्जाके बुलावेपे चल्यो गयो तो वो कौनकी मोनोपॉली सहन करेगो, कोईकी नहीं. रुक्मणीसु ब्याहके जाम्बवंतीसु ब्याहवेकी आवश्यकता क्या हती? जाम्बवंतीसु ब्याह गयो. कृष्ण कोईकी मोनोपॉली सहन नहीं करे. वो खुद कहे हे के **"अहं भक्तपराधीनो हि अस्वतन्त्रइव द्विज:"** (भाग.पुरा.९।४।६३) **"वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रिय: सत्पतिं यथा"** (भाग.पुरा.९।४।६६) मैं कोई चीजसु वशमें नहीं आऊँ, केवल भक्तिसु वशमें आऊँ. यदि भक्ति हे, तो कृष्ण अपने वशमें हे. भक्ति नहीं हे, तो कृष्ण वशमें नहीं हे.

१९७८में जब वल्लभपदपंकजमूमें 'शंखनाद' प्रवचन मैंने कियो हतो, वाकी सी.डी. मिले हैं. वामें मैनें एक बात कही हती के *"मैं तो इकलाखके हाथों ही बिका करता हूँ और होंगे तेरे बाज़ारमें बिकनेवाले"* 'इकलाख' मानें सच्चाई. मैं सच्चाईके हाथ ही बिकवेकु तैयार हूँ. कृष्ण तो सच्चाईके हाथ बिके हे, कृष्ण कोई बाजारी चीज नहीं हे. अब समझो के अर्जुनपे शंका करवेकी आवश्यकता क्या हे? जो इतने सारे संबंध कृष्णसु निभा रह्यो हे और जासु कृष्ण भी इतने सारे संबंध निभा रह्यो हे, वाकु रतिभाव क्यों नहीं होयगो. मोकु पता नहीं हे के आपको प्रश्न ये ही हे के नहीं पर जा तरहसु प्रश्न उपस्थित भयो हे वामें ये भाव लग रह्यो हे.

[८]

(अहंकारके सहस्र परिप्रेक्ष्य)

कल मैनें गीताके आधारपे वाको प्रारूप समझायो. वाके आधारपे जब हम अहंकारकु समझ रहे हें वामें अहंकारकु वैसे सहस्रशीर्ष कह्यो हे. जैसे शेषनाग सहस्रशीर्ष हे, ब्रह्म जैसे सहस्रशीर्ष हे, ऐसे अहंकार भी सहस्रशीर्ष हे. सहस्र वहां हजारको वाचक नहीं होके अनंतको वाचक हे. मानें अहंकारके अनंत असंख्य पहलु हो सके हें. उन पहलुन्के अलावा अहंकारके जो पर्स्पेक्टिव् हें, वे भी असंख्य हें. वापे अपनकु थोड़ो ध्यान देनो चहिये. 'पर्स्पेक्टिव्' मानें कोई भी चीजकु जा बखत अपन् देखे हे तो वा वस्तुकी लंबाई चौड़ाई और ऊँचाई में वा वस्तुको एक पर्स्पेक्टिव् पैदा होवे. मानें दृश्य पैदा होवे. कौनसे पर्स्पेक्टिव्में वस्तु दिख रही हे. लंबाईमें कितनी दिख रही हे, चौड़ाईमें कितनी दिख रही हे और ऊँचाईमें कितनी दिख रही हे. वो अपनकु दिखे, तो वस्तुको पर्स्पेक्टिव् अपनकु दिखे. हर वस्तुके पर्स्पेक्टिव्के कारण वस्तुकु समझवेमें बहोत अन्तर पड़े हे. ये तो भौतिक पर्स्पेक्टिव्की बात हे.

ऐसे ही मनोवैज्ञानिक पर्स्पेक्टिव् भी हो सके हे. ऐसे ही कुछ धार्मिक पर्स्पेक्टिव् भी हो सके हे. उनके कारण वस्तुएं अपने सामने जा तरहसु प्रकट हो रही हे, वामें बहोत फरक पड़े हे. उदाहरणके तौरपे दरअसल शास्त्रके हिसाबसु सा रे ग म प ध नि सा सुर खोटे हें, सच्चे नहीं हे. क्योंके सुर तो 'सा' सु 'म' तक ही हें. 'प' सु 'सा' तककी ध्वनि अलग बनाके बेवकूफ बनायो जा रह्यो हे. पर्स्पेक्टिव् तो 'सा' और 'म' ही हे, जाके लिए सामवेद कहतो हतो के सुर तो 'सा' सु 'म' तक ही हे. यालिए आज भी 'प' 'सा'को संवादी मान्यो जाय हे 'रे' 'ध'को संवादी मान्यो जाय और 'ग' 'नि'को संवादी मान्यो जाय. 'संवादी' मानें पर्स्पेक्टिव् वाको बदल रह्यो हे, सुर तो वोको वो ही हे. पर्स्पेक्टिव्के कारण बहोत

सारी वस्तुको स्वर बदल जावे हे, स्वरूप बदल जाय हे. क्योंके अपने देखवेको नज़रिया बदल गयो. अब अपन्ने जब वाकु 'पधनिसा' नाम दे दियो, तब 'प'कु अपन् 'सा'के रूपमें नहीं देख रहे हें, वाकु कोई दूसरो ही समझ रहे हें. एक आवर्तन 'सारेगम' हे और दूसरो आवर्तन 'पधनिसा' हे. बदल गयो पर्स्पेक्टिव्. अब वाके बाद कोई रागमें 'प' हे कोई रागमें 'प' नहीं हे. कोई रागमें 'ध' हे 'रे' नहीं हे. उन अलग-अलग पर्स्पेक्टिव्के कारण अलग-अलग राग बन जा रहे हें. सुरके कारण नहीं बन रहे हें. ये तो बतौर उदाहरण समझा रह्यो हूँ.

अब समझो के अहंकार स्वयं सहस्रशीर्षा हे और सहस्र तरहके वाके पर्स्पेक्टिव् हें. वाकु गीता कैसे इंगित कर रही हे और उन हजार माथावाले अहंकारकु हजार पर्स्पेक्टिव्में परखनो, बहोत मुश्किल काम हे. अहंकारीके लिए कठिन काम हे, वाकु पेम्पर् करवेवालेके लिए कठिन काम हे और अहंकारसु सफर होवेवालेके लिए कठिन काम हे. जो अहंकारको शिकार हो रह्यो हे वाके लिए कठिन काम हे, फिर भी थोड़ोसो वाको स्वाद चखवेकी जरूरत हे, अच्छे या बुरे. स्वाद अच्छे भी होवें और बुरे भी होवें.

(गीताके आधारपे अहंकारको परिप्रेक्ष्य)

भगवान् कहांसु शुरु कर रहे हें, वाके पर्स्पेक्टिव्कु सबसु पहले भगवान् एक आज्ञा कर रहे हें के **"त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु"** (भग.गीता १७।२) अब ध्यानसु देखो के अपनो अहंकार सात्त्विक हो सके, राजस हो सके, तामस हो सके हे. वा अहंकारकु जीवेके लिए या वा अहंकारकु चमकावेके लिए जो बॅकग्राउन्ड हे वो श्रद्धाकी हे. अपने अहंकारकु मैं कौनसी श्रद्धासु जी रह्यो हूँ. यदि अपन्ने ये प्रश्न छेड्यो, तो तीन गुने तीन, ऐसे नौ अहंकार हो जायेंगे.

क्योंके तीन अहंकारके प्रकार तीन श्रद्धाके प्रकार यासु नौ प्रकार. जैसे सात्त्विक अहंकारके साथ सात्त्विक राजस तामस श्रद्धाके तीन प्रकार. राजस अहंकारके सात्त्विक राजस तामस श्रद्धाके तीन प्रकार और तामस अहंकारके सात्त्विक राजस तामस, श्रद्धाके तीन प्रकार. या तरहसु दूसरे स्टेपूपे ही नौ प्रकार अहंकारके हो रहे हैं. श्रद्धाके प्रकारके साथ क्यों? तो सबसु पहली बात समझो के आपकु श्रद्धा हे के नहीं? आपकु अपने अहंकारपे श्रद्धा हे के नहीं? यदि कोई व्यक्तिकु अपने अहंकारपे श्रद्धा नहीं हे, तो अहंकारको स्वरूप तुरंत बदल जायगो. वो व्यक्ति वा अहंकारकु धारण कर ही नहीं पायगो. अच्छो या बुरो, रावणकु रावण होवेके अहंकारपे श्रद्धा हे. कंसकु कंस होवेके अहंकारपे श्रद्धा हे. भगवान् हैं यालिए उचित तो नहीं हे पर कॅरेक्टर्की तरह देखें, तो रामकु राम होवेके अहंकारपे श्रद्धा हे. सीताकु सीता होवेके अहंकारपे श्रद्धा हे. सबकु अपने-अपने अहंकारपे श्रद्धा हे. ये अपन् कैसे देख सके हैं? राम एक ठिकाने आज्ञा कर रहे हैं के "राम कभी दो तीर नहीं छोड़े. राम कभी दो जबान नहीं बोले." जो बात केह दी सो केह दी. अब रामकु ये अहंकार हे के मैं अपनी बातसु टल नहीं सकूँ हूँ और यदि दो तीर छोड़ने पड़े तो मैं धनुर्धारी कैसो? पहले तीरमें फैसला हो जानो चहिये. अब ये जैसो भी अहंकार हे, पर हे तो अहंकार. राम कहे हे "**सकृदेव प्रपन्नाय तव अस्ति इति याचते अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामि एतद् व्रतं मम**" (वा.रामा.६।१८।३३) भूले-चूके भी कोई व्यक्ति मोकु आके केह दे के "हे राम! मैं तुम्हारी शरणमें हूँ. तो वो जो भी होय, जैसो भी होय, मैं अपनी जिम्मेदारी समझूं हूँ के वाकु दुनियाके सारे भयन्सु मुक्त करूँ. ये रघुकुलके रामकी शपथ हे." ये एक प्रकारको अहंकार हे. अहंकारको विपरीत अर्थ मत लो. ये एक बहोत मीठो अहंकार हे और या अहंकारपे रामकु श्रद्धा हे, जो वे स्वयं प्रकट कर रहे हैं के मैं कमानपे दो बार तीर नहीं चढ़ाऊँ. देखो, उनको आत्मविश्वास कितनो तगड़ो हे वो

अपन् देख सके हें. वो आत्मविश्वास आ कहाँसु रह्यो हे? अहंकारपे स्वयंकी श्रद्धा हे. अब ये श्रद्धा सात्त्विक राजस तामस कुछ भी हो सके हे.

डॉ.परमानंदकी आपकु बात बताऊँ. हिन्दुस्तान-पाकिस्तानको पार्टीशन् भयो. पाकिस्तानसु डॉ.परमानंद बम्बई आयो ठाकुरजीकु पधराके. अब सेवाके लिए वाकु तुरंत ये आवश्यकता हती के वाकु कहीं कोई जल्दी जगह मिले. वा बखत सिंधीनूके बारेमें ऐसो खराब ख्याल हतो के सिंधी यदि घरमें घुस जाय, तो निकले नहीं. सब लोग सिंधीसु डरते हते. वाकी लाचारी हती के अपनो देश धंधा परिवार सब छोड़के आयो हे, जाय तो जाय कहां? वा समय एक सिंधी विरोधी माहौल पैदा भयो हतो. वाके कारण डॉ.परमानंद जहां भी घर ढूँढवे जातो तो सिंधी होवेके कारण वाकु मना कर देते. डॉ.परमानंद बहोत परेशान हो गयो. सुबोधिनीको अच्छो जानकार हतो. मेरे लघु-ग्रंथमें उनको परिचय दियो हे के कैसे उनने सुबोधिनीपे सवाल कर-करके मोकु खड़खड़ा दियो. एकदम नर्वस् कर दियो. वो बेचारो एक वैष्णवके ठिकाने गयो, जहाँ घर खाली हतो. वा लॅन्ड्-लॉर्डने कही के “वैसे तो मैं मकान सिंधीनूकु नहीं दऊँ हूँ पर तुम क्योंके पुष्टिमार्गीय वैष्णव हो, यालिए अपनो फ्लॅट् दे सकूँ” डॉ.परमानन्दने मना कर दी “मैं और मेरे ठाकुरजी कहीं भी फुटपाथपे रेह जायेंगे पर मैं पुष्टिमार्गीय हूँ यालिए मोकु फ्लॅट् नहीं चहिये. तुम लॅन्ड्-लॉर्ड हो और मोकु मकान चहिये, या रिश्तेसु मकान मिलनो होय, तो तो चहिये.” सीधे हाथ जोड़के मकानसु बाहर आ गयो. डॉ.परमानंदको पुष्टिमार्गीय होवेको अहंकार और वा अहंकारपे वाकी श्रद्धा इतनी जबरदस्त हती के वो हालांकी फ्लेट्को मोहताज हतो पर नहीं लियो. बड़ी मुश्किलसु उनकु फ्लेट मिल्यो. देखो, अपने अहंकारपे श्रद्धा होवेके कारण कितनो फरक पड़े!! निंदाके अर्थमें नहीं केह रह्यो हूँ, खोटे अर्थमें मत लीजियो पर कभी-कभी अहंकार ठीक होवे

हे पर श्रद्धा अपनी ठीक नहीं होवे. वाके क्या परिणाम होवे ये बताऊँ. कोई और उदाहरण ख्याल नहीं आ रह्यो हे, यालिए केह रह्यो हूँ. महाराणा प्रतापने अकबरसु लड़ाई क्यों ठानी? बहोत छोटीसी बातपे के मानसिंहने अपनी बहन काहेकु अकबरकु दी? यासु मानसिंहके साथ बैठके खाना नहीं खाऊँगो. मानसिंहकु हतो के "बुलायो हे अतिथिके रूपमें, तो साथ बेठके खाना तो खाओ" महाराणाने केह दी के "पेट ठीक नहीं हे" मानसिंहकु समझ आ गयो के "क्यों मेरे साथ खाना नहीं खा रह्यो हे?" वाने कही के याको इलाज मैं करूँगो. वाने अकबरकु कही, तो वाने फौज भेज दी. झगड़ा तो बहोत छोटी बातको हतो पर जा बातके लिए लड़नो चाह्यो, अरावलीकी पहाड़ीनमें दर-दर भटक्यो, सारी तकलीफ सहन करी. खुदने और बच्चाने घासकी रोटी खायी. वो घासकी रोटी भी जब बन-बिलाऊ ले गयो, तो बच्चाकु क्या खवानो वा बातपे वाके अहंकारकी श्रद्धा डगमगा गयी. वाने माफीको पत्र अकबरकु भिजवा दियो. वो तो वहां वाको भाई शक्तिसिंह अकबरके यहां नौकर हतो. वाकु पता चल गयी के महाराणाके जीवनमें कोई विपरीत स्थिति आयी हे के जाके कारण महाराणाने ऐसो पत्र लिख्यो हे. अकबरने वो पत्र शक्तिसिंहकु दियो के "पढ़ो, तुम्हारे भाईने क्या लिख्यो हे?" शक्तिसिंहने वा बखत झूठ बोल दियो के "ये मेरे भाईकी हेंडराइटिंग् नहीं हे. कोईने तुमकु चीट करवेके लिए लिख दियो हे. जहांपनाह सावधान हो जाओ" और वाके बाद महाराणा प्रतापकु लेटर लिख्यो के "तू सिसोदियाके कुलको होके माफी मांगे!" महाराणाको अहंकार फिर जागृत हो गयो. अब जो होयगो सो होयगो, लड़ाई अंतिम दम-तक लड़ेंगे. अब देखो, अहंकारमें कोई कमी नहीं हे पर श्रद्धा डगमगा रही हे. क्योंके जब बच्चा तकलीफ पा रह्यो हे तो एक बापकी श्रद्धा अपने अहंकारकु जस्टिफाई नहीं कर रही हे. या ट्रेजेडीने वाकी श्रद्धाकु हिला दियो. अहंकारकु नहीं हिलायो. तो आप समझ सको हो के हर अहंकारको एक श्रद्धाको पर्स्पेक्टिव् होवे हे. अहंकार सात्त्विक

राजस तामस कोई भी हो सके और वाके पर्स्पेक्टिव्में श्रद्धा भी राजस तामस सात्त्विक हो सके हें. उन तीन प्रकारकी श्रद्धाके पर्स्पेक्टिव्में अहंकारके अलग-अलग चित्र उभर सके हें.

(अहंकारकी व्यवस्था और अव्यवस्था में श्रद्धाकी महत्ता)

मेरे केहवेको मतलब ये हे के याही बातको भगवान् सबसु पहले परिचय दे रहे हें. अहंकारको मिस्मॅनेजमॅन्ट् यालिए ही होवे हे क्योंके सात्त्विक अहंकारकु यदि सात्त्विक श्रद्धा मिले, तो वो मॅनेज् हो पायगो पर यदि राजस या तामस श्रद्धा मिल गयी, तो अहंकार मिस्मॅनेज् हो जायगो. याही तरहसु राजस अहंकारकु यदि राजस श्रद्धा मिली, तो आपसमें अच्छी ट्युनिंग् रहेगी. पर यदि सात्त्विक या तामस श्रद्धा मिली, तो गड़बड़ हुए बिना रहेगी नहीं. जैसे वर-वधुकी कुंडली मिल जाय, ऐसे अहंकार और श्रद्धा की कुंडली मिल गयी. यासु व्यावहारिक अनियमितता जो आ रही हे वो कहांसु आ रही हे, वो बात समझवेकी कोशिश करो. अहंकार तो अपनो काम कर रह्यो हे पर श्रद्धाकी वासु ट्युनिंग् हो रही हे के नहीं? जैसे तानपूराको स्वर और गावेवालेको गला मिले, तो ही गायन मीठो लगेगो. नहीं तो नहीं लगेगो. तानपूराको एक आहंकारिक स्वर हे और अपनूंकु वा अहंकारमें श्रद्धा रखके अपने गलासु अलग-अलग स्वर लगाने पड़े हें. पर जब लौटके आवें, तो तानपूराको 'सा' 'म' या 'प' तैयार मिलनो चहिये. वो मिले तो अपन् अच्छी हरकत अपने गलासु निकाल सके हें. ये वाकी मॅकेनिज़म् हे. अपनो गला तानपूराके स्वराहंकारके आधारपे थिरक रह्यो हे. वो तानपूराको या तबलाको अहंकार यदि खंडित भयो तो तुरंत हथौड़ी ठोकके वाकु ठीक करनो पड़े हे. यालिए स्वर-शास्त्रको स्पष्ट विधान हे के जब वेदके स्वर तुम सीख रहे हो और वा बखत जंगलमें यदि कुत्ता सियार गधा आदि रोवे लगे, तो वेद पाठ बंद कर दो. क्योंके यदि तुम्हारे वेदके स्वरमें उनको स्वर मिल गयो तो सत्यानाश हो जायगो. यासु

प्रातिशाख्य अपने स्वरकी इन्स्ट्रक्शनूमें कहे हें के "**श्वगर्दभादि-संह्नादे वेदानध्याय**" उनकु रो लेवे दो. जब वे शांत हो जायें तब तुम वेद पढ़ियो. उनके रोते भये तुमने वेद पढ़्यो तो तुम्हारे गलाको स्वर उनके स्वरमें मिल जायगो और वो बहोत खराब स्थिति हो जायगी. सो श्रद्धाको एक बहोत बड़ो रोल् हे अहंकारके अच्छे व्यवहारमें या बुरे व्यवहारमें. मैं समझूं के ये बात आपकु स्पष्ट होनी चहिये. यालिए भगवान् कहे हें के "**सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत! श्रद्धामयो अयं पुरुषो यो यत् श्रद्धः सएव सः**" (भग.गीता १७।३) हर व्यक्तिकी अपनी श्रद्धा होवे.

एक बात ध्यानसु समझो के बहोत सारे बेवकूफ लोग यों समझते होवें के "हमकु श्रद्धा नहीं हे पर हमारे मां-बापकु श्रद्धा हे. हमकु श्रद्धा नहीं हे पर हमारे गुरुकु श्रद्धा हे. हमकु श्रद्धा नहीं हे पर पत्नी या पति कु श्रद्धा हे, यासु हम ये काम कर रहे हें." ये एक बेवकूफीकी निशानी हे. क्योंके तुम छटकनो चाह रहे हो. असलमें तुम्हारी श्रद्धा राजस हे. न तो तुमकु पूरी श्रद्धा हे और न अश्रद्धा हे. पेंडुलमूकी तरह हिलती श्रद्धा हे. वाके कारण तुम खोटी बात केह रहे हो. मूल बात ये हे के तुम्हारी श्रद्धा राजस हे. स्थिर श्रद्धा नहीं हे, चलायमान श्रद्धा हे, चर्षणीके जैसी. चर्षणीकु जो कहो वो वा बखत जच जाय. फिर पाछो वैसो ही हो जाय. अपने राणाव्यास वा तरहकी श्रद्धासु पीड़ित हे. वैरागीने केह दियो के "मैं चारधामके दर्शन करके आयो. वहां ऐसे-ऐसे दर्शन होवें." बस उनकु लग गयी के "हम भी वैराग्य लें. चारधामकी यात्रा करवे चलो." अहंकार बराबर हे पंडित होवेको. पर श्रद्धा डगमगा रही हे. देखो! कैसे या वार्तामें गीता भरी भयी हे. "**सो राणाव्यास बारह बरसके भये तब उनको एक बैरागीको संग भयो. सो चारों धाम फिरि आयो हतो, सो बद्रिकाश्रमकी बात, जगन्नाथरायजीकी बात, रंगनाथजीकी बात, रणछोड़जीकी बात, माहात्म्य कह्यो. सो राणाव्यास**

अर्धरात्रिकों उठि चले. सो पहले बद्रिकाश्रम पहोंच गये.'' कितनी जल्दी वैरागीकी बातको असर हो गयो! **''तहां बहोत मारगमें दुःख पाये. सो बद्रीनाथजीके दर्शन किये पर सुख न पाये. जो इहां सीत बहोत हे और मारग ऐसो हे जो प्राण जाय''** सो भागे वहांसु. मानें एक आदमी कोई कारणसु कंटाल गयो तो नदीमें आत्महत्या करवे गयो. नदीके पुलपे खड्यो हतो, तो पुलिसने पकड्यो के ''यहां क्या कर रह्यो हे?'' वाने कही के ''आत्महत्या करनी हे.'' पुलिसने पूछी के ''कर क्यों नहीं रहे हो?'' वाने कही ''पानी ठंडो होयगो तो!'' एक बाजु तुम आत्महत्या कर रहे हो और दूसरी बाजु पानीके ठंडे होवेसु डर रहे हो. ये देखो चलायमान श्रद्धा हे. एक ओर अहंकार केह रह्यो हे के आत्महत्या करनी हे. जा तकलीफकु मैं पा रह्यो हूँ, वाकु मोकु जीनो नहीं हे. वा अहंकारपे श्रद्धा कितनी कमजोर के पानी ठंडो होय तो कैसे कूदे? श्रद्धा चलायमान हे. वैरागीके संगसु बहोत माहात्म्यज्ञान भयो पर ठंडी लगी, तो सारो बद्रिकाश्रमको माहात्म्य गायब. **''पाछे श्रीजगन्नाथजीकों गये. तब दरसन करिकें कछुक प्रसन्न भये. पाछें रोगसों मांदे बहोत परे.''** वहां उड़ीसामें जमीनमें पानी बहोत अधिक हे. सब जगह वहांकी संस्कृति ऐसी हे के हर बंगालीके घरमें कमल और मछली पालवेके लिए घरमें तालाब रखें. वो खावेके भी काम आवे. पर वामें मच्छर भी तो होवें. **''सो एक महिनामें आछे भये. तब मनमें कहे जो फेरि मांदो परूंगो, तो मरूंगो.''** सो भागे वहांसु. देखो चार धाममें श्रद्धा हो गयी पर अहंकार नहीं बदल रह्यो हे. **''ताते उहांते चले. सो दक्षिणमें आई श्रीरंगनाथजीके दरसन किये. तब मनमें कहे के इनको दरसन कैसे करों? मुखको करों तो चरणको न होई और चरणको करों तो मुखको न होई''** रंगनाथजीको इतनो बड़ो स्वरूप हे के तीन दरवाजामेंसु तीन तरहके दर्शन होवें. एक दरवाजामेंसु मुखको दर्शन होवे. एक दरवाजामेंसु आधो दर्शन होवे और तीसरे दरवाजामेंसु चरणको दर्शन होवे. अपनकु ये समस्या आज नहीं सता रही हे

क्योंके अपन् दर्शन करवे नहीं जावें, देखवे जावें. इनमें थोड़ो फरक हे. देखवेमें अपन् तमाशा देखें. पर जो लोग दर्शन करवे जाते हते वो क्यों जाते हते, वा कल्चरकु अच्छी तरहसु समझो के जो आज अपने नब्बे प्रतिशत लोगन्में भाव रह्यो ही नहीं हे. तमाशा देखवेको भाव ज्यादा हे. हर मंदिरमें एक तमाशा हो रह्यो हे और सब लोग वा तमाशाकु देखवे जावे हें. जो मंदिर जितने अच्छे तमाशा आयोजित करे, वो मंदिर उतनो प्रचलित हो जाय हे. पुराने लोगन्के भाव ऐसे नहीं हते. पुराने लोग दर्शन करवे जाते तो ठाकुरजीकु निहारते और धारणाकी प्रक्रियासु वो ठाकुरजीकु हृदयमें धारण करते. जब पूरो दर्शन नहीं दे रह्यो हे, तो उनकी धारणा कैसे करनी? वो उनकी मूल समस्या हती. आज अपन्कु पता नहीं हे क्योंके हर मंदिरमें बिजली आ गयी हे. पुराने जमानामें बिजली नहीं हती. ठाकुरजी गर्भगृहमें बिराजते, तो उनके पूरे श्रीअंगके दर्शन आरतीके समयमें ही होते हते. क्योंके आरतीकी प्रक्रियामें ठाकुरजीके चरणारविंदसु आरती शुरु होती, वाके बाद पिंड़लीपे, वाके बाद जांघपे, वाके बाद उदरपे, वाके ऊपर वक्षपे, वाके ऊपर मुखारविंदपे, वाके बाद सारे श्रीअंगकी. वो आरतीकी प्रक्रियासु ठाकुरजीके एक-एक अंगको दर्शन होतो हतो और वा प्रक्रियासु ठाकुरजीके स्वरूपकी धारणा प्रकट होती हती. वा स्वरूपकी धारणा करवेके बाद वाको ध्यान करते. अब जब धारणा ही नहीं हो पावे, तो ध्यान कैसे करोगे. और वो धारणा आरतीके बखत प्रकट होती हती. जब मैं बड़े मंदिरमें हतो, तो देखतो हतो के आरतीके समयमें घंटा बजे, झालर बजे, जय-जयकार होवे, तो कई लोग ऐसे ॲन्गलूसु खड़े होते हते के ठाकुरजीके बजाय आरतीके दर्शन होवें. अरे भाई! आरतीके दिखवेसु तुम्हारो कौनसो प्रयोजन हल हो रह्यो हे! आरती तो ठाकुरजीके प्रत्येक अंगकु दिखावेके लिए हे. देखवेके लिए थोड़े ही हे! पर क्या हे के आरतीके समय जब झालर घंटा बजे, तो बहोत म्युजिकल् वातावरण होवे और वो सबकु ख्यालमें पहले आ जाय पर ठाकुरजी

जाकी आरती उतर रही हे, वे नदारद हो जाय. नब्बे प्रतिशत ये लोगनूकी समस्या हे. ये अपने मार्गकी बात मैं नहीं कर रह्यो हूँ, हिन्दु-मानसकी बात कर रह्यो हूँ. या तरहसु अपन् पीड़ित हें. अपनेकु पता ही नहीं हे के आरतीको हेतु क्या हे? लोगनूकु एक रोमांच होतो हतो जब ठाकुरजीकी आरती होती हती तब. वा आरतीके बखत ठाकुरजीके एक-एक अंगको दर्शन करवेकु मिले और वो एक-एक अंगकी धारणा बनती चली जाय. वामें भी एक ये अनुशासन रख्यो जातो हतो के सबसु पहले चरणको आंटा आवे, शरणागतिके रूपमें. फिर वो धीरे-धीरे ऊँचो होके मुखारविंद तक जावे मानें भक्ति तक जाय. शरणागतिकी धारणासु भक्तिकी धारणा करवेकी रीति हती. फिर एक शरणागतिसु भक्ति तकको एक आंटा लियो जातो. वो पूरे समाधिके जैसो होतो हतो. ये मंदिर वा योगप्रणालीके जैसे हते. प्रसाद बेचवेके मंदिर नहीं हते. एक आखी समानांतर व्यवस्था खड़ी करी हती योगकी. जो योगकी यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि हे, वा धारणा ध्यान समाधिकी आखी एक प्रक्रिया मंदिरनूने इवोल्व् करी हती और साधारण जनताके लिए बहोत बड़ी याकी देन हती के जो आंख मीचके नहीं बल्कि आंख खोलके योग करते हते. पर आंख खोलते हते प्रभुके विग्रहपे. खुली आंखको योग करते हते. दूसरे अर्धोन्मीलित आंखको योग करते हते. और इन मंदिरनूने अपनकु खुली आंखके योगकी ट्रेनिंग् दी. वे सब व्यवस्थाएं खंडित हो गयी. आजकलकी कथा बिल्कुल विपरीत हो गयी हे. वा ध्यानके लिए कोई आवाज़ आपकु विचलित न करे. कोई रूप आपकु विचलित न करे, वाके लिए वातावरण ऐसो बना दियो जातो के वा समय आपकु कोई और चीज सुनाई नहीं दे, सिवाय ठाकुरजीके. ये एक यौगिक प्रक्रिया हती. आपकु लगेगो के मैं कोई बंडल् मार रह्यो हूँ. ऐसो नहीं हे आप तंत्रशास्त्र पढ़ो, तो या सारी विधिकु योगचर्या बतायो गयो हे. वामें या पूजाकी विधिकु योगचर्या ही बतायो गयो हे.

वामें योगपाद आवे हे. ये अपनो सेटअप् हतो. वालिए बेचारे राणाव्यासकु तकलीफ भयी. अपनूकु तकलीफ नहीं होवे. मैं अपनी बात बताऊँ के मैं रंगजीके दर्शन् करके आयो. अपनो क्या गयो? मुखारविंदके दरवाजापे खड़े होके मुखारविंदको दर्शन कर लियो. नीचेके हिस्साके दर्शन दूसरे दरवाजासु कर लिये और चरणाविंदको दर्शन छेल्ले दरवाजासु कर लिए. एक तमाशा हतो सो अपन् भी देखके आ गये. यालिए मोकु तकलीफ नहीं भयी पर राणाव्यासकु तकलीफ भयी. वा तकलीफको वर्णन यहां कर रहे हैं. देखो, बातें बहोत छोटी-छोटी हैं पर उनकी मानसिकताके तलाबमें उतरके देखें तो वामें बहोत गंभीरता दिखलाई देवे हे. यालिए वो केह रहे हे के **"इनके दर्शन कैसे करों? मुखको करों तो चरणको न होई और चरणको करों तो मुखको न होई. ये तौ बहोत बड़े हे, ताते अब द्वारिका चलूं."** देखो श्रद्धा पाछी डगमगा गयी. जा हेतुसु आये सो हेतु तो यहां पूरो हो ही नहीं सके हे. **"सो द्वारिका आये. सो श्रीरणछोड़जीके दरसन किये. सो रणछोड़जीके चरण छूइवेको कहे. तब उहां पंडाने कही इतनो द्रव्य खरचो तब चरन छूवो. तब राणाव्यास मनने विचारे जो यहां ब्रह्मचारी द्रव्यके लिए ठाकुरजीको चरण छूवन देत हे और ठाकुरको द्रव्य ले जाई."** देखो, देवलक वा बखत भी हते. अब गोस्वामी बालक कहे हें के देवलक होनेमें कोई दोष नहीं हे. देखो, यहां दोष बतायो हे. **"ठाकुरजीको द्रव्य ले जायें, ताते यहां हू रहनो उचित नाहीं"** जहां ठाकुरजीके नामको द्रव्य लियो जातो होय, वा गांवकु तो पहले छोड़ देनो चहिये. ये राणाव्यास हे. **"तातें यहां रेहनो उचित नाहीं, काहेतें जो जहां चित्तमें दोष उपजे उहांके रहे कल्याण न होय, बिगार होई. यह विचारि द्वारकासों चले, सो गोधरामें अपने घर आये"** हिंदीमें कहावत हे के *घरके बुद्धु घरको आये जान बची सो लाखो पाय.* वैरागीके एक संगसु इतनो बड़ो चक्कर काटके आये पर श्रद्धा कहीं भी टिकवे नहीं देती हती उनके अहंकारकु. उनको अहंकार असंतुष्ट रह्यो. अहंकारमें कोई समस्या हती

के नहीं वो बादमें विचारेंगे. पर श्रद्धाकी बहोत भारी समस्या हती के जा तरीकेको अहंकार हतो, वा प्रकारकी श्रद्धा नहीं हती. जा तरीकेकी श्रद्धा हती, वा तरीकेको अहंकार नहीं हतो. उनको अहंकार कैसे-कैसे दोष देख रह्यो हे, चारो धामनूमें! कौनसी प्रकृतिके दोष देख रह्यो हे, श्रद्धा क्यों नहीं हो रही हे? क्योंके अहंकारके जैसी श्रद्धा नहीं हे.

यदि अहंकारके जैसी श्रद्धा होय, तो एक बात बताऊँ के दयाराम भाईकु पढ़के देखो जामें दयाराम भाई कहे हे के गुरु क्रोधी होय, तो नरसिंह समझो. गुरु लोभी होय, तो वामन समझो. उनको वैष्णवताको अहंकार और वैष्णवताकी श्रद्धा कैसी हे कि गुरुके सब दोषनूमें वो भगवान्‌के अवतार देख रहे हे. गुरुमें क्या-क्या खोट हें वे सारे उनने अवतारनूमें खोज निकाले हें. देखो, उनको गुरु-भक्तिको अहंकार और गुरु-भक्तिकी श्रद्धा एक दूसरेसु ट्यून्ड् हे! एक हास्यप्रसंगके रूपमें दयाराम भाईके दोहा जरूर पढ़ने चहिये. बहोत मजा आवे. अपनूकु एक अन्तरदृष्टि तो मिले हे के जाकी वो श्रद्धा हे वो वाकु कैसे देख रह्यो हे और जाकी श्रद्धा नहीं हे, वो वाकु कैसे देख रह्यो हे! दयाराम भाईकी श्रद्धा यदि राणाव्यासके जैसी होती तो वो भी गुरुमें दोष देख सकते होते. अपने यहां पद आवे हे *मेरो पिया रसियारी, सुनरी सखी तेरो दोष नाहीं* वहां दोष देख ही नहीं रहे हे. ये सारे लफड़ामें गुण देख रहे हे. ये श्रद्धा और अहंकार की बात हे. श्रद्धाके पर्स्पेक्टिव्‌में अहंकार कैसे-कैसे बोले हें, ट्यून्ड् होय तो कैसे बोले और ट्यून्ड् नहीं होय तो कैसे बोले! या सौन्दर्यकु समझनो चहिये.

मैं यामें कोई बातकी निंदा अथवा स्तुति नहीं कर रह्यो हूँ. या सारी बातकु मैं समझावेके लिए केह रह्यो हूँ के अहंकार और श्रद्धा को आपसी रोल् क्या हे और कैसे वाके मल्टीप्लिकेशन् हो

रहे हें. नौ प्रभेद कैसे हो रहे हें, उनकु मैं उदाहरण देके समझा रह्यो हूँ. आजकल यू-ट्युबमें हर चीज वायरल् हो जाय, याके लिए मैं केह रह्यो हूँ के निंदा और स्तुति ये नहीं हे. वैसे मोकु या बातकी चिन्ता नहीं हे. हो जाय तो हो जाय. अब आप समझ सको हो के श्रद्धा और अहंकार के आपसी तालमेलके कारण बाके कितने फंक्शनल् वॅरियेशन् हो सके हें.

(अहंकारके अनुभवपे विश्वास-निष्ठाको भी प्रभाव)

एक और महत्त्वपूर्ण बात हे यामें देखवेकी के यद्यपि गीतामें नहीं कही गयी हे पर कॉमन्-सॅन्ससु अपन् समझ सकें के अपने अनुभवकी वॅराइटी हे. एक कैसो के अपने तत्कालिन् पर्सेप्शन्को अनुभव. जैसे ये थर्मस् हे और ये आपकु दिख रह्यो हे. ये इमिजियेट् पर्सेप्शन् हे. याकु थर्मस् जानवेके लिए आपकी आंख और ये थर्मस् पर्याप्त हे. एक अनुभव ऐसो होवे जो तत्काल नहीं होवे पर अनुमानके आधारपे होवे. जैसे कहीं पहाड़पे धुआं दिख रह्यो हे तो अनुभवके आधारपे कह्यो जा सके के वहां आग लगी भयी हे. ये इमीडियेट् पर्सेप्शन् न होके मीडियेट् पर्सेप्शन् हे. धुआं दिख रह्यो हे वो इमीडियेट् पर्सेप्शन् हे पर वाके कारण आगको अनुमान हो रह्यो हे, वो साक्षात् ज्ञान नहीं होके पारंपरिक ज्ञान हे. और या परंपरामें मीडियेशन् खाली एक ही हे. वो हे के आग जामेंसु धुआं निकल रह्यो हे और वो धुआं आपकु साक्षात् दिख रह्यो हे पर आग आपकु साक्षात् नहीं दिख रही हे. सो अन्तराय केवल एक अनुभवको हे. धुआंको अनुभव और अन्तरायसु आगको अनुभव. वाके बाद अपने यहां, वैसे चौदह प्रमाण हें. उतनो अपन् यहां विवेचन करें तो अन्त ही नहीं आयगो. पर अपने यहांकी जो प्रमाण-पद्धति हे वाके हिसाबसु केवल थोड़ी चर्चा करूँगो के अनुमानके बाद 'शब्द' आ रह्यो हे, शब्दको भी अनुभव अपनकु होवे. वो अनुभव एक अन्तरायको नहीं हे पर द्वयन्तरित अनुभव हे. क्योंके जब अपन् शब्द सुने हें, तो

अपनूकु शब्द ही सुनाई दे हे पर अर्थ सुनाई नहीं दे हे. जैसे मैं कहूँ के ये थर्मस् हे और मैं दिखा भी रह्यो हूँ, सो आपकु शब्दसु सुनाई दे रह्यो हे और थर्मस् दिखलाई दे रह्यो हे पर यदि ये थर्मस् सामने नहीं हे और मैं कहूँ के "मेरे पास थर्मस् हे." आपकु 'थर्मस्' शब्द ही तो सुनाई दे रह्यो हे. वा शब्दको अर्थ आपकु सुनाई नहीं दे रह्यो हे. आपकु सुनाई दे रह्यो हे शब्द के जाको अर्थ आपने पहलेसु सोच रख्यो हे, समझ रख्यो हे, वो समझ्यो भयो अर्थ आपकु याद आवे और वाके बाद आप सोचो के ये शब्द्कु याद दिवावेवालो जो वाको अर्थ 'ये' हे. देखो दो अन्तराय हो गये. शब्दको सुनाई देनो, वाको अर्थको याद आनो और याद आवेके कारण वा अर्थको ज्ञान होनो. जैसे मैं आपकु कहूँ. एकदम आपकु समझ आ जायगो "मेरे पास एक प्लास्टिक्की बंसी हे." आपकु तो ये पता नहीं हे पर आपकु बात तो समझ आ ही रही हे. यदि मेरेपे आपकु विश्वास हे तो आपकु बात खोटी भी नहीं लगेगी. पर या अनुभवमें अन्तराय कितनो हो गयो? सबसु पहले तो आपकु मेरे ऊपर विश्वास होनो चहिये. वा विश्वासके बाद आपकु जो शब्द सुनाई दे रह्यो हे, वाको अर्थ आनो चहिये. 'प्लास्टिक्'को अर्थ क्या और 'बंसी'को अर्थ क्या, वो आपकु याद आयगो. वाके बाद आपकु समझ आयगी के मेरे पास प्लास्टिक्की बंसी हे. फिर आप बम्बई आओगे, तो आप पूछोगे के "दिखाओ बावा, वो बंसी कहां हे?" कितनो अन्तराय भयो? आप जो मेरी ध्वनि सुन रहे हो और वा अर्थकी अनुभूतिमें कितनो अन्तराय हो गयो? एक विश्वासको, एक ध्वनिके अर्थके स्मरणको और अर्थके स्मरणके बाद वाके बोधको. ये तीन अन्तराय हो गये. अनुभवकी प्रक्रिया या प्रकारकी हे.

जैसे अनुभवमें या तरहकी प्रक्रिया हे, वैसे ही एक प्रक्रिया और हे. वो हे के जाको अपनूकु साक्षात् अनुभव होतो होय वाके

लिए अनुभवके साथ चलती अपनी फीलिंग्स् विश्वासकी हे. जैसे ये वस्तु आपकु साक्षात् दिखे, तो आप विश्वासके साथ केह सको के "हां! थर्मस् हे" यदि कोई पूछेगो, तो आप विश्वासके साथ केह सकोगे के "हां! हमने आंखसु थर्मस् देख्यो हे" ये फीलिंग् प्रत्यक्षानुरोधी हे. अब मैंने आपकु ये बात कही के मेरे पास प्लास्टिक्की बंसी हे, याको विश्वास आपकु नहीं हो सके. श्रद्धा हो सके. ये प्रत्यक्षात्मिका नहीं हे, ये एक प्रकारकी जंप् हे. आप एक लॉंग-जंप् लगा रहे हो के क्यों श्याम बाबा खोटो बोलेंगे? केह रहे हें, तो होयगी. ये विश्वास नहीं हे, श्रद्धा हे. हर अनुभवके साथ, कुछके साथ विश्वास चल रह्यो हे, कुछके साथ श्रद्धा चल रही हे और कोई अनुभवके साथ निष्ठा चले हे.

अब कौनसे अनुभवके साथ निष्ठा चले, वा बातकु ध्यानसु देखो. जा अनुभवकु पैदा करवेकी कन्डीशन् आपके हाथमें हे. जब भी अनुभव करनो हे वो अनुभव आप कर सकते होओ, तो वा अनुभवमें आपकु विश्वास और श्रद्धा की जरूरत नहीं हे, वामें आपकी निष्ठा पैदा हो जायगी. जो लोग गाना अथवा पेइन्टींग् सीखें उनकु ये बात अच्छी तरहसु समझमें आयगी. आपने यदि कोई सुर लगायो हे और आपने वाको खूब रियाज़ कियो हे और फिर आपकु कोई कहे के मालकोसके सुर लगाओ, तो निष्ठासु आपको सुर लगेगो. लगायो हे, तो लगेगो. नहीं लगायो हे, तो नहीं लगेगो. निष्ठा कब बोलेगी के जब ये अनुभव होय के मालकोसके सुरमें गलाकु कहां-तक पहुंचानो हे के मालकोसके स्वर लगे. ये आयगो यदि वो स्वर आपने स्वयं निकाल्यो होयगो, तो निष्ठा होयगी. नहीं तो निष्ठा नहीं होयगी. ये तीन फीलिंग्स् हे, अनुभवके साथ चलती भयी. मैंनें तो आपकु खाली श्रद्धाकी बात बतायी. पर बात समझो के विश्वासके भी राजस तामस सात्त्विक भेद हो सके और निष्ठाके भी राजस तामस सात्त्विक भेद हो सके हें. अब अहंकारके

कितने भेद हो गये? ये आप गणित लगाके देख लीजियो. खाली अहंकार और श्रद्धा के नौ प्रभेद हो रहे हें तो वामें विश्वास और निष्ठा के जुड़वेपे कितने हो जायेंगे! कितने वाके मॅलफंक्शन्के और कितने वाके वॅलफंक्शन्के, याके चांसिस् भी बढ़ते जायेंगे. जब आपकु अहंकारको डायग्नोसिस् करनो हे तो कितनी सारी पॉसिब्लीटीको विचार करनो पड़ेगो? यामें अच्छे-अच्छेको दिमाग चकरा जाय. कौनसी सिम्पटम् आपकी हे, वाको पता लगाके दवा देनी, ये कितनो कठिन काम हे, ये बात आप समझ सको. याकु समझे बिना आपने यदि दवा दे दी तो *नीम हकीम खतराए-जान*. आधो वैद्य, वैद्य नहीं होके यम होवे. क्योंके वाकु बीमारीकी समझ तो हे नहीं और दवा बांट रह्यो हे. वाके कारण आदमी मरे. अपने हिन्दुस्तानमें अस्सी प्रतिशत लोग 'नीम हकीम' हें. क्योंके तुम्हारे अनुभवके आधारपे कोई दवाईसु तुम्हारो दर्द ठीक हो गयो, तो आवश्यक नहीं हे के हमारो दर्द भी वा ही प्रकारको होय तो वा दवाईसु ठीक कहांसु होयगो? एक माथा दूखवेके हजार कारण हो सकें. कफके कारण दुःख सके. आधासीसीके कारण, ब्लडप्रेशर्के कारण, ऐसे कई कारण हो सकें. एक दवाई तो चलेगी नहीं न!

(सात्त्विक यज्ञसु अहंकारको डायल्यूशन्)

जब अहंकारकी इतनी वॅराइटी हें, तो हर बातकी सावधानी बहोत गंभीर विषय हो जाय हे. श्रद्धा विश्वास और निष्ठा के ओर अपने अहंकारको जो अनुभव हे वाके साथ अपनकु अपने कर्तव्यको बोध होवे. वा कर्तव्यके बारेमें भगवान् गीतामें आज्ञा कर रहे हें, यज्ञके रूपमें. आज अपन् एक अग्निकुंड बनाके वामें घीकी आहुति देनो ही यज्ञको अर्थ समझ रहे हें. यज्ञको अर्थ वो ही नहीं हे, वाको अर्थ बहोत व्यापक हे. 'यज्ञ'को अर्थ हे **''यज् = देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु''** (पाणि.धा.१।११५७) देवको पूजन भी यज्ञ हे. आपसमें मिलनो-जुलनो भी यज्ञ हे, कोईकु कुछ दान

देनो भी यज्ञ हे. इन सब अर्थनकु ध्यानमें रखके भगवान् केह रहे हें "**अफलाकांक्षिभिः यज्ञो विधिदृष्टो यः इज्यते यष्टव्यमेव इति मनः समाधाय सः सात्त्विकः**" (भग.गीता १७।११) ये यज्ञ सात्त्विक राजस तामस तीनों प्रकारको हो सके हे. कौनसे देव पूजनकु कौनसी संगतिकु कौनसे दानकु? ये तीनों प्रकारके यज्ञ भी राजस सात्त्विक तामस हो सके हें. भगवान् केह रहे हें के जा यज्ञ (माने देवपूजन संगतिकरण और दान)के करवेसु तुमकु कोई फलकी आकांक्षा नहीं हे वो सात्त्विक यज्ञ हे. अफलाकांक्षी केहके भगवान्ने ममताकु डायल्यूट कियो हे. यज्ञकु करवेसु पहले तुमकु अपनी ममताकु डायल्यूट करनो आनो चहिये. वो हो सके हे जब तुम फलाकांक्षापे काबू पाओगे तब. फल चाहवेके लिए यज्ञ नहीं कर रह्यो हूँ. यज्ञसु जो फल मिलेगो वो ले लऊँगो. "**विधिदृष्टो यः इज्यते**" वो यज्ञ जो मोकु अपने अहंकारसु दिखलाई दे रह्यो हे, वा प्रकारको यज्ञ मैं नहीं करूँगो. अपितु जा प्रकारको शास्त्रमें वर्णित हे, वा तरीकेको यज्ञ करूँगो. यहाँ अपने अहंकारकु डायल्यूट करवेकी बात भगवान् विधिदर्शनसु बता रहे हें. या प्रकारको यज्ञ मोकु करनो ही हे. या प्रकारके मनके समाधानके साथ जो यज्ञ कियो जाय वो यज्ञ सात्त्विक हे. वो देवपूजन सत्संग दान सात्त्विक हे. यदि देवसु कोई सौदाबाजी करनी हे, तो वो पूजा सात्त्विक पूजा नहीं हे. ऐसे ही सौदाबाजीमें कियो गयो सत्संग अथवा दान सात्त्विक सत्संग और दान नहीं हे.

(अहंता-ममताकी मिस्-मॅनेजमॅन्ट् राजसयज्ञसु)

वाके बाद भगवान् राजसको वर्णन कर रहे हें. "**अभिसन्धायतु फलं दम्भार्थमपि चैव यद् इज्यते भरतश्रेष्ठ! तं यज्ञं विद्धि राजसम्**" (भग.गीता १७।१२) जहां तुमने फलकी आकांक्षा करी के ये यज्ञ हम करें तो ये फल हमकु मिल जायगो, वा बखत तुम्हारो मन यज्ञ और फल के बीच पेन्डुलम्की तरह राजसभावसु डोल रह्यो हे. वाको अर्थ क्या? वहां तुम्हारी गिनती शुरु हो जायगी के पाव

यज्ञ कियो हे तो पाव फल तो मिलनो चहिये. आधो कियो हे तो आधो फल मिलनो चहिये. पूरो हो जायगो तो पूरो फल मिलनो चहिये. या तरहकी तुम्हारी यज्ञके बीचमें गिनती चालू रहेगी.

एक मजेदार बात बताऊँ. कभी बापा-बापीके कीर्तनके प्रोग्राम्में मैं गयो. अध्यक्ष होवेके कारण मोकु एक बाजु कुर्सीपे बैठा दियो हतो और वा बाजु सर्व कीर्तनकार बैठे हतें और दूसरी बाजू पखावज झांझ वाले बैठे हतें. बीचमें मैं बैठ्यो हतो. जब एक तरफ पखावजवाले ताल बजा रहे हतें तो झांझवाले झांझके बीचमें कुछ बात कर रहे हतें. मैंने कान लगाके सुनी के कीर्तनके बीचमें ये बात क्या चल रही हे. "खाली पांच रुपया ही देवेवाले हैं." "शुं फरक पड़े छे. पांच तो मले छे ने!" वा बाजू झांझ चल रही हे. ऐसे कीर्तनमें ये बात चल रही हती. ये राजस श्रद्धा हे. देखो, सत्संग तो हो रह्यो हे कीर्तनको पर वामें राजसभाव कैसे खेल खेले हे, ये देखो. मोकु तो चिन्ता हो गयी के ऐसे कीर्तनसमारोहमें मोकु अध्यक्ष बनायो हे! "**अभिसन्धायतु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्**" फल कुछ नहीं चहिये, कुछ लेनो-देनो नहीं हे पर व्यक्तिकी एक आदत होवे दम्भ करवेकी. वो आदत हर व्यक्तिकु होवे. वामें मैं भी अपवाद नहीं हूँ और आप भी अपवाद नहीं हो. बुरो मत मानियो. अपन् सब कुछ-कुछ दम्भ तो करें ही हैं. पर एक घर तो डाकन भी छोड़े हे. व्यवहारमें अपन्कु जो कुछ भी दम्भ करनो पड़तो होय, वो ठीक हे. पर कमसु-कम जब याग कर रहे हो, जब सत्संग कर रहे हो, जब कुछ दान कर रहे हो, वो तो दम्भार्थ मत करो! 'दम्भ' मानें दिखावाके लिए. तुम्हारो मनको भाव नहीं हे केवल दिखावाके लिए कर रहे हो. कमसु कम एक घर तो डाकन भी छोड़े. ऐसे या घरकु छोड़नो चहिये. यज्ञ हे संग हे दान हे, कमसु कम उतनो तो अपन् दम्भ-दिखावाके लिए ना करें. तब सात्त्विक होवेके चान्स् हे पर वहां भी यदि अपनी आदत

नहीं छोड़ पाते होय तो हो सके के वो यज्ञ होय, दान होय, संग होय पर वो राजस हे. भगवान् साफ लेबल् लगा दे रहे हें के या तरहको यज्ञ देवपूजन संग दान ये राजस हे, सात्त्विक नहीं हे.

जा बखत अपन् दम्भ कर रहे हें वा बखत अपनो अहंकार मिस-मॅनेज् हो रह्यो हे. जा बखत अपन् "अभिसन्धायतु फलम्" केह रहे हें, अपन् एक घर भी छोड़ नहीं पा रहे हें. वो अपनी ममताको मिस्-मॅनेज्ड् व्यावहारिकरूप हे. व्यावहारिक अहंता, फन्क्शनल् अहंता कैसे मिस्-मॅनेज्ड् हो रही हे, वो या तरहसु हो रही हे के तुम्हारी अहंता अब तुमकु बता रही हे. हमारे एक परिचित हें, मैं वाको स्वयं साक्षी नहीं हूँ पर जो साक्षी हते उनने मोकु ये बात बतायी. सुबह-सुबह दोनों महाराज बड़े चैनसु सो रहे हतें कोई हवेलीमें. वा गामके बड़े सेठने खबर केहवायी के "महाराजकु खबर करो के हम आये हें" दोनों सोते भये मिले कैसे? क्योंके ऐसो न होय के सेठपे बुरो प्रभाव पड़े. एक महाराज तो सोते ही रहे के "आयो हे सेठ, तो अपन् क्या करें. ऐसे बखत क्यों आये?" दूसरे जो हते वो छीवे नहीं गये, नहाये नहीं, पर तिलक लगा लियो और संध्या करवे बैठ गये के सेठजी आये हे, तो क्या करें? खवासकु कही के "अब बुलाओ" अरे भाई सेठके लिए संध्या कर रहे हो के सूर्यके लिए कर रहे हो! नहीं नहाये हो, तो नहीं नहाये. सेठके आवेपे तिलक लगा लेनो. नहाये बिना संध्या करवे और बैठ गये. सेठजीपे गलत इम्प्रेशन् नहीं पड़नी चहिये. मतलब अपनी सही इम्प्रेशन्को अहंकार कितनो! मेरी गलत इम्प्रेशन् नहीं पड़नी चहिये, ये कितनो बड़ो अहंकार हे! जहां भी अपन् कर रहे हें, वो अपने अहंकारको विस्फोट हे. भई सेठकु बुरी नहीं लग जाय. 'फलाकांक्षी'में और "अभिसन्धायतु फलम्"में ममताको विस्फोट हे. देखो, लगातार वो ही चल रह्यो हे. सत्त्व रज तम

की सारी वॅराइटीमें अहंता और ममता के मॅनेजमॅन्टकी बात आ रही हे. ये गीताकी देखवे लायक बात हे. अपन् इन शब्दन्में बहक जाये हें. उन शब्दन्की तहमें जाओ, तो पता चले के ये सारी बात अहंता-ममताके इर्द-गिर्द ही चल रही हे.

(तामस यज्ञके कारण अहंकारकी जड़रूपता)

"**विधिहीनम् असृष्टान्नं मन्त्रहीनम् अदक्षिणं श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते**" (भग.गीता १७।१३) तुम्हारो अहंकार इतने इनर्शियामें गयो हे मानें इतनो जड़ हो गयो हे के तुमकु ये भी दरकार नहीं हे के जो तुम कर्म कर रहे हो, वो कर्म करवेकी विधि क्या हे? "क्यों देखें, क्या जरूरत हे, जैसे आयगी वैसे करेंगे." पहली बार सिद्धान्त-वचनावली अपन्ने प्रकट करी. एक बालकको फोन् आयो मेरे पास के "आपको प्रयोजन क्या हे सिद्धान्त-वचनावली प्रकट करवेको?" मैंने कही के "मेरो प्रयोजन ये हे के अपन् महाप्रभुजीके सम्प्रदायकु जी रहे हें तो महाप्रभुजीके सिद्धान्तकी समझ अपनूकु सुधार लेनी चहिये." "हमारी समझकु सुधारवेको क्या आपने ठेका लियो हे?" मैंने कही "बात तो आपने सच्ची कही. पर एक बात थोड़े ध्यानसु समझो के आपकी समझ सुधारवेको ठेका मैंने लियो नहीं हे और सम्प्रदायकु गलत ढंगसु चलावेको ठेका मैंने आपकु दियो भी नहीं हे." उनने फोन् बंद कर दियो. मैं कहाँ केह रह्यो हूँ के मैंने ठेका लियो हे. पर याको अर्थ ये तो नहीं हे के आपके पास सम्प्रदायकु गलत ढंगसु चलावेको ठेका हे. न तो मैंने ठेका लियो हे और न दियो हे के सम्प्रदायकु जैसे चलानो हे वैसे चलाओ. वाके लिए मैंने सिद्धान्त-वचनावली प्रकट करी हे. अपन् समझ सके के विधिहीन-सम्प्रदायकु जीनो हे. वाकी विधि क्या हे, वाकी परवाह नहीं. ये हे तामस अहंकारको विस्फोट. "**असृष्टान्नं मन्त्रहीनम्**" हर कर्मके साथ कर्मको कुछ मंत्र हे. आजकी तारीखमें मंत्रको रोल् अपनूकु समझ नहीं आवे. अपन् वाकु रीचुअल् समझें

पर कोई आर्मीकु मार्च करनो हे तो मार्चिंग् सॉंग् होवे ही हे. झंडा फहरानो हे, तो वाकी नॅशनल् अँथम् होवे हे के नहीं? लेबर् जो वजन उठाके ले जाय वो भी 'हैया-हो, हैया-हो' करके ही तो वजन उठाके ले जाय हे. ये सब मंत्र हें. जैसे कराटेमें भी आवाज निकाले हें. हर कामके कुछ मंत्र हे, जैसे अपन् प्रेमालाप कर रहे हें, तो वाके भी कुछ मंत्र हे. प्रेम करते बखत कोई तो नहीं कहे हे के 'तेरे हाथ मरोड़ूं, तेरी टांग तोड़ूं'. वहां वो मंत्र गलत हो जायगो. आप प्रेम कर रहे हो, तो प्रेम करवेके मंत्र बोलने पड़ेंगे. ऐसे जो भी कर्म आप कर रहे हो, वाके कुछ मंत्र हे. वो मंत्र बोलवेसु क्या होवे हे? वा क्रियामें एक गहराई-गम्भीरता आवे, अपनी वा क्रियाकु करवेकी, अपनी वा कार्यकी समझकी और अपने ऑटो-सजेशन्की. *कदम-कदम बढ़ाये जा खुशीके गीत गाये जा.* चलवेमें यासु गंभीरता आ रही हे. मंत्रको ये मूल रोल् हे. यालिए शास्त्रमें कह्यो गयो हे के "**यस्यै देवतायै हविः गृहीतं स्यात् तां मनसा ध्यायेत् वषट् करिष्यन्**" (निरु.८।२२) जा देवताकु तुम आहुति दे रहे हो वो ऐसे ही मत दे दो, वाके लिए मंत्र बोलके आहुति दो. आज अपन् मंत्रकु रीति-रिवाज समझे हें क्योंके मंत्र अपनी जीवन-चर्यामें नहीं रेह गये हे, समस्या ये हे. पर जो अपनी जीवन-चर्या हे, वामें मंत्र हे के नहीं हे? जैसे लड़ाई अपन् कर रहे हें, तो गाली-गलोच भी एक मंत्र हे. "अबे साले तू कौन होता हे? किसकी औलाद, उसकी औलाद.." ये सब लड़ाईके मंत्र हे. गाली-गलोच करके लड़ोगे तो लड़वेको सच्चो मजा आयगो. चुपचाप बैठके लड़ाई कर रहे हो, तो लड़ाईको मजा ही खतम. ये सब मंत्र हे पर इनकु अपन् रिचुअल् नहीं माने हें पर अपने मंत्रनकु अपन् रिचुअल् माने हें. जितने अपने यहांके कीर्तन हे, ये अपनी सेवाके मंत्र हे. उन कीर्तनकु गाके जा बखत अपन् सेवा करें, वा बखत अपने कीर्तनमें प्रकट होती जो भावना हे, वासु एक ऑटो-सजेशन् मिले हे, बिल्कुल वाही तरह जैसे लड़ाई करनी होय, तो गाली दें. पर

यदि आप गूंगे-बहरेकी तरह सेवा करते ही चले जा रहे हो, तो वो सेवा मंत्रहीन और क्रियावत् होयगी. मानो हम कोईके यहां भोजनकु गये होंय और वहां कोई एक शब्द भी नहीं बोले. रोटी चहिये तो रोटी फेंक जाय, शाक चहिये तो शाक फेंक जाय. अरे भई! कुछ परोसवेके मंत्र होवे हे के नहीं "क्या अच्छो लग्यो, क्या लाऊँ?" ये सब मंत्र हे परोसवेके. वो मंत्र यदि बोलके परोसो तो खावेवालेकु स्वाद आवे. वो रिचुअल् नहीं हे.

यालिए भगवान् केह रहे हें के मंत्रहीन जो कर्म हे वो तामस हे. ये यज्ञ दान और संग ही तामस हे, ऐसो नहीं हे, ये युद्ध भी तामस हो सके हे, यदि मंत्रहीन हे तो. यदि मंत्रसहित हे तो युद्ध भी सात्त्विक हो सके हे क्योंकि वाको अनुरूप तो होनो चहिये. आप गीताके आरंभमें देखो तो सबनूने अपने-अपने शंख बजाये हें. वो युद्धको मंत्र हतो. आज बिगुल या सायरन् बजे हे युद्धको. उन मंत्रन्के साथ जा बखत युद्ध होवे तो युद्धको एक वास्तविक स्वरूप आवे. ऐसो ही यज्ञादि पूजनादि मंत्रके साथ जब होवें तो सामनेवालेकु लगे के जो मेरो पूजन कर रह्यो हे, जो मोकु कछु दे रह्यो हे, जो मेरे साथ संग कर रह्यो हे वाको यामें इन्वॉल्वमॅन्ट् हे. नहीं तो क्या होयगो के आप अपनो डिस्-इन्वॉल्वमॅन्ट् प्रकट कर रहे हो. जैसे ही आपको डिस्-इन्वॉल्वमॅन्ट् प्रकट हुओ, तो सामनेवाली पार्टीमें भी वो ही प्रतिक्रिया स्वरूप आ जाय हे. ये सारी प्रक्रियाएं तामस नहीं बनवे देवेकी हें. ये कितनी सुविचारित बात हे अपने यहांकी! अपन् याकु कर्मकाण्ड करके खपा दे हें. ये कर्मकाण्ड नहीं हे, इनके पीछे एक बहोत बड़ो मनोवैज्ञानिक कारण हे. ये बात अपनूकु समझनी चहिये. यालिए गीतामें केह रहे हें के "**विधिहीनम् असृष्टान्नं मन्त्रहीनम् अदक्षिणं श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते**" (भग.गीता १७।१३) वो कर्म तामस हो जाय.

अब देखो अहंकारकी रेंज. जा अहंकारसु आप जो यज्ञ कर

रहे हो, देवपूजन सत्संग दान आदि कर रहे हो, वाके सात्त्विक-राजस-तामस भेद पाछे आ रहे हैं. अब आप गणित लगाओ के ये अहंकार सहस्र-शीर्ष हे के नहीं. आज अपन् यहां रखें. थोड़ो और विचार यामें कल भी करेंगे. ये अपन्ने वार्तामें देख्यो के अहंकार और श्रद्धा की ट्यूनिंग् नहीं होवेपे कैसो फ्लक्चुएशन् आ रह्यो हे और मिस्-मॅनेजमेन्ट् हो रह्यो हे. वैसे वार्ता और या मिस्-मॅनेजमेन्ट् की जो बात हे, वो भी अपन् कल देखेंगे के राणाव्यासकी जो कथा हे, वो अपन् सबकी व्यथा कैसे हे!

(असत्कर्म-अज्ञान-अरतिके कांटाको सत्कर्म-ज्ञान-रतिके गीतोक्त कांटासु उपचार)

प्रश्न : "यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः 'सद्'इति च उच्यते, कर्म चैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधीयते" (भग.गीता १७।२७) या श्लोकमें अहंसु गवर्न होते भये कौन प्रकारके कर्म सत् हें जिन कर्मनूसु आगे होवेवाले धर्म और फिर अर्थ काम मोक्ष भी कैसे सत् होंगे?

उत्तर : यामें एक समझवेकी बात हे, शास्त्रको सिद्धान्त हे "कंटकेनैव कंटकम्". कांटाकु निकालवेके लिए दूसरो कांटा लगानो पड़े हे. कांटा जो एक अपने आप चुभ्यो हे, वामें अपनो कंट्रोल् नहीं होवे. कंट्रोल् मानें अपनी बुद्धिको और वाके चुभ जावेमें के कितनो चुभनो, कितनो भीतर जानो और कैसो कांटा चुभनो. वा कांटाकु निकालवेके लिए जो अपन् दूसरो कांटा चुभावें, वो अपने हाथमें होवे हे. वाकु अपन् उतनो ही चुभावे हे, जितनो चुभावेसु वो चुभ्यो भयो कांटा निकाल्यो जा सके. यालिए शास्त्रने प्रकृतिके परिणामरूप महत्तत्त्वमें चैतन्य जो संक्रांत भयो **"मम योनिः महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधामि अहं सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत!"** (भग.गीता १४।३) वो संक्रांत भयो बिल्कुल वाही रीतसु जैसे बिजलीको करेंट बल्ब और पंखा में आ रह्यो हे. अपने आपमें बिजली न आवाज़ हे, न हवा हे, न प्रकाश हे, न दृश्य हे पर जा गॅजेट्में वो बिजली

चली जाय वामें वो वाही तरहसु काम करवे लग जाय हे. वाके लिए शास्त्रमें कहयो गयो हे के **"कार्य-कारण-कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते"** (भग.गीता १३।२०) कार्य कोई पैदा हो रह्यो, वा कार्यके पैदा होवेके कारणके रूपमें और वा कारणके साथ-साथ कर्ताकी या कॉन्शियस् फिनोमिनाकी जो आवश्यकता हे, वे तीनों रोल् प्रकृति अदा करे हे क्योंके वो डायनेमिक् सिद्धान्त हे.

मानें वामें अपने आप ॲक्टिव् रेहवेको ऑटोमॅटिक् मोड् हे. 'ऑटोमॅटिक्' मानें आत्मचलित या स्वयंचलित. ये जो 'ऑटोमॅटिक्' अपन् कहे हें, वो 'आत्मा' शब्दको अपभ्रंश अत्ता भयो. 'अत्ता'को ऑतो भयो और 'ऑतो'को ऑटो हो गयो. जैसे ऑटोनोमस् नर्वस् सिस्टम्, ऑटोमोबाईल्. ये प्रकृतिमें (कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः) हे वाकु डायनेमिक् प्रिन्सिपल् कहे हें. ये स्वयंचलित हे. वाकु चलावेवालेकी आवश्यकता नहीं हे. आज-कल मार्केट्में नहीं मिले हें क्योंके बच्चानूकु मोबाईल्सु खेलवेमें अधिक रुचि हो गयी हे. यासु पुराने बहोत सारे खेल आऊट-ऑफ्-फॅशन् हो गये. यासु वे आऊट-ऑफ्-प्रोडक्शन् हो गयें और फिर वे आऊट-ऑफ्-मार्केट हो गयें. पर पुराने जिन लोगन्ने देख्यो होयगो उनकु ख्याल होयगो. एक बगुला आतो हतो. वाकु एक बखत अपन्ने झुकाके गिलासमें पानी मिला दियो, तो वो चलतो ही रहतो ऑटोमॅटिक्. हमारे बड़े मंदिरमें भी एक ठाकुरजीके पास धरवेके लिए एक फुआरा हतो. वो ऑटोमॅटिक् हतो. वाकी बहोत सिम्पल् सिस्टम् हती. दो पोली गदा हतीं. उन पोली गदान्मेंसु पानीको फुआरा छूटतो और छूटके ऊपरवाली गदामें भरतो. जब ऊपरवाली गदामें पानी भर जातो तो वजनके कारण वो गदा नीचे चली जाती और वो फुआरा चालू रहतो. एक बार चालू कर दो, तो फिर चलतो रहतो. गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्त और पानीके लेवल् मेन्टेन् करवेके सिद्धान्तके कॉम्बीनेशन्सु वो फुआरा चलतो रहतो. धक्का मारवेसु नहीं

पर अपने आप. प्रकृतिकु ऑटोमॅटिक् बनायो गयो हे. याके लिए **''कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते''** जो कोई भी कार्य हो रह्यो हे, वाकी जो कन्डीशन् हे और वाको जो करवेवालो कर्ता हे, वो सब प्रकृतिके कारण हो रह्यो हे.

और वो ब्लाइंड्-फोर्स् हे. वाकु या बातकी चिन्ता नहीं हे के कौनकु अच्छो और कौनकु बुरो लग रह्यो हे. आज-कल ऐसी घड़ीयाल आ गयी हे के उनकु चालू कर दो, तो वो बोलनो शुरु कर दें ''श्रीकृष्णः शरणं मम, श्रीकृष्णः शरणं मम, रानीबागना गेंडा बोले श्रीकृष्णः शरणं मम.'' बस चलतो ही रहे हे. न तो वामें बोलवेवालेको सुखको विचार हे, न कोई दुःखको विचार हे, न कृष्णके माहात्म्यको विचार हे और न कोई अपने अपराधको विचार हे. बस वाकु चला दियो, तो चलतो ही रहे हे, सद्-असद् विवेकके बिना. वो एक 'डायनेमिक् प्रिन्सिपल्' केहवावे. एक ब्लांइड्-फोर्स् हे पर ''पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते'' क्योंके पुरुष चेतन हे तो वो कार्य-कारणके कारण कर्तव्यके कारण जो पैदा हो रह्यो हे, वासु पैदा होते भये सुख-दुःख रूपी कार्यको भोक्ता प्रकृति तो बने नहीं हे क्योंके वो तो ब्लाइंड-फोर्स् हे पर वाको भोक्ता पुरुष बने हे. एक बात और समझो के पुरुष और प्रकृति आपसमें जुड़े भये हें. जुड़े भये होते भये भी ये एक प्रकारको डिविज़न्-ऑफ्-लेबर् हे.

मै अपनी बात बताऊं. आज-कल एअरपोर्टपे एस्केलेटर् लग गयो हे. मैं टिकट लेके चढ्यो. नीचे कोईको झगड़ा भयो, तो मेरो ध्यान एस्केलेटर्के बजाय उन झगड़ा करवेवालेन्पे गयो. वामें मेरो पैर फिसल गयो और मेरे हाथसु टिकट छुट गयी. छुटके मेरे देखते-देखते वो ऊपर चढ़ गयी. अब पैर फिसलवेके कारण मोसु तो खड़्यो ही नहीं जाय क्योंके चलती भयी सीढ़ी हती. मोकु तो चक्कर आवे लग गये के अब क्या होयगो. अन्तमें मैं वा

रेलिंगकु पकड़के लटक गयो. वाके बाद मैनें अपने पैरकु स्थिर जमायो. जमाके मैं ऊपर चढ़ गयो. पर मनमें चिन्ता हती के अब टिकिट कहांसु लाऊँगो पर भाग्यसु टिकिट वहां फंसी भयी मिली. वो ही एस्केलेटर् जो मेरे दुःखको हेतु हतो, सुखको भी हेतु वोही बन्यो क्योंके टिकिट वाके कांटामें फंस गयी हती. **"पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते."** मैं चढ्यो और टिकिट ऊपर चढ़ गयी ये कार्य और कारण में *हेतुः एस्केलेटर् उच्यते* और पुरुष मानें *श्याममनोहरः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते* सिद्धान्त ये हे. या सिद्धान्तके कारण अपेक्षा क्या करी जाय के प्रकृतिने जो तुमकु कांटा चुभायो हे, कार्य-कारण और कर्तृत्व सु जोके अंधे हे, वाकु तुम कॉन्शियस् कार्य-कारण-कर्तृत्वके अँगलसु बाहर निकालो. जैसे कांटाकु अपन् पकड़ रखे हें और उतनो ही चुभावे हें जासुके अपने आप चुभ्यो भयो कांटा निकाल्यो जा सके हे और ये कांटा पाछो अन्दर नहीं घुस जाय जैसे बकरीकु निकालवेके चक्करमें ऊँट घुस जाय हे, वा तरहकी सावधानी रखनी पड़े हे.

वो अपने सुख-दुःखको अन्त ला सके हे. वालिए जब प्रकृतिमें पुरुष या तरहसु फँस गयो हे और प्रकृतिके कांटा बराबर पुरुषकु चुभ रहे हें, तो अब पुरुषके पास वाकु निकालवेके लिए कोई साधन नहीं हे. प्रकृतिसु ही एक साधन लेनो पड़ेगो और सिलेक्टेड् साधन प्रकृतिसु लेके प्रकृतिको कांटा निकाल्यो जा सके हे. वाके लिए शास्त्रने व्यवस्था बतायी के कर्मके जो कांटाएं हें, वा कर्म रूपी कार्यके कुछ सुख-दुःख रूपी कांटाएं जो अपनकु चुभ रहे हें, अब कोई ऐसो कर्म करो जासु वा कर्मको उच्छेद हो जाय. वो सोचवेसु तो नहीं होयगो.

भगवान् ये भी आज्ञा कर रहे हें के **"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते"** (भग.गीता ४।३९) ब्रह्मज्ञान बहोत ऊँची अवस्थाको

ज्ञान हे. जा ब्रह्मज्ञानके कारण सारे कर्मनकु भस्म कियो जा सके. अपने पास जो साधनावस्थाको ज्ञान हे, वासु कर्मके सुख-दुःख अवस्थाके कांटा निकाले नहीं जा सके. सिद्धावस्थाके ज्ञानकी कथा अलग हे. कर्मको कांटा निकालवेके लिए कर्म ही वापरनो पड़ेगो. कर्मके उच्छेद करवेके लिए दवाई क्यों ली जाय? दवा लेवेके लिए नहीं, दवा न लेनी पड़े यालिए. दवा लेवेके लिए यदि दवा ली जाय तो वो दवाको भी रोग हो जाय हे. घाटकोपरमें एक वैष्णव हतो, वाकु विक्स्को रोग हतो. अपन् कहे के "यहाँ आओ." तो वो कटोरीमें विक्स् फार्मूला-४४ निकालतो और पी डालतो, वाके बाद बात करतो. वासु बात भी नहीं करी जाती वा दवाईके बिना. कोई डॉक्टरने वाकु बताई होयगी के आपकु सर्दीकी प्रकृति हे तो आप ये लियो करो. वाकु वा विक्स् फार्मूला-४४को ही रोग हो गयो. कई बखत दवाई भी रोग बन जावे हें. विक्स् ही नहीं, धर्म भी दवाई हे. वो भी कभी रोग बन जाय हे. ज्ञान भी दवाई हे, वो भी कभी रोग बन जाय हे. भक्ति भी दवाई हे वो भी कभी रोग हो जाय हे. कर्म भी दवाई हे, वो कर्म भी कभी रोग हो जाय हे. वाको कारण हे के उनकु यथा-विधि अपन् नहीं करे हें. जैसी कर्मकी विधि हे, वा तरहसु कर्म करो, तो कर्म दवाई हे. यदि विधिके अनुसार नहीं कियो, तो पाछो कर्मको एक और रोग पैदा हो जाय हे.

एक कर्म तो पहले ही हतो रोगके रूपमें. वाकु निकालवेके लिए जो दूसरो कर्म कियो, वो विधि अनुसार नहीं करवेके कारण दूसरो रोग बन जाय हे. ऐसे ही ज्ञान बिना जानकारीके हो जाये हे. कई बखत कुछ समझ अपनी जानकारीके बिना हो जाय. वाकु खतम करवेके लिए दूसरे ज्ञानको प्रयोग करें. पर वो उतनो ही उपयोगमें लानो चहिये के जासु वो पहलो रोग खतम हो जाय. यदि ज्ञानको रोग हो गयो, तो बहोत कठिनाई हो जायगी.

ऐसे ही अपनी अरतिके जो रोग हें वाकु निकालवेके लिए भक्ति एक दवा हे. "**यच्छृणवतो अपेति अरतिः वितृष्णा, सत्त्वं च शुध्यति अचिरेण पुंसो, भक्तिः हरौ**" (भाग.पुरा.१०।७।२) जा भगवल्लीलाके श्रवण सुनवेसु अपनी अरति दूर् हो जाय और मन अपनो शुद्ध हो जाय, वा प्रकारकी अरतिकु दूर् करवेके लिए भक्ति बहुत अच्छी दवा हे. पर वो भक्ति यदि अपन्ने अहंकारसु करी, तो भक्ति एक रोग हो जाय. वो अहंकारात्मिका नहीं हो कर रत्यात्मिका होनी चहिये. यदि भक्ति अहंकारात्मिका हो गयी, तो भक्ति भी पाछो एक रोग हो गयो. वो रोग न हो जाय याके लिए अपन् पहले शरणागति ले हें. पहले ही सरेंडर् हो जाओ जासु भक्ति करवेके लिए जा बखत अपन् कदम उठाते होंय, वो भक्ति अपनी अहंकारात्मिका न होके, रत्यात्मिका होनी चहिये. अष्टाक्षरकी दीक्षा अपन् ले हें, वाको मुख्य हेतु ये हे के अपन् भक्ति करवे तो चले हें पर वो अहंकारात्मिका नहीं हो जानी चहिये, रत्यात्मिका होनी चहिये. वो जा बखत हो जाय तो अरतिकु दूर् कर दे. अहंकारात्मिका भक्तिके कारण भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होवें. क्योंके वाके कारण अपन् ऐसे सोचे हें के भगवान्ने तो कबूल कियो हे न के "**अहं भक्तपराधीनो**" अब तो चाबी अपने हाथमें हे. भक्ति करो तो भगवान् अपने आधीन हो जायगो. भगवान्कु वश करवेके मोटीवेशन्सु जब अपन् भक्ति कर रहे हें, भगवान् भक्तिसु यदि वश हो जायें वो भगवान्की साईड्सु हे. जैसे टॅनिस्में अपन् सर्विस् और रिटर्न् करे हें. ऐसे ही अपन्ने अपनी तरफसु भक्तिकी एक सर्विस् करी. वाके रिटर्नमें भगवान् सरेंडर् हो जायें और केह दें के "**अहं भक्तपराधीनो**" पर अपन्ने भक्तिकी रिटर्न नहीं दी तो वाके रिटर्नमें भगवान् पराधीनताकी रिटर्न नहीं करेंगे. भगवान् भी पाछे दूसरो स्मेश् मारेंगे के तुम्हारी भक्ति खंडित हो जाय. तुम वा बॉल्कु पकड़ ही नहीं सको हो. महाप्रभुजीने बतायो हे के प्रभु भक्तिमें विघ्न करे हें जा बखत अपन् अहंकारसु भक्ति करे

हे तब. क्योंके वो प्रभुकी भक्तपराधीनताको एड्वान्टेज् लेवेके लिए अपन् भक्ति कर रहे हें. वा बखत भगवान् वा भक्तिके आधीन नहीं होवे हें.

महाप्रभुजीने शास्त्रार्थ प्रकरणमें पहले ही बता दियो के **"किम् आसनं ते गरुडासनाय किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय, लक्ष्मीकलत्राय किम् अस्ति देयं वागीश किं ते वचनीयम् अस्ति"** (त.दी.नि.मं.प्र) तुम्हारी भक्तिके कारण तुम केह रहे हो के हम तुम्हारे लिए सिंहासन बिछायेंगे. अरे, तुम्हारी औकात क्या हे के तुम वाके लिए सिंहासन बिछा सको! जब वाने कौस्तुभ भूषण धारण कर रख्यो हे, वाकु तुम और कौनसे शृंगार धरा सको हो! तुम सोच रहे हो के भेंट धरके हम भगवानुकु खुश कर लेंगे. अरे, धन तो लक्ष्मी हे, वो तो वाकी पत्नी हे. वाकु तुम क्या भेंट धर सकोगे! तुम कहो के हम स्तुति कर लेंगे क्योंके हमकु पता हे के भगवानुकु भी चापलूसी पसंद हे, तो महाप्रभुजी केह रहे हें के तुम्हारी वाणीको मालिक यदि वो हे, तो तुम्हारी चापलूसीसु वो प्रसन्न नहीं होयगो. क्योंके वाकु पता हे के या प्रकारकी वाणी तुम्हारे मुंहसु वो निकलवा रह्यो हे. वो प्रसन्न होवेके लिए नहीं अप्रसन्न होवेके लिए निकलवा रह्यो हे, क्योंके वाकु भी एक कारण तो चहिये के तुमपे अप्रसन्नता वो कैसे प्रकट करे. वाके बहकावेमें आके तुम खोटी-खोटी चापलूसी कर रहे हो, **"त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धु च सखा त्वमेव त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेवः"** खोटी चापलूसी कर रहे हो और सरस्वतीकु छोड़के भगवानुकु भजनो चाहे, भगवान्के लिए कोई अपने दोस्तकु छोड़नो चाहेगो? भगवान् कहेंगे के तू खोटो बोल्यो यालिए मेरो तेरो नाता खतम. बुलवावेवालो भी वो ही हे. जब वाकु तुमसु भक्ति नहीं लेनी होय, तो तुमसु ऐसी स्तुति करवा ले और वाको कारण वाकु मिल जाय के "देखो तुमने खोटी चापलूसी करी, यालिए मैं तुमपे अप्रसन्न हूं"

एक बात ध्यानसु समझो के वाही भक्तिसु भगवान् प्रसन्न होंय हे जो भक्ति रत्यात्मिका हे. भक्ति भी एक रोग हो सके हे. भक्ति बहोत बड़ी दवाई हे और बड़ी भयंकर औषधि हे. वा लिए महाप्रभुजी सचेत करे हें के "**भक्त्यभावेतु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः अन्यथाभावमापन्नः तस्मात् स्थानात् च नश्यति**" (सि.मु.१९) यदि तुमकु भक्ति नहीं हे और तुम सेवा कर रहे हो तो सेवा करवेके कारण न तो प्रभु प्रसन्न होयगो न तुम्हारो उद्धार होयगो पर तुम्हारो नाश ही नाश होयगो. लिख लो पत्थरकी शिलापे. यदि भक्तिके बिना सेवा कर रहे हो तो तुम नाशकी कुंकुमत्री स्वयं लिखके नाशकु आमंत्रित कर रहे हो. आवश्यकता भक्तिके रत्यात्मिक होवेकी हे, न के अहंकारात्मिका. दूसरे रोग थोड़े हल्के हो सके हें पर या रोगको चेप लग्यो तो समझ ही नहीं पावे आदमी के चक्कर क्या हो गयो! क्योंके एक बाजु प.भ. बन जाय और दूसरी बाजु पू.पा. बन जाय पर भीतरसु सब पापी ही पापी हें. समझ लो के भक्तिको रोग बहोत खतरनाक हे. संसारको रोग उतनो खतरनाक नहीं हे क्योंके संसारके रोगकी भक्ति एक दवाई हे. पर भक्तिको रोग हो गयो तो दवाई कहांसु लानी? यालिए भक्ति रोग न बन जाय वाकी सावधानी तो अपनकु रखनी पड़ेगी.

यालिए शास्त्र कहे हे के "कंटकेनैव कंटकम्"की पॉलिसीसु सारे मार्ग बताये गये हें. क्योंके जो रोग हे, वा रोगको इलाज वाही रोगसु हो सके हे. जाकु मॉडर्न् मेडिकल् टर्मिनोलॉजीमें अपन् वॅक्सीनेशन् कहे हें. जा रोगके कीटाणु तुमकु इन्फॅक्शन्के कारण बीमार कर सके हें, कंट्रोल्ड् मात्रामें वो इन्फॅक्शन् तुम लगा लो. अब वो चेचकको होय के पोलियोको होय, बॉडीकी सिस्टम् वा रोगके प्रति प्रतिरोधक शक्ति पैदा कर देगी. रोग अपनेकु होवे अपनी प्रतिरोधक शक्तिके कमजोर पड़वेके कारण. रोग वा इम्युन् सिस्टम्के सोते रहवेके कारण शरीरमें घुस जाय हे. वॅक्सीनेशन् वा प्रतिरोधक शक्तिकु एलर्ट

कर दे के जासु रोगके कीटाणु यदि घुस भी जायें, तो वो इम्यून् सिस्टम् उनकु खतम कर दे हे. सो वॅक्सीनेशन् रोगसु रोगकु मिटावेकी प्रक्रिया हे. ऐसे ही कर्म ज्ञान भक्ति तप सांख्य योग ये सब रोगसु रोगकु मिटावेकी दवा हे.

या बातकु समझावेके लिए मैनें आपकु बतायो हतो के सबमें अहंकारकी आवश्यकता हे. चेतनाके लिए अहंकार एक रोग ही हे. क्योंके अहंकार चेतनाको स्वास्थ्य तो नहीं हे. स्वास्थ्य होतो तो चेतनामें स्वत: अहंकार होनो चहिये हतो. वो अहंकार स्वत: तो आ नहीं रह्यो हे, प्रकृतिके कारण आ रह्यो हे. 'स्वास्थ्य'को अर्थ स्वमें स्थित होनो. जब अपन् अहंकारमें स्थित हें, तो स्वमें कहां स्थित हे? और अहंकार यदि अपन् नहीं हें, तो अपन् अस्वस्थ हें. 'अस्वास्थ्य' मानें आप अपनेमें स्थित न होके कोई परायेपनमें स्थित हो. वो ही तो अपनी बीमारी हे. अपन् अपनेमें स्थित हो जायें तो स्वस्थ हे. देखो ध्यानसु समझो के मनुष्यकी लम्बाई और उमर के हिसाबसु रक्तचापको एक पॅरामीटर् हे के इतनी उमर और इतनी लम्बाई के मनुष्यको इतनो रक्तचाप होनो चहिये. यदि उतनो रक्तचाप हे, तो व्यक्ति स्वस्थ हे. वासु ऊपर-नीचे होय, तो अस्वस्थ हे. अपनो स्व निर्धारित हे के अपन् ये हें. वो काहेसु निर्धारित हो रह्यो हे? अपने शरीरकी लम्बाई और अपनी उमर सु. वो रक्तचाप यदि ऊपर-नीचे हे, तो वो ही एक रोग हे. ऐसे ही अपने कार्य करवेके लिए अपनकु जितनो अहंकार चहिये हे, उतनो वाको प्रेशर् हे, तो अपन् स्वस्थ हें. घट गयो या बढ़ गयो तो अस्वस्थ हे. घट गयो तो खोटी दीनताकी लो-प्रेशर् हे और खोटो बढ़ गयो तो अहंकारके मदको हाई-प्रेशर् हे. वो लो हे के हाई हे, याकु निश्चित कैसे करनो? कोई प.भ. बन रहे हें, तो उनकु लो प्रेशर् हे. कोई पू.पा. बन रहे हें, तो उनकु हाई प्रेशर हे अहंकारको. जितनो प्रेशर होनो चहिये, उतनो होतो, तो तुम स्वस्थ

व्यक्ति होते.

अपने साथ असत् कर्मके या अज्ञानके या अरतिके जो चुभे भये कांटा हैं; प्रकृतिके कारण, उनकु निकालवेके लिए सतूकर्मको कांटा, सद्ज्ञानको कांटा, सद्रतिको कांटा चुभानो पड़े. वो चुभाके वा रोगकु दूर कियो जाय हे. यालिए भगवान् केह रहे हें के "**यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः 'सद्' इति च उच्यते**" (भग.गीता १७।२९) यज्ञ तप दान ये एक कर्म हे, जो शास्त्रकी बतायी भयी विधि हे इन कर्मनूकु करवेकी. वा तरहसु यदि तुम यज्ञ दान तप कर रहे हो तो तुम्हारे अज्ञाताके अतपस्विताके और लोभके जो कांटा चुभे भये हे, वो निकल जायेंगे. यदि वो कांटा निकल गये, तो इन यज्ञ दान और तप में स्थिति सद्स्थिति हे.

(गीतोक्त उपचार तीन लॅवलसु क-**'रथी-सारथीको संवाद)**

अभी मैनें एक ग्रंथ लिख्यो हे "गीताप्रतिपाद्यसंक्षेप" वामें मैनें ये बात समझायी हे के गीता एक लेवल्को उपदेश नहीं हे, तीन लेवल्को उपदेश हे. पहलो लेवल् गीताको हे के एक रथी हे और एक सारथी हे. 'रथी' मानें अर्जुन और 'सारथी' मानें कृष्ण. रथी सारथीकु महाभारतमें ले गयो हे. 'रथी' मानें रथको मालिक और 'सारथी' मानें ड्राइवर्. वा मालिककु ड्राइविंग् नहीं आ रही हे या लिये वो ड्राइवर्कु लेके गयो हे. अब एक तो तुमने भगवानूकु ड्राइवर्के रूपमें सिलेक्ट् कियो युद्धक्षेत्रमें जावेके लिए और वहां जाके तुम केह रहे हो के "मोकु डर लग रह्यो हे के कहीं मैं पाप तो नहीं कर रह्यो हूं!" अरे, पापको ही डर हतो तो मोकु सारथी बनाके क्यों लायो! वा रथी और सारथी के जो संवाद हे वामें निरंतर भगवान् या बातपे जोर दे रहे हें के "युद्ध कर, युद्ध कर." वहां न ज्ञानकी बात केह रहे हें न कर्मकी बात केह रहे हें, न भक्तिकी, न तपकी, न दानकी, न योगकी, न सांख्यकी. "तस्माद्

युद्धस्व भारत!" (भग.गीता २।१८) क्योंके "मोकु लायो क्यों युद्धके मैदानमें सारथी बनाके? यदि लायो हे, तो युद्ध कर. तोकु यामें जो सेफ्टी चहिये वो देनो मेरो काम हे." पर अर्जुनकी समस्या हे के वो ड्राइवर् तो बनाके लायो हे पर साथ-साथ ये भी केह रह्यो हे के "मोकु यामें पुण्य-पापकी चिन्ता हो रही हे." अब पुण्य-पाप तो अपनी अहंता-ममता के कारण लगे हे. क्योंके अपनी यदि कुछ अहंता हे वाके विपरीत यदि अपन् कुछ काम कर रहे हें, तो पाप लगेगो. अपनूकी कोई ममता हे, वा ममताके विरुद्ध यदि कोई काम कर रहे हें, तो पाप लगेगो. कोई जो अपनी स्वाभाविक अहंता हे, जैसे राणाव्यासकु हती जाकु महाप्रभुजीने कही के "तू ब्राह्मण हे तो शास्त्रार्थ तेरो स्वाभाविक धर्म हे, तो या अहंताकु तु अच्छी तरहसु निभा." यामें कोई पापको सवाल नहीं हे. जो अपनी अहंता नहीं हे वा तरीकेको अपन् यदि काम कर रहे हें, तो पाप हे. या बातको उत्तर देवेके लिए जब अर्जुनने या युद्धके साथ जुड्यो भयो पाप-पुण्यको प्रश्न उठायो, याके जो लौकिक परिणाम हते वाके बारेमें. वो लौकिक परिणाम ये के "मेरे प्रियजन, सम्बन्धीजन, उनकु मारनो कैसे?" वाके बाद ममता जाग रही हे. "जिनकु मारवेके बाद जीवेमें मजा आनी बंद हो जायगी, उनकु कैसे मारनो?" ये सारे प्रश्न शास्त्रके नहीं हें अपितु व्यक्तिकी निर्बलताके हें. वो निर्बलता प्रकट भयी हे क्योंके अपन् प्लानिंग् बहोत सारी करें पर जब वा प्लानूकु एकजीक्यूट् करवेको समय आवे हे तब हर व्यक्तिमें एक निर्बलता आवे हे. अपन्ने महिनान् परीक्षाकी तैयारी करी होय पर जब परीक्षाको दिन आवे हे, प्रश्नपत्र आवे तो निर्बलता आवे हे.

हम गुजरात हाईकोर्टके रिटायर्ड जजकु जूनागढ़के केसमें वकील बनाके ले गये. पर केसवाले दिन वो कांप रह्यो हतो. कुर्सीपे बैठके सुननो एक अलग कथा हे और केसकु प्रेजेंट् करनो एक अलग

कथा हे. वामें नर्वसनेस् आ जाय. तो जब प्लानकु एक्ज़ीक्यूट करवेकी घड़ी आवे हे तो बड़े-बड़ेन्के छक्का छूट जायें. वामें अर्जुनको क्या अपराध हे!

मैं एक मैरेज्में गयो हतो. वो लव्-मैरेज् हती. दोनों वर-वधु पक्षके माता-पिता वा विवाहसु नाराज़ हते पर लड़का-लड़की मानें ही नहीं. झक मारके माता-पिताने कही "तो करो." मोकु भी बुलायो और कही के "इनको हस्त-मिलाप आप कराओ" लड़की तो हस रही हती पर लड़काको हाथ कांप रह्यो हतो. अब मैं हस्त-मिलाप कराऊँ तो कराऊँ कैसे, कांपते हाथको. ये अपनी साइकोलॉजी हे. यामें अर्जुनको दोष नहीं हे. ये कथा अर्जुनकी हे, पर व्यथा सबकी हे. मेरे साथ भी ऐसो ही भयो. दादाजीने घोषणा करवा दी के मैं प्रवचन करूंगो. मैंनें कही के "दादाजी पढ्यो तो हूँ नहीं तो प्रवचन कैसे दऊँगो" दादाजीने कही "चुप! मैं लिखके दे रह्यो हूँ, तू बस पढ़के सभामें सुना दीजियो" गुसांईजीको उत्सव हतो. हमारो बगीचा पूरो भरो भयो हतो. खड़े होके प्रवचन करनो हतो सो जैसे ही मैं खड़ो भयो हाथ कांपवे लग गये. कागज डायस्पे रख दियो, तो पैर कांपवे लग गये. पांच फुल्-स्केप्को प्रवचन दस मिनिटमें पढ़के मैं वहांसु भाग्यो. ऊपर गयो तो इतनी झाड़ पड़ी के "तोकु पढ़नो भी नहीं आवे." अरे पढ़नो तो आवे पर जब पहली बार पढ़नो हे, तो लफड़ा होवे ही हे. प्यारका पहला खत लिखनेमें वक्त तो लगता हे. अचानक नहीं लिख्यो जा सके. नर्वसनेस् आ जाय हे. वाको उपाय अभ्यास ही हे. "**अभ्यासाद् रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति**" (भग.गीता १८।३६) अभ्यास करते रहो तो नर्वसनेस् दूर हो जाय. 'अभ्यास' मानें कोई भी चीजको आवर्तन करनो.

यालिए शास्त्रन्ने कर्मकी ज्ञानकी तपकी विधि ऐसी बनाई हे

के जा विधिमें आपके जो अहंकार हें उनकु डाइल्यूट् कियो जा सके. अपन् जो कर्म करेंगे वामें अपने अहंकार बढ़ते जायेंगे. अपन् जो ज्ञान हासिल करेंगे वामें अपने अहंकार बढ़ते जायेंगे. अपन् जो भक्ति करेंगे वामें भक्तिके कारण अपने अहंकार बढ़ते जायेंगे पर शास्त्र जो यज्ञ दान तप की या कर्म ज्ञान भक्ति की विधि बता रहे हें, वा विधिसु यदि अपन् यज्ञ दान तप, कर्म ज्ञान भक्ति करें तो अपनो अहंकार नहीं बढ़ेगो. वो वेक्सीनेशन्की प्रोसेस् ही हे. शास्त्रको सिद्धांत तो ये ही हे. कर्मनिर्हारके लिए कर्मको विधान हे. औषधि तुमकु लेनी नहीं पड़े, वाके लिए औषधि तुमकु दी जा रही हे.

([क-२]गुरु-शिष्य संवाद)

भगवान्सु अर्जुनने जो ये सवाल कियो और वा सवालमें पाप-पुण्यको इश्यु वाने जोड़्यो, तो भगवान्ने सांख्य योग कर्म ज्ञान, ये सारी बातें वामें बता दी. क्या कर रहे हो तो पाप होवे और क्या नहीं करो तो पाप नहीं होवे. ये सारो विस्तारसु वर्णन कर दियो. क्योंके प्रेक्टिकल् इश्युके साथ पाप-पुण्यको इश्यु कौनने जोड़्यो? अर्जुनने. वहां कृष्ण सारथीके रूपमें नहीं बोल रहे हें, गुरुके रूपमें बोल रहे हें. क्योंके अर्जुनने ये भी बात केह दी के "**शिष्यः ते अहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**" (भग.गीता २।७) वहां कृष्ण दूसरो रोल् ले रहे हें. "मोकु पता नहीं चल रह्यो हे के या समयमें नर्वसनेस् आ रही हे वाको हल क्या हे? वाके कारण मोकु लग रह्यो हे के मैं कुछ पाप करवे जा रह्यो हूं." वालिये भगवान्ने वाकु पाप-पुण्यसु अतीत होवेके लिए एक पूरो उपनिषद् समझायो. जो गीताकी इतिश्रीमें देखें तो "**इति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु... कृष्णार्जुनसंवादे**" एक कृष्णार्जुन संवाद हे और एक उपनिषद् हे. जब अर्जुनने ये कही के "मैं तेरो शिष्य हूं, तू मोकु समझा के या पाप-पुण्यके इश्युको हल मैं क्या ढूंढू?" मैं आजकी कथा नहीं

केह रह्यो हूँ, पुराने गुरुन्की कथा केह रह्यो हूँ के जो भी ऋषि-मुनिन्ने उपनिषद् कहे वो पब्लिक् लेक्चर्में नहीं बताये, शिष्यकु बताये. पब्लिक्के सामने उपनिषद् कह्यो ही नहीं जातो हतो. बल्कि नियम ये हतो के पब्लिक् इकट्ठी हो जाय, तो उपनिषद्कु बंद कर दो. याही लिए उपनिषद्कु रहस्य कह्यो जाय हे. रहस्य हर कोईके सामने खोल्यो नहीं जाय हे. शिष्यके सामने खोल्यो जाय हे. बहोत सारे संगीतके अथवा चित्रकारीके शिक्षक, शिष्यके सामने अपने शास्त्रको रहस्य खोले हे. पब्लिकके सामने रहस्य नहीं खोलेंगे. तुमकु राग सीखनो होय, तो राग सिखा देंगे पर रागको रहस्य नहीं सिखायेंगे. या तरहसु उपनिषद्को रहस्य तो केवल शिष्यकु ही समझायो जातो हतो. यालिए जब अर्जुनने कही के ''मैं शिष्य हूँ'' तब भगवान्ने वाकु उपनिषद् समझायो जाकु रहस्य कहे हें. मानें कर्मको रहस्य, ज्ञानको रहस्य, भक्तिको रहस्य वगैरह-वगैरह. यालिए ''**श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां**'' ये ब्रह्म-विद्याको उपनिषद् हे जो भगवान्ने गुरुकी हैसियतसु शिष्यकु समझायो हे, सारथीकी हैसियतसु रथीकु नहीं. व्यक्ति वो ही हे पर रोल् बदल गयो.

बहोत प्रसिद्ध चुटकुला हे के एक पतिने पैसा फिक्स्-डिपोजिट्में जमा कराये हते. पतिकी मौतके बाद पत्नीको हक वामें लिख्यो हतो. वाको बेटा बॅन्क्में क्लर्क हतो. जब मां वो पैसा पतिकी मृत्युके बाद लेवे आयी तो वा क्लर्क बेटाने कही के आप अपने पत्नी होवेके और पतिकी मृत्युको प्रमाणपत्र लाओ. वा मांने कही के ''तू मेरो बेटा हे. क्या तोकु भी मेरे पत्नी होवेको प्रमाणपत्र देनो पड़ेगो और तेरे बापके मृत्युको प्रमाणपत्र देनो पड़ेगो!'' वो बेटाकु नहीं देनो पड़े पर बॅन्क्के क्लर्ककु तो देनो पड़ेगो. वाको वहां रोल् बदल गयो. वो जब बॅन्क्में बैठ्यो हे तो बेटाके रूपमें काम नहीं कर सके हे. वाकु पता हे के ये मेरी मां हे और मेरो बाप मर गयो हे पर वो पूछ रह्यो हे ''तुम्हारो आइ डी

लाओ." मांकु गुस्सा आ गयो. "तू मोसु पूछ रह्यो हे?" वाने कही के "बॅन्कूक्लर्क होवेकी हैसियतसु पूछ रह्यो हूँ और आपकु ये प्रमाणपत्र दिये बिना पैसा नहीं मिल सके हे." तो रोल् बदल गयो. ऐसे ही जब अर्जुनने पाप-पुण्यको प्रश्न खड़ो कियो, तो भगवान्‌ने भी सारथीको रोल् छोड़के गुरुको रोल् अपना लियो. जब पाप-पुण्यको इश्यु आयो, तो बाके ॲन्टीडोज्‌की तरह सांख्य-योगको इश्यु आयो. वो वहां जरूरत नहीं हती पर भगवान्‌ने थोडी अंटस् फंसाई हे.

(क-३ युयुक्षु-योगेश्वर संवाद)

जब योगकी बात आयी तबके संवादमें भगवान् योगेश्वर हे और अर्जुन युयुक्षु हे. 'युयुक्षु' मानें योग करवेकी इच्छावालो. जैसे 'जिज्ञासु' मानें जानवेकी इच्छावालो. 'पिपासु' मानें पीवेकी इच्छावालो. क्योंके अर्जुन स्वयंने विषादमें ये बात कही हे. "भाग जानो अच्छो के योग करनो अच्छो" तब तो युयुक्षु हो. यदि तुम युयुक्षुकी कॅपेसिटीमें आ रहे हो, तो भगवान् केह रहे हें के "मैं योगेश्वर हूँ." योगी और योगेश्वर में अंतर हे. योगी योग-शास्त्रकी विधिके अनुसार योग करे हे और सिखावे हे. 'योगेश्वर' मानें जाके ऐश्वर्यके अनुरूप योग चले. एक उदयनाचार्य भये हें न्यायके अच्छे विद्वान, जिनने बुद्धधर्मके साथ सबसु अधिक शास्त्रार्थ कियो. श्रीशंकराचार्यसु भी अधिक शास्त्रार्थ उदयनाचार्यने कियो हतो बौद्ध धर्मके साथ. श्रेय श्रीशंकराचार्यकु मिल्यो पर काम कुमारिल भट्ट और उदयनाचार्य ने अधिक कियो हतो. वो उदयनाचार्य एक ठिकाने कहे हे "**वयम् इह पदविद्यां तर्कम् आन्वीक्षिकीं वा यदि पथि विपथे वा वर्तयामः सः पन्थः**" (न्या.कु.भू.पृ.६६) जो भी शास्त्र हें न्याय तर्क वेदान्त वगैरह; हम राहपे चलते होंय या नहीं चलते होंय, हम जहां चल रहे हें वहां राह बन रही हे. हम राहपे चलवेके मोहताज नहीं हे. मोहताज तो वो होय हे के जाकु दिशा खबर नहीं पड़े. अपनकु आश्चर्य होय या बातपे पर जंगलमें अपन् चलें तो पगडंडी बन जाय, पर

जानवर चले तो पगडंडी नहीं बने. निरंतर मनुष्यके चलवेसु पगडंडी बन जाय हे. क्योंके जानवर इतनो निर्मुक्त होके चले हे के वो रोड्को मोहताज नहीं हे. वाकु जहां जानो होय वहां जाय. वाकु जंगलकी दिशाको ज्ञान इतनो अधिक होवे हे के जितनो मनुष्यकु नहीं होय हे. मनुष्य जंगलमें जाके भटक जाय पर जानवर कभी नहीं भटके हे.

("यज्ञे तपसि दाने च... 'सद्'इति.." : शास्त्रोक्त मार्ग)

("कर्म चैव तदर्थीयं... 'सद्'इति.." : योगेश्वर मार्ग)

आपकु पता होनी चहिये के साइबेरियाके पक्षी पांच-दस हजार मीलसु आवे हें और नीचे दक्षिण तक जावे हें. न तो उनके पास कोई जी.पी.एस. हे, न मोबाईल् हे, न कोई सिग्नल् टावर् हे. हजारन्की तादादमें वे यहां आवें और वापस भी चले जाये हें. कौन उनकु गाईड् कर रह्यो हे? जा पथसु वे उड़ रहे हें, वो पथ उनको बन रह्यो हे. वे पथके हिसाबसु नहीं उड़ रहे हें, उड़ रहे हें वो पथ अपनकु निश्चित करनो पड़े हे. पॅनोरेमिक् अँगल्सु सब देख रहे हें. वो फॅसिलिटी जी.पी.एस.के कारण अपने पास अब आयी हे. पर वो भी जब-तक मोबाईल्में बेट्री हे तब-तक ही उपलब्ध हे. वाके बाद नहीं हे. पिछले वर्ष जो पक्षी आयो होयगो वाको जिंदो होनो आवश्यक नहीं हे. नयो पक्षी भी आ रह्यो हे, तो वाकु भी पता चले हे के कहां जानो. हमारे बम्बईमें आवें, राजस्थानके भरतपुरमें आवें. तीन-चार महिना यहां रेहके वापस चले जायें. उनकु कोई जी.पी.एस.की जरूरत नहीं पड़े. उनके अन्दर बिल्ट्-इन्-सिस्टम् हे. उनकु दिशा भ्रम भी नहीं होवे. वो ही बात उदयनाचार्य केह रहे हें. "**वयम् इह पदविद्याम्**" हम जा रस्तापे चल रहे हें वहां रस्ता बन जा रह्यो हे. हम रस्तापे चलवेके मोहताज नहीं हे. क्योंके "**उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा**" (न्या.कु.भू.पृ.६६) सूर्य जा दिशासु उग रह्यो हे, वा दिशासु पूर्व दिशा निश्चित होय

हे. जहां तुमने पूर्व दिशा निर्धारित करी हे वहां सूर्यको उगनो जरूरी नहीं हे. ये योगी मनुष्यके जैसो ही हे, योगकी पगडंडी बनावेवालो और वापे चलवेवालो. पर योगेश्वर साइबेरियन् पक्षीके जैसो हे. जा दिशामें चल रह्यो हे वा दिशामें मार्ग बन रह्यो हे. वो पगडंडीपे चलवेको मोहताज नहीं हे. यासु योगेश्वरकी कॅपेसिटीमें अर्जुनकु केह रहे हें. 'योग'को अर्थ समझ लो पहले के 'मिलनो'. जीव जब ईश्वरसु मिले तो वाकु 'योग' कहे हे. गुसांईजीने तो कही हे के "साहिब कैसे मिलें?" "जैसे हम तुम मिले" जा बखत मोकु तोसु मिलनो हे, वा बखत योगसाधनाके पथकी जरूरत नहीं हे, मेरी इच्छाकी जरूरत हे. "यदि पथि विपथे: वा वर्तयाम: स: पन्थ:" (न्या.कु.भू.पृ.६६) याके लिए गीताके पहले अध्यायको नाम 'विषादयोग' हे. भगवान् यालिए अर्जुनकु गुरुके रूपमें मिले क्योंके वाने विषाद कियो तो वो विषादयोग हो गयो. पर योग तो चित्तवृत्तिनिरोध हे के जापे विषाद खतम हो जाय. अरे! वो कथा तो योगीनूकी हे, योगेश्वरकी नहीं हे. योगेश्वरकु जा बखत मिलनो हे तो "चल तू विषाद करे तो भी मैं तोकु मिलवे आऊँ, गुरुके रूपमें." एक बखत तु मेरे लिए विषाद तो कर. एक बखत रो मेरे लिए, मैं तोकु रोवेके कारण मिलूंगो. मेरे लिए हस, मैं तोकु वा हसवेके कारण मिलूंगो." हसनो कोई योग थोड़े ही हे. ये तो एक बेवकूफी हे. दुनियाको कोई भी जानवर मनुष्यके अलावा हसे नहीं हे, बेवकूफ होवेके कारण और सबसु पहलो हसनो अपनूकु बेवकूफीपे ही आवे हे. कोईकी समझदारीपे कोईकु हसनो नहीं आवे. हसी पैदा होवे बेवकूफीसु, पैदा होवे बेवकूफनूमें और पैदा होवे बेवकूफीके लिए. खुलके हसी अपनूकु तब ही आवे जब कोई बेवकूफी करे हे. कोई समझदारी करे वामें कभी हसी नहीं आवे. समझदारी कोई करे तो सब गंभीर हो जायें और डर जायें के क्यों समझदारीकी बात कर रह्यो हे. बेवकूफी करते ही अपनेमें वानरको आवेश आ जाये और बेवकूफीपे हसवेको और गुणाकार हो जाय हे.

ये हसी बेवकूफीकी बात हे. पर यदि भगवान्के लिए हसो, तो भगवान् कहे हें के "चल ये योग हे." क्योंके वो योगेश्वर हे. वाकु मिलवेके लिए योगकी जो साधना हे वापे चलनो जरूरी नहीं हे. यासु गीतामें इतने सारे योग योगेश्वरने बता दिये हें, विषादयोग ज्ञानयोग कर्म-संन्यासयोग देवासुरसम्पद्विभागयोग. पर भगवान् केह रहे हें के योगीके लिए योग नहीं हे पर योगेश्वरके लिए योग हे. फरक यहां पड़े के **"यदि पथि विपथेः वा वर्तयामः सः पन्थः उदयति दिशि यस्यां भानुमान् सैव पूर्वा नहि तरणिः उदेति दिक्पराधीनवृत्तिः"** जा दिशामें सूर्य उग रह्यो हे वा दिशामें पूर्व हे. सूर्य तुम्हारी कही भयी पूर्व दिशामें उगवेके लिए मोहताज नहीं हे. ऐसे ही योगेश्वर योग-शास्त्रकी विधिन्के अनुसार योग करावेको मोहताज नहीं हे. वो जा विधिसु योग करा रह्यो हे, वो ही योग, योग हो जा रह्यो हे. योगेश्वरके लिए द्वेष भी एक योग हे, क्रोध भी एक योग हे. **"गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषात् चैद्यादयो नृपाः"** (भाग.पुरा.७।१।३०) जाकु योग बनानो हे वाकु वो बना सके. तुम डर रहे हो, तो चलो तुम्हारो डर भी एक योग हे. मोसु डर रहे हो तो अपन् डरके कारण मिल जायेंगे. तुम मोसु ईर्षा कर रहे हो, तो चलो मैं तुम्हारी ईर्षासु भी तुमकु मिल जाऊँगो. ये योगेश्वरके लिए हो सके हे. तुमकु मेरे प्रति काम-भाव हे, ये भी एक योग हे. बंदरन्के लिए ये सारी बारी बंद कर रखी हे. पर ये संकेत तो दियो ही हे के वो तुमकु चाहे जैसे मिल सके हे. भगवान्के लिए तो सब कुछ योग हे. क्योंके वो जा तरहसु आपकु मिलनो चाहे हे, वा तरहसु आपकु मिल सके हे. आपके पास ये फॅसिलिटी नहीं हे के जा एवेन्युपे आप चलो वा एवेन्युपे भगवान् 'यस्-सर' करके हाजिर मिले. ये सम्भव नहीं हे. वाकु यदि मिलनो हे, तो कोई भी रस्तासु आपकु आके मिल सके. आपकु यदि मिलनो हे तो जो भी कहे भये एवेन्यु हें, उनपे ही आपकु जानो पड़ेगो. आप अंट-शंट कोई मार्गसु जाओगे, तो भगवान् आपकु हाजिर नहीं मिलेगो.

यासु तीसरो लेवल् गीताको योगेश्वर और युयुक्षु के संवादको हे. वो "**श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे कृष्णार्जुनसंवादे 'अर्जुनविषादयोगो' नाम प्रथमोध्याय:**" जैसे ट्रेनूमें थ्री-टायर् कम्पार्टमॅन्ट् होय हे वैसे ही गीतामें भी थ्री-टायर् हें. कम्पार्टमॅन्ट् एक ही हे पर वामें सोवेके तीन बर्थ् हें. ये तीन बर्थ् होवेके कारण भगवान् यहां आज्ञा कर रहे हें के "**यज्ञे तपसि दाने च स्थिति: 'सद्'इति च उच्यते**" (भग.गीता १७।२७) शास्त्रके हिसाबसु कहे गये यज्ञ तप और दान में तुम स्थित हो तो एवेन्यु तुम्हारे आवेके लिए खुल्यो रख्यो हे. पर "**कर्म चैव तदर्थीयं**" तुम कुछ कर्म करके मोसु मिलनो चाहह रहे हो, तो मैं योगेश्वर हूं. जो भी कर्म हे वो करो. जो तुम्हारे कर्म हें, वो करो. जरूरत नहीं हे के मेरो कर्म करो. तुम तुम्हारो कर्म कर रहे हो पर यदि मेरे लिए कर रहे हो, तो मेरे यहाँ घंटी बज रही हे. और जब घंटी बज रही हे, तो दरवाजा खोलके मैं योगेश्वरकी कॅपेसिटीमें तुमसु मिलवेकु तैयार हूँ. एक बखत ये घंटी बजाओ के ये कर्म मैं अपने कर्तृत्वके अहंकारकु संतुष्ट करवेके लिए नहीं कर रह्यो हूँ. मेरी फलाकांक्षाके लिए नहीं कर रह्यो हूँ. ये कर्म मैं पूरी गंभीरतासु तेरे लिए कर रह्यो हूँ. बस घंटी बज गयी और वो दरवाजा खुल जायगो. "**कर्म चैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधियते**" ये इश्यु हे.

प्रश्न : पुष्टिसृष्टि काया, मर्यादा वाणी, प्रवाह मन और चर्षणी भगवान्की चर्षणी शक्तिसु गवर्न मान सकें?

उत्तर : निघंटु निरुक्तमें एक वचन आवे हे के मंत्रद्रष्टा ऋषि जब पृथ्वी लोककु छोड़के दिव्यलोकमें जावे लगें तो मनुष्यन्ने कही के जितने मंत्र प्रकट भये हें, इतने मंत्रन्के अनुसार अपने जीवनकी समस्यान्को समाधान तो हम खोज सकें पर यदि आगे जीवनकी कोई ऐसी समस्या खड़ी भयी के जाको समाधान इन मंत्रन्में नहीं होय, तो उनको समाधान हम कहांसु काढ़ेंगे क्योंके हमकु तो मंत्र

देखने आवे नहीं हे. तो जाते-जाते ऋषिनूने मनुष्यनकु एक बात कही के हम तो जा रहे हें पर तुम्हारे बीच एक ऊह-ऋषि छोड़ जा रहे हें. 'ऊह-ऋषि'को मतलब अनुमान ऋषि. एक अनुमान करवेके लिए या ऋषिकु तुम्हारे भीतर छोड़ जा रहे हें और तुम अनुमान लगाइयो के इन मंत्रनके आधारपे तुम्हारी समस्याको क्या समाधान हो सके हे! बहोत सारे लोगनूको वो ऋषि सोयो भयो होवे और कोई-कोईमें जग्यो भयो भी होवे हे. ये प्रश्न जाको हे, वामें वो ऊह-ऋषि जग्यो भयो हे. बात इतनीसी हे.

हमारे एक कजिन् हे, उनने एक बहोत गंभीर लीला मोकु बताई. उनके मंदिरके कंपाउन्ड्में कुत्ता घुस गयो. वा कुत्ताकु भगावेके लिए उनने हाथ हिलायो, तो दीवारके दूसरी तरफ एक शास्त्रीजी हते, वो आ गये और बोले के "महाराज! आपने मोकु बुलायो?" वो बोले "नहीं, नहीं! मैं तो कुत्ता भगा रह्यो हतो." तो गलत ऊह भी हो जाय. पर प्रभुने जो ऊहकी सामर्थ्य दी हे अपनकु और वो यदि जाग्रत अवस्थामें होय, तो सच्चो भी हो सके. मोकु लगे के आपको सच्चो हे, गलत नहीं हे. क्योंके कहीं न कहीं प्रभुमें ओरिजिन् तो देखनो पड़ेगो. "**यथासंख्याम् अनुदेशः समानाम्**" (पाणि.सू.१।३।१०) "**समसम्बन्धी विधिः यथा संख्यं स्यात्**" (पाणि.सू.वृ.१।३।१०) यासु मोकु लग रह्यो हे के ऊह तो सच्चो हे.

(अहंता-ममताके मॅनेजमॅन्टकी प्रक्रिया गीतामें)

"**यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः 'सद्'इति च उच्यते कर्म चैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधीयते**" (भग.गीता १७।२७) या श्लोकके आधारपे अपनूने देख्यो. ये गीताके सारे उपदेश अपने अहंकार और ममता कु मॅनेज् करवेके लिए ही हे. बहोत ठिकाने शब्दनूसु गीतामें "**निर्ममो निरहंकारः**" (भग.गीता २।७१) ऐसो भी उपदेश दियो जा रह्यो हे.

वासु बहोत लोगनकु भ्रांति हो जाय के गीता अहंकार और ममता के मॅनेजमॅन्टको उपदेश न देके शायद खंडित करवेकी, खतम करवेकी बात कर रही हे. मैं आपकु बता चुक्यो के सांख्य योग तप वैराग्य दान कर्म ज्ञान कोई भी साधना ऐसी नहीं हे के जाकी प्रि-कंडीशन् अहंता-ममता न होय. और खास करके गीताको स्वकर्मपे अधिक भार हे. यदि 'अहं' नहीं हे मानें 'मैं कौन हूँ' ये ही निर्धारित नहीं हे, तो कर्मको निश्चय होयगो कैसे? "मैं कौन हूँ?" वाके बारेमें गीतामें भी पर्याप्त रूपसु समझायो गयो हे पर उतने विस्तारमें अपन् जा नहीं सके हें.

[९]

(कपिलगीताकी महत्ता)

एक बात ध्यानसु समझो के जैसे ये कृष्ण-गीता हे, ऐसे भागवतमें एक कपिल-गीता भी हे. इन्हीं सारे प्रश्ननकु कपिल-गीताने भी बहोत अच्छे ढंगसु टॅकल् किये हें. वाहीके लिए कपिल-गीताकु अपनूने युनिवर्सिटीके कोर्समें भी प्रिस्क्राइब् कियो हे. कपिल-गीता पढ़नी चहिये. क्योंके महाप्रभुजीकी मॅटाफिज़िक्स् ॲपिस्टमोलॉजी और धर्मको जो कॉन्सेप्ट् हे वे तीनोंन्पे कपिल-गीताको बहोत अधिक प्रभाव हे. वो प्रभाव अपन् यों समझ सके हें के जब सर्वनिर्णयप्रकरणमें महाप्रभुजीने इन प्रश्ननकु टॅकल् कियो, तो सीधी-सीधी कपिल-गीतासु वो मॅटर् ट्रांसफर् करी हे. एक विलक्षण बात बताऊँ के सेवाफलके जो फलत्रय हें, वे भी कपिल-गीतासु महाप्रभुजी ले रहे हें. यद्यपि पुरुषोत्तमजी यों कहे हें के एकादश स्कंधकी उद्धवगीतासु अपने यहां सेवाकी प्रक्रिया आयी हे. पुरुषोत्तमजी ठीक केह रहे हें क्योंके पुरुषोत्तमजीने महाप्रभुजीके ग्रंथन्को वा तरहसु अवगाहन कियो हे. पर अपनो पुष्टि-भक्तिमार्ग उद्धवगीतासु डिराइव् होते भये भी, सेवाफलमें उद्धवगीताके बजाय कपिल-गीतापे अधिक रिलाय् कियो हे. क्योंके उद्धव-गीता और अर्जुन-गीता, दोनोंमें कृष्ण उपदेशक हें. अर्जुन-गीतामें कृष्ण और अर्जुन के रिलेशन् कई प्रकारके हें, जो मैं आपकु बता चुक्यो हूँ. उद्धवजी भी भगवान्के कई प्रकारके रिलेशन्में हें. वो यादव होवेके नाते रिलेशन्में हे और अर्जुन कौरव-वंशके नाते रिलेशन्में हे.

पर कपिल-गीता तो इदं तृतीयं हे जहां कपिलजी उपदेशक हे और शिष्य हें उनकी मां. बेटाने मांकु समझायो हे. इतनो ये मजेदार कॉन्ट्रास्ट् हे के बेटा मांकु समझा रह्यो हे. वहांसु महाप्रभुजी सेवाफलको कॉन्सेप्ट् डिराइव् कर रहे हें तो अपन् समझ सके हे के कपिलगीताको अपने यहां महत्त्व कितनो अधिक हे. सिद्धांत-रहस्य अथवा बालबोध में लियो होतो तो समझ सकते हते पर सेवाफलमें

वाको आनो कुछ अधिक मायने रखे हे.

वा कपिल-गीतामें कपिलजी एक बात कर रहे हें के अहंकार क्रियारूप हे. क्रियारूप कैसे हे के कार्यरूप कर्तव्यरूप और कारणरूप. 'कार्यरूप' मानें के अहंकारको कुछ रूप ऐसो हे के वो पैदा हो रह्यो हे. अहंकारको कुछ फंक्शन् ऐसो हे के जो कुछ बातनकुं पैदा करे हें सो कारणरूप और जो कर्तव्य हे वो केवल अहंकारकु पैदा करे और पैदा होवे ऐसो नहीं पर तीनों रूप अहंकारके हे और इन तीनों रूपनको निर्वाह करते भये भी अहंकार क्रियारूप हे. अपनकु आश्चर्य होवे के जो अपनी रूढ़ समझ हे, वो ऐसी हे के क्रिया और ज्ञान दो अलग-अलग वस्तु हें. अपनकु तो इतनो घबरावेकी आवश्यकता नहीं हे.

एक सॅमिनारमें मैंनें एक प्रपोजल् रख दियो हतो के "हर ज्ञानेन्द्रियमें कुछ क्रिया अथवा फंक्शन् चल रहे हें और हर क्रियाकी इन्द्रियमें कुछ ज्ञानके भी रूप हें." सारे पार्टिसिपेंट् मेरपे गुस्सा हो गये. "आप ऐसे कैसे केह रहे हो. कर्मेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय हे और ज्ञानेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय हे."

पुराने जमानामें बच्चाएं एक खेल खेलते हतें, जामें चलते-चलते वे एक-दूसरेकु स्टॅच्यु केह देतें. जैसे ही एककु स्टॅच्यु कही, वो वैसे ही रेह जातो और जब-तक वाकु नयो निर्देश नहीं दें, तब-तक वो वैसे ही खड़ो रहतो. कोईने एक वचन बोल दियो, तो बस 'स्टॅच्यु'. सब खड़े हो जायें. आगे बढ़े ही नहीं. और वचन उनकु छुट्टो करे नहीं. यासु विद्वान वहीं खड़ो रेह जाय हे. विद्वान, मूर्ख नहीं हे, समझदार हे पर जब शास्त्रवचन वाकु स्टॅच्यु कर दें, तो वो खड़ो हो जाय. ऐसे बहोत सारे विद्वाननकु शास्त्र स्टॅच्यु कर दे हे.

पर शास्त्रने एक 'ऊह' भी तो दियो हे. वा ऊहकु भी वापरनो चहिये के वा स्टॅच्युमेंसु बाहर कैसे निकलनो. खेलमें तो बच्चा स्टॅच्यु करें और थोड़ी देर बाद वाकु छुट्टो भी करे हें पर शास्त्र जा बखत उन विद्वानकु स्टॅच्यु करे, उनकु अपने छुट्टे होवेके वचन नहीं मिलें. वहींके वहीं खड़े रेह जायें. ये विद्वाननकी समस्या हे, ऐसो नहीं हे. अपन् सबकी भी ये ही समस्या हे. कोईने स्टॅच्यु कर दियो, तो बस अपन् खड़े रेह जायें और आगे बुद्धि चला ही नहीं रहे हें. यहां ऊह ऋषिको रोल् हे. वो जितनी देर स्टॅच्यु चाहे, ये उतनी देर स्टॅच्यु रहें. स्टॅच्यु रेहनो वा खेलमें खेलको तकाज़ा हे. पर यदि वो छुट्टो कर ही नहीं रह्यो हे, तो कितनी देर स्टॅच्यु रेहनो? कई लोग मोहम्मद साहब होवें. मोहम्मद साहबकी बायोग्राफीमें एक बात आवे हे के उनकु उनको एक दोस्त केह गयो के पैगम्बर! मोकु आपसु बात करनी हे, जरा खड़े रहियो. वो ये केहके आनो भूल गयो. दूसरे दिन आयो, तब-तक मोहम्मद साहब वहीं खड़े रहे. अरे! बात करनी हती तो थोड़ी देर प्रतिक्षा करके नहीं आयो तो चल देनो चहिये हतो. जब वो आयो तो उनने कही के "या तरहकी झूठी प्रॉमिस् कोईकु करनी नहीं चहिये." वो मॅसेज् बहोत अच्छो हे. पर अक्सर विद्वाननकु शास्त्रवचन या तरहसु स्टॅच्यु कर दे हें. वो स्टॅच्युमेंसु बाहर निकलनो अपनकु नहीं आवे. शास्त्रवचन हे तो शास्त्रवचनमेंसु ही बाहर निकलवेकी प्रक्रिया खोजनी पड़ेगी.

('सत्'को त्रिगुणातीत-त्रिगुणात्मक अर्थ)

अपन् यहां देख सके के "**कर्मचैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधीयते**" तुम जो तुम्हारो कर्म कर रहे हो वो यदि वा परमात्माके लिए कर रहे हो "'**ॐ' 'तत्' 'सद्'इति निर्देशो ब्रह्मण: त्रिविध: स्मृत:**" (भग.गीता १७।२३) ये ब्रह्मको निर्देश हे. 'ॐ' मानें 'अ''उ''म' मानें उत्पत्ति स्थिति लय रूप जो जगत्, ब्रह्मा-विष्णु-शिव वा जगत्के

इन्चार्ज् ऑफिसर् जैसे अधिदेव हैं. जागरण स्वप्न सुषुप्ति उनके साइकोलॉजिकल् ॲस्पेक्ट् अपने भीतर हे. ये सब 'ॐ' के अर्थ हैं. 'अ' में आवाज़ गलामें आवे, 'उ' बोले तो वो होंठनूमें आ जाय और 'म' बोले तो आवाज बंद हो जाय. उत्पत्ति स्थिति और लय रूप जो ब्रह्म हे, वो सत् हे. "ॐ तत्" में जो 'ॐ' हे वो 'हे' और वो ब्रह्म हे. मानें वो सत्य (सत्+त्यत्=सत्य) हे. देश-काल-स्वरूपसु अपरिछिन्न हे. जा बखत अपन् "ॐ तत् सत्" बोल रहे हैं, वा बखत ब्रह्मकु एक फॉर्म्यूलाके रूपमें बोल रहे हें जैसे पानीकु अपन 'एच-टू-ओ' केह दें और वामें सारो वॉटर् मॉलेक्यूल्को कॉन्स्टीट्यूशन् आ गयो. ऐसे ही "ॐ तत् सत्" केह दियो तो ब्रह्मको सारो कॉन्स्टीट्यूशन् अपनने केह दियो. वा 'सत्' के बारेमें केह रहे हें "**कर्मचैव तदर्थीयं 'सद्' इत्येव अभिधीयते**" 'ॐ' के अन्तर्गत तुम्हारे जो भी कुछ कर्म हे; जगत्की उत्पत्ति स्थिति और लय अवस्थामें या तुम्हारे जागरण स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थामें, वे ब्रह्मात्मक हैं. जब अपन्ने उनकु सत् देख्यो तो स्टॅच्युमेंसु बाहर आ जानो चहिये. क्योंके 'अ' 'उ' 'म' यदि उत्पत्ति स्थिति लय होंय, तो ब्रह्मके ॲंगल्सु वो सत्त्व रज तम के नियमनूसु नियंत्रित नहीं होयगो. पर जा बखत प्रकृति अथवा जगत् की बात चल रही हे, वा बखत वो 'ॐ' प्रकृतिके त्रिगुणसु नियंत्रित हो रह्यो हे.

ये एक फॅन्टास्टिक् समीकरण हे. देखवेमें कॉन्ट्राडिक्टरी दिख रह्यो हे. बिल्कुल क≠क के जैसे. अब ये बुद्धिग्राह्य तो नहीं हो सके. अपनी बुद्धिमें तो ठूंस-ठूंसके अपनूने ये ही भर रख्यो हे के 'क=क' हे. यद्यपि अपने यहां तो ये बात नहीं कही हे पर ॲरिस्टोटल्ने ग्रीक्में "Laws of thought" कहे हते के तीन लॉ हैं. जिनकु अपन् नकार नहीं सकें. नकारें तो thinking हो ही नहीं सके. ऐसे ॲरिस्टोटल् कहतो हतो. पहलो लॉ हे Law of identity. Every thing is what it is; or, A is A मानें ए=ए.

यदि आप 'ए' कु 'ए' नहीं मान रहे हो, तो कोई विचार आगे चल ही नहीं सके हे. दूसरो हे Law of non-contradiction. A thing can not be both B and not-B; or,'A' cannot be 'A' as well as 'Not-A' 'ए' और 'नॉट्-ए' दोनों एक साथ नहीं हो सकें. यदि 'ए', 'ए' भी हे और 'नॉट्-ए' भी हे, तो थॉट् चल नहीं सके. कविता चल सके पर थॉट् नहीं चलेगो. तीसरो लॉ हतो Law of excluded middle, means between 'A' and 'Not-A' nothing exist. मानें 'ए' और 'नॉट् ए' केह दियो वामें सारी दुनिया आ गयी, कोई चीज बची नहीं. ये 'ए' और 'नॉट् ए' केहवेसु अपनूकु समझ नहीं आवे. पर जैसे मैं यों कहूँ के ये पुस्तक हे और या पुस्तकके अलावा सब चीज ये पुस्तक नहीं हे. अब वामें तो दुनियाकी सब चीज आ गयी. अब बीचको कोई बच्यो ही नहीं. थोड़ोसो और सरल कर दऊँ. अपन् सफेद और कालो कहे वामें Law of excluded middle नहीं आवे हें. क्योंकि जो कालो हे वो सफेद नहीं हे और जो सफेद हे वो कालो नहीं हे. ऐसो अपन् लॉजीकली नहीं केह सके क्योंके जो कालो भी नहीं हे और सफेद भी नहीं हे, वो हरो तो हो सके हे. वो "मध्य-व्यावर्तक" नहीं हे और ये जो तीन Laws of Thought हे. ये thoughts यदि इतने अधिक हे के वो रोग हे. और यदि वो रोग नहीं होय तो essential characterstics हैं. याके बिना अपन् कोई विचार कर ही नहीं सकें. पर मजाक उड़ाये जाय हे या बातके. क्योंके यूरोपमें मनुष्यकी परिभाषा हे.Man is a rational animal तो मजाकमें कहे हैं के God made animal and Aristotle made him ratonal. भगवान्ने पशु बनायो पर क्योंके ॲरिस्टोटल्ने लॉजिक् बनायो, याके लिए वाने वाकु बौद्धिक बनायो या तरहकी rationality हो सके हे. याकु इन्कार करवेमें अपनूकु थोड़ी तकलीफ होयगी पर ये रॅशनेलिटी अपनी खोपड़ीकी छोटीसी इजाद हे. *"नंददास चातककी चोंचपुट सब घन कैसे समाय?"* तुम स्वातिको जल बूंदके रूपमें

पी रहे हो. वो तुम पी सको पर घनकी बरसातको सारो पानी चातककी चोंचमें समावेवालो नहीं हे. ऐसे ही युनिवर्सकी सारी हकीकत या खोपड़ीमें समा सके, वो हो ही नहीं सके. या खोपड़ीमें कितनी बात समा सके? खुले आकाशमें भी अपन् देखें, जहां देखवेको कोई प्रतिबंध जैसे दीवार छत वगैरह नहीं हे, अपने सामने जो हवाई जहाज उड़तो भयो दिख रह्यो हे, वो कुछ समय बाद दिखनो बंद हो जाय हे. क्योंकि खुलो आकाश भी सारो अपनकु नहीं दिख रह्यो हे. जमीनपे अपन् खड़े होंय तो तीन मीलके रेडियस् तक अपनकु दिखलायी दे हे. वासु अधिक दिखाई नहीं दे हे. ऊँचाईपे खड़े हो जाओ तो बारह मील तक दिखाई दे हे. और ऊँचे चले गये तो और बढ़ जायगो पर पूरो तो नहीं देख सकोगे. ये अपूर्णता अपनी सहज बुद्धिकी हे. मानें पूर्णकु पूर्णतया कोई समझ सके ही नहीं हे. पूर्ण जब भी समझमें आयगो तो अपूर्णतया ही समझ आयगो. जैसे अनन्तकु अपन् गिन नहीं सकें. जब भी गिनेंगे तो कोई अन्तकु ही गिन सकेंगे. अपनने बहोत जोर मार्यो तो अरब दस अरब, खरब दस खरब, शंख नील दस नील. बस वहां-तक. वाके बाद टांय टांय फिस्स. क्योंके वो अनन्त हे. शुरुआतमें यूरोपमें मिलियन् तक गिन पाते हते. वाके बाद गिनवेकी कॅपेसिटी बढ़ी, तो बिलियन् आयो. वाके बाद ट्रिलियन् आ गयो. वाके बाद नहीं गिन सकें. जो अपनी गिनवेकी सीमाके कारण अपनेकु एक समस्या होय हे के जो भी पूर्णता हे वाकु अपन् समझें अपनी अपूर्णताके चश्मासु. वासु समझवेके लिए पूर्णताको चश्मा मिलनो बहोत मुश्किल हे. वालिए होवे क्या हे के एक बाजु 'ॐ'कार त्रिगुण हे, वा 'ॐ'कारकी त्रिगुणातीतसु बराबरी कर रहे हें. "ॐ तत् सत्" सत् त्रिगुणातीत हे, निर्गुण हे. त्रिगुण त्रिगुणातीत हे. हे न विरोधाभास! या विरोधाभासकु कैसे समझनो. या तो त्रिगुण कहो या त्रिगुणातीत कहो. पर यदि पूरी हकीकत तुमकु समझनी हे तो पूरी बात समझनी पड़ेगी. वो ब्रह्म त्रिगुणात्मक भी हे और त्रिगुणातीत भी हे.

(त्रिगुणात्मक-कर्मकी त्रिगुणातीतता)

अपन् जो भी कर्म कर रहे हें, अच्छे अथवा बुरे, वे त्रिगुणात्मक हें. पर जब वो ही कर्म हम वाके लिए कर रहे हें, तो अपने कर्मकी त्रिगुणात्मकतासु त्रिगुणातीतताकी तरफ यात्रा शुरु हो जायगी. वो यात्रा अपने कर्मकु त्रिगुणातीतताकी तरफ ले जा रही हे. वालिए भगवान् केह रहे हें **"कर्मचैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधीयते"** यदि तुम्हारे कर्म तदर्थीय हें, तो वाकु सत् मानो. अपने ब्रह्मसंबंधमें **"भगवते कृष्णाय"** याही लिए भयो. "मेरो दारागार पुत्र, जो भी कुछ हे वो तदर्थ हे." वहांसु त्रिगुण **"'सद्'इत्येव अभिधीयते"** आ रह्यो हे. ये बात समझवेकी हे. वो त्रिगुणसु त्रिगुणातीतकी तरफ जावेकी यात्रा हे. जाकु महाप्रभुजी केह रहे हें **"गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना गंगात्वेन निरूप्या स्यात् तद्वद् अत्रापि चैव हि"** (सि.र.८) गुण-दोष त्रिगुणात्मक हें पर जब उनकु समर्पित कर दियो, तो त्रिगुणातीत हो जा रहे हें. ये वाको पिक्चर् हे.

(ब्रह्मकी त्रिगुणातीतता-त्रिगुणात्मकता)

अब यामें कोई भी एक बातकु कॅन्सल् कियो, तो ब्रह्म नहीं मिलेगो और कोई भी एक बातमें अपन् फंस गये, तो भी ब्रह्म नहीं मिलेगो. मानें त्रिगुणात्मक ही हे, तो भी ब्रह्म नहीं मिलेगो और त्रिगुणातीत ही हे, तो भी ब्रह्म नहीं मिलेगो. क्योंके उपनिषद् स्पष्ट कहे हे के **"नेति नेति"** तुम केह रहे हो के त्रिगुणात्मक हे, तो उपनिषद् केह रह्यो हे "नहीं, त्रिगुणातीत हे." तुम केह रहे हो के त्रिगुणातीत हे, तो उपनिषद् केह रह्यो हे "नहीं, त्रिगुणात्मक हे." उपनिषद् तुम्हारी दोनों बातनकु ना पाड़ रह्यो हे.

अब वाकु श्रीशंकराचार्यने ऐसो अर्थ ले लियो और बुद्धने ऐसो अर्थ ले लियो के जो परम सत्य हे, वो न ये हे और न वो हे. असलमें बुद्धने वो सिद्धान्त 'नेति-नेति'सु लियो हे. बुद्धधर्मको

वो मेड्-इन्-इन्डिया प्रोडक्ट् नहीं हे, इम्पोर्टेड् प्रोडक्ट् हे. अपन्ने बुद्धधर्मकु एक्सपोर्ट कियो हे वो कन्सॅप्ट्. बुद्ध भगवान् कहे हें "**यथा यथा समारोपा जायन्ते तत्त्वयोगिनो तथा तथा समारोपा हन्यन्ते तत्त्ववादिना**" जो-जो तुम हकीकतपे आरोप लगा रहे हो, उन सब आरोपन्को मैं खंडन करूँ हूँ. यामें श्रुतिने बुद्धकु स्टॅच्यु केह दियो हे पर श्रुति वा स्टॅच्युकु छुट्टो भी पाड़े हे. "**'न'इति-'न'इति नहि एतस्माद् इति 'न'इति अन्यद् अस्ति**" (बृह.उप.२।३।६) "**नहि एतस्माद् इति अन्यः**" या तरहसु स्टॅच्युकु वो ओपन् भी करे हे. ध्यान दिवावेके लिए वो कहे हे के यदि तुम वाकु एक रूपमें कैद करनो चाह रहे हो, तो स्टॅच्यु. यदि तुम त्रिगुणात्मक ही मान रहे हो, तो वो कहे हे स्टॅच्यु. यदि तुमकु जोश आ जा रह्यो हे के त्रिगुणात्मक नहीं, त्रिगुणातीत हे, तो दूसरो नेति आके केह दे स्टॅच्यु. "**नहि एतस्माद् अन्यः**" याके लिए व्यासजीने कह्यो हे के "**प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः**" (ब्र.सू.३।२।२२) जा बातकी तुम शुरूआत कर रहे हो वो जहांसु शुरु होके जहां खतम हो रही हे, वा खतम होवेके सिद्धान्तपे उपनिषद् ना पाड़ रह्यो हे. मैं अक्सर एक उदाहरण दूँ के अपन् बच्चासु पूछें के हाथी कितनो बड़ो. बच्चा हाथ फैलाके कहेगो "इत्तो बड़ो". अब क्या वाके हाथ मापेंगे. बच्चा तो एक बात केहनो चाह रह्यो हे के जितनो हाथ मैं अपनो फैला सकूं उतनो फैला दऊं, उतनो तो हाथी हे ही. यासु अधिक कैसे फैलाऊं. अपन् लॉजिक् चलाके बच्चाके हाथकु मापें के हाथी इतनो बड़ो होयगो तो अपनी बुद्धिकु हाथीने स्टॅच्यु कर दियो. क्योंके बच्चाके फैलाये भये हाथसु तुम हाथीकु कैसे मापोगे? अपनी बुद्धिके बच्चाने; एक हाथ त्रिगुणात्मकताको और दूसरो हाथ त्रिगुणातीतको, इतनो तो फैला दियो. तो ब्रह्म इतनो ही होयगो. अरे भाई! ब्रह्म यासु भी ज्यादा हे. "**प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः**" (ब्र.सू.३।२।२२) वो इतनो ही माननेकी ना पाड़ रह्यो हे, 'ये हे नहीं' ऐसे नहीं केह रह्यो हे. तुम जितनो

वाकु समझ रहे हो, वो तो हे ही. पर वासु अधिक भी कुछ हे.

(क्रियारूप अहंकार कार्यरूप कर्तव्यरूप और कारणरूप भी)

और या अर्थमें होवेके कारण कपिलगीतामें कपिलजी अहंकारकु क्रिया कहते भये भी कर्ता भी केह रहे हें. अहंकार एक क्रिया हे जो स्वयं पैदा भी हो रही हे, कुछ चीजकु पैदा भी कर रही हे. इतनो ही नहीं वाकु ज्ञात भी हो रह्यो हे.

वो ही बात मैनें सॅमिनारमें रखी हती. सबने कही के ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय तो दो अलग चीज हें. तुम उनकु भेल-सेल क्यों कर रहे हो! मैनें वा बखतकी सॅमिनारमें समझायो हतो के जैसे ये थर्मस् हे, याकु अपन् हाथसु उठावेकी क्रिया कर रहे हें. अब याकु यों करके देखो के याको वजन मालूम पड़ रह्यो हे के नहीं? ये ज्ञानेन्द्रिय भी तो हे के नहीं. हाथ उठावेसु वजन तो मालूम पड़ रह्यो हे तो खाली कर्मेन्द्रिय कहां हे? अपन् चलवेकी क्रिया कर रहे हें पर रस्ता सपाट हे या उबड़-खाबड़ हे, ये पता पड़ रह्यो हे के नहीं? माथाकु थोड़े पता पड़ रही हे, पैरकु पता पड़ रही हे, तो पगमें भी ज्ञानेन्द्रिय तो हे ही. ऐसे ही वाणीसु जब अपन् बोल रहे हें, तो वाणीमें भी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों हें. जितनी ज्ञानेन्द्रिय हे, उनमें कुछ कर्म भी हो रह्यो हे और जितनी कर्मेन्द्रिय हे उनकु कुछ ज्ञान भी हो रह्यो हे. भगवान्ने कुछ फॅसिलिटी अपनूकु घटा दी हे और कुछ बढ़ा दी हे. यासु गाय और कुत्ता की तरह अपन् अपने कानकु खोल-बंद नहीं कर सकें. हंमेशा खुले ही रहे हे. आंखपे तो पलक हे पर कानमें बुच भी नहीं हे. यासु कानकु कंट्रोल् करनो मुश्किल हो जाय हे. वाही लिए जो बहोत ही मोरलिस्ट होवे वो कोईकी निंदा सुने तो कहे "मैं नहीं जानू, कानको दोष हे." अरे! कानको क्या

दोष? वो तो खुल्यो ही रहे हे. निंदा होयगी तो निंदा सुनेगो, स्तुति होयगी तो स्तुति सुनेगो. आंखके पास फॅसिलिटी हे के नहीं देखनो हे, तो मींच लो. कानमें वो फॅसिलिटी हे ही नहीं. खूबसूरती इतनी हे के बहरे लोगनूकु वैसे बात सुनायी नहीं दे पर उनकी निंदा करो तो पहले सुनाई दे. यों बहरे हें पर निंदा तुरंत सुनाई दे जाय. पता नहीं क्या चक्कर हे. अपने कानको स्ट्रक्चर् कुछ अलग ही जातको हे, लोकविलक्षण. जानवर रडारकी तरह अपने कानकु यहां-वहां मोड़ सके जैसे छतपे लगे अन्तर्राष्ट्रीय भिक्षापात्र = डिश ऐंटीना. वामें वो सुविधा हे के जा बाजुसु भिक्षा मिलती होय वाकु वा तरफ मोड़ दो और ये सुविधा जानवरनूमें भी हे. पर अपने कानमें वो सुविधा नहीं हे. अपने कानकी डिज़ाइन् नालीकी तरह बनाई हे के जहांसु भी आवाज आवे वो नालीसु टकराके सीधे कानके अंदर जाय. इतनी सुविधा अपनूकु प्रकृतिने दी हे. ये नहीं बनायी होती, तो तो बहोत लफड़ा होते. क्योंके जाके सामने बात कर रहे हें, वो बात सुनायी नहीं देती, बाजुकी बात सुनाई देती. कुछ सुविधाएं प्रकृतिने अपनेसु छीन भी ली हे. यासु अपनेकु सब कुछ सुनाई नहीं दे हे. यदि आप थोड़ोसो भी जानते होओ कानकी मॅकेनिज़म्के बारेमें. कई ढंगकी फ्रिक्वेन्सी होवे हें साउन्ड्की. वामें कुछ फ्रिक्वेन्सीको बहरोपन होवे हें, सारो बहरोपन नहीं होवे. कोईकु हाई फ्रिक्वेन्सीको बहरोपन होवे, लो-फ्रिक्वेन्सीको बहरोपन होवे, कोईकु मिडल्-लेवल्की फ्रिक्वेन्सीको बहरोपन होवे. अब वाकु मिडल्-लेवल्को बहरोपन हे पर हाई फ्रिक्वेन्सीको बहरोपन नहीं हे. जैसे आंखमें भी ऐसो ही हे. कोईकु दूरको नहीं दिखे. आंखके चश्मा अलग-अलग बनाने पड़ें, पासके और दूरके. वो स्थिति कानमें भी हे. आंख नाक कान चमड़ी इन सारी इन्द्रियनूकु स्टिम्युलेट् करवेके लिए अलग-अलग रिसेप्टर् हे. जैसे कानमें अलग-अलग फ्रीक्वेन्सीके लिए अलग-अलग रिसेप्टर् हे. याही तरहसु आंखमें भी विभिन्न रंग देखवेके लिए अलग-अलग रिसेप्टर्स् हें. क्योंके ये सब एक इन्द्रिय बन रहे हें यासु अपन्

इनकु एक समझे हैं. पर ये सब छुट्टे-छुट्टे काम कर रहे हैं. छुट्टे-छुट्टे काम करवेके बावजूद भी ये एक-दूसरेके को-ऑर्डिनेशन्में काम कर रहे हैं. याके कारण अपने अहंकारकी क्रियासु कुछ चीज पैदा भी हो रही हे, कुछ चीजकु अपनो अहंकार पैदा भी कर रह्यो हे. हाई और लो फ्रिक्वेन्सीके उदाहरणसु याकु समझ जाओ या रंगके स्पेक्ट्रम्सु समझ जाओ के कोई रॅन्ज् कोईकु दिखे और कोई रॅन्ज् कोईकु नहीं दिखे हे. जैसे मैं अपनी बात बताऊं के गहरो हरो और गहरो लाल, इन रंगन्को भेद मोकु नहीं दिखे हे. मेरी आंखमें वाके प्रभेदको रिसेप्टर् नहीं हे और सब रंग दिखें. जानवरन्में भी ऐसो हे के कोईकु दिनमें नहीं दिखे, तो कोईकु रातमें नहीं दिखे हें. समझो के आंख आंख तरीके एक हे पर वा एकमें अनेक रिसेप्टर्स हें. उनमेंसु कोई मॅल्-फन्क्शन् कर सके और कोई प्रोपर्-फंक्शन् कर सके हे. यासु अपन् समझ सके हें के अहंकार जो क्रिया हे वो खुद भी कोईसु पैदा हो रह्यो हे, कोईकु पैदा कर भी रह्यो हे और वा पैदा करवेमें वाको कर्तव्य-भाव भी हे. वो बिल्कुल अंधशक्तिकी तरह पैदा हो रही हे और पैदा कर रही हे, ऐसी बात नहीं हे. वाको भान भी वाकु हे.

(त्रिविध अहंकारके शॉकॲब्ज़ोर्बर् - श्रद्धा एवं शास्त्रोक्त मार्ग)

जब ये अपनूने जान लियो, तो अपन् समझ सके हें के अहंकार सात्त्विक-राजस-तामस, तीनों तरहको हो सके हे. अब एक बाजु अहंकारकी सात्त्विक-राजस-तामसता और जैसे कल मैनें आपकु बताई के श्रद्धाकी भी सात्त्विक-राजस-तामसता हे और याके कारण जो अपनेकु यज्ञ दान तप आदि करनो हे, तो यदि सात्त्विक अहंकारकु सात्त्विक श्रद्धा मिली, तो यज्ञको रूप भी सात्त्विक होयगो. सात्त्विक अहंकारकु राजस श्रद्धा मिली फिर संशय होयगो. कभी श्रद्धा बलवती हो जायगी, कभी अहंकार बलवान हो जायगो. वा असमंजसमें वो साधनके मार्गको अनुमान नहीं रेह जाय. थोड़ो अनुमान तो लगायो

जा सके पर काफी हद तक वाको अनुमान लगानो कठिन हे. उदाहरणके तौरपे यदि हम स्टेडियम्में क्रिकेट खेल रहे हें और कोई खिलाड़ीने छक्का मार दियो तो वो कहां-तक जा सके? स्टेडियम्की चार दीवारी तक ही तो जायगो. कोईने चौका मार्यो, जो सीमा बनाई हे वहीं तक तो जायगो. कोई खिलाड़ी बॉल् हिट करके दौड़के एक रन बना सके, कोई दो रन भी बना सके. ये सब थोड़ो प्रॅडिक्टेबल् और थोड़ो अन्प्रॅडिक्टेबल् हे के नहीं! उतनो फ्लक्चुएशन् वाने भी अलाऊ कियो हे. कोई भी अच्छी मशीन्में या प्रकारको वेरियेशन् अलाऊ हे. जैसे कोई भी अच्छी गाड़ीमें शॉक्-ॲबजोर्बर् लगे होवें के जाके कारण छोटे-मोटे गड्ढान्को झटका वो झेल लेवे हे और गाड़ी अथवा यात्री कु वो झटका नहीं लगे हे. ऐसे ही अपने घुटनामें अपनी पिंड़लीमें प्रकृतिने शॉक्-ॲब्ज़ोर्बर् दिये हे.

ऐसे सत्त्व तम गुणके जो बदलाव आ रहे हें, उन बदलावन्में भी शॉक्-ॲब्जोर्बर् हे. नहीं हे ऐसी बात नहीं हे. जब अपन् सत्त्वसु रज अथवा रजसु तम अथवा तमसु सत्त्वमें जा रहे हें, वाको जो शॉक् लगे वो ॲब्जोर्ब् कैसे होवे? वाकी एक बहोत सूक्ष्म प्रक्रिया हे. यदि अहंकार सात्त्विक हे और श्रद्धा राजस हे तो राजसके कारण जो शॉक् लग रह्यो हे, वाकु सात्त्विक अहंकार ले ले हे, क्योंके वो स्थिर हे. यदि श्रद्धा सात्त्विक हे और अहंकार राजस हे, तो शॉक्कु श्रद्धा सहन कर ले हे. या तरहसु आपसी झटका सहन करवेकी सिस्टम् प्रकृतिने हमकु दी हे. इतने कौभांडन्में भी अपन् टूट नहीं जायें, याके लिए ऐसो कियो गयो हे. वरना इतने झटकान्सु तो आदमी टूट जाय. टूटे कौनसी वस्तु जो शॉक्कु झेल नहीं सके हे. सर्कस्में जो ऊपरसु कूदे हे. उनके लिए एक नीचे जाली लगाई जाय हे, जो उनके कूदवेको सारो झटका सहन कर ले हे के जासु उनकी हड्डी नहीं टूटे. ऐसे ही हर जगह शॉक्-ॲब्जोर्बर् दिये गये हे. कर्म-ज्ञान-भक्तिमें सांख्य-योगमें, तप-वैराग्यमें सभीमें ऐसे

शॉक्-ॲब्जोर्बर् दिये गये हें. मैनें सत्त्व-रजको बतायो ऐसे ही रज-तमको तम-रजको सभीको हो सके हे. या सारी बातकु समझावेके लिए भगवान्ने गीतामें जैसे कपिलजीने कही के अहंकार मूलमें क्रियात्मक हे और वो कुछ पैदा कर रह्यो हे, पैदा हो रह्यो हे और वाकु ये करवेको भान भी हे. इन तीनों प्रक्रियान्में वाकु "शान्त घोर विमूढात्मा' बतायो गयो हे. वो शान्त भी हे, घोर भी हे और विमूढ़ भी हे. 'शान्त' मानें सात्विक, 'घोर' मानें राजस और 'विमूढ़' मानें तामस. जाको सात्त्विक अहंकार हे, वो सात्त्विक हे. जाको घोर अहंकार हे, वो 'राजस' मानें जो हमेशा ऊँचो-नीचो होतो ही रहे हे. एक मिनिट भी वो शांत नहीं बैठ सके. जाको तम अहंकार हे वो एक प्रकारके इनर्शिया मानें जड़तामें चल्यो गयो हे के वाने अपनो स्वरूप सोच लियो, वाके अलावा वाको कोई स्वरूप हो नहीं सके हे.

(अहंकारके परिज्ञाताको रूप)

वा तरीकेके अहंकारकु लक्ष्यमें रखते भये भगवान् केह रहे हें के "**ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः**" (भग.गीता १८।१८) मैनें आपकु प्रक्रिया बतायी के ये सब कैसे हो रह्यो हे. वा प्रक्रियाके तहत अपनकु कुछ ज्ञान होवे. कुछ अपने सामने ज्ञेयके रूपमें आवे हे के जाकु अपन् जाने हें. जा बखत अपन् अहंकारसु ज्ञानके मोड्में काम कर रहे हें, वा बखत वो अहंकार परिज्ञाता बन जाय, कर्ताकि बजाय. 'परिज्ञाता' मानें अच्छी तरहसु जानवेवालो. याको मतलब समझो के क्या वो अच्छी तरहसु जान रह्यो हे? ध्यानसु समझो के चल पैर रह्यो हे. देख आंख रही हे, छु हाथ रह्यो हे, कान सुन रह्यो हे पर अहंकारकु लगे के नहीं; मैं चल रह्यो हूँ, मैं सूंघ रह्यो हूँ, मैं स्वाद ले रह्यो हूँ, मैं सुन रह्यो हूँ, मैं छू रह्यो हूँ. अहंकार परिज्ञाता बन जाय के मैं कर रह्यो हूँ. असलमें अहंकार अपनी आत्म-चेतनाके

अलावा कोई दूसरी चीजकु देख नहीं सके हे. क्योंके 'अहं' मानें मैं. जब अहंको द्वि-वचन ही नहीं होय, तो बहुवचन कहांसु होयगो. पर वामें ये फॅसिलिटी भरी भयी हे. कर्मेन्द्रिय ज्ञानेन्द्रिय, उन सबमें जो भी इन्फॉर्मेशन् आ रही हे वो जा रही हे अहंके पास.

बहोत सारे ऑफिसन्में छोटे आदमी घूस खावें. अपन्कु गुस्सा भी आवे. इतनो गुस्सा मिनिस्टरन्के खावेपे नहीं आवे. पर चपरासी क्लर्क घूस खावे तो अपन्कु गुस्सा आवे. पर जो बात अपन् भूल जाये हें वो ये के ये पूरी एक चेईन् हे. जो भी छोटे लेवल्पे अपन् घूस दे रहे हें, वो पहोंच तो रही हे मिनिस्टर् तक. अहंकार अपनो वा तरीकेको मिनिस्टर् हे. इन्द्रियकु जो कुछ घूस मिली, वो अहंकार तक पहोंच रही हे. आंखकु कुछ रूपकी घूस मिली, वो अहंकार तक पहोंच रही हे. याही तरहसु नाक त्वचा जीभ की भी घूस अहंकारकु मिले हे. घूस कैसे जा रही हे वो देखो के वो ली जा रही हे एक छोटेसे काउन्टर्पे जहां वो मिनिस्टर् हाजिर नहीं हे, पर पहोंच रही हे मिनिस्टर् तक. मैं घूसकी कथा नहीं समझा रह्यो हूं, अहंकारकी कथा समझा रह्यो हूं. या कथासु अहंकारकी कथा समझनी हे. जो भी घूस अपन् इन्द्रियन्कु खवा रहे हें, वो पहोंच रही हे अहंकार तक के मैं देख रह्यो हूं. मैं सुन रह्यो हूं इत्यादि. याके लिए अहंकारकु 'परिज्ञाता' कहे हें के वो कर्ताके बजाय अब परिज्ञाता हो गयो. कहीं भी हाजिर नहीं हे पर जान सब कछु रह्यो हे.

(ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता कु कर्मविधि)

"ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना..." शास्त्रमें यज्ञ दान वगैरहकी जो विधिएं हें वे इन तीन चीजन्कु पहले पकडे हें. पहली के वो कौन-सी चीजको ज्ञान आपमें पैदा करनो चाहे हें. दूसरी के आप क्या जान रहे हो और तीसरी के वो आपकु परिज्ञाताके

रूपमें मान रहे हे. शास्त्रकु अच्छी तरहसु मालूम हे के तुम्हारे परिज्ञाता होवेको रहस्य क्या हे. तुमने कोईसु मांगी नहीं हे पर घूस सारी तुम्हारे पास पहोंच रही हे. रघुनाथलालजी दादाभाईकी यात्रामें व्रज गयो. गोकुलके मुकामपे मैं भोजनके बाद ठकुरानी घाटपे जाके बैठ जातो. जितने भी यात्री आते उनकु पंडा ऐसो लूटते के हद हो जाय. एक दिन देखते-देखते मेरो मन उकता गयो. एक दिन एक पंडाकु पकड़के मैंनें कही के "यदि तुम यात्रीनुकु पकड़-पकड़के लहु नहीं चूसो तो इनकी श्रद्धा बढ़ेगी तो वे तुम्हारे बेटा-परपोता तक आते रहेंगे. यदि इनकी श्रद्धा खंडित हो गयी तो ये तो आ रहे हें पर इनके बच्चाएं नहीं आयेंगे. तुम्हारे बच्चाएं भूखे मर जायेंगे." अपने अहंकारके कारण मैं समझ्यो के मैंने एक बहोत बड़ो तत्त्वज्ञानको उपदेश पंडाकु दियो. पर पंडाने मोकु वासु भी बड़ो तत्त्वज्ञानको उपदेश दे दियो. "महाराज! हमारे पास तुम्हारी तरह समाधानी रखवेके पैसा नहीं हे, नहीं तो हमऊ नाहीं मांगते. हमारो समाधानी मांगतो." मैं भाग्यो वहांसु. ये तो तत्त्वज्ञानको उपदेश देनो भारी पड़ गयो अपनेकु. महाराज कुछ नहीं मांगे. समाधानी जाके मांगे. बदनाम होय तो समाधानी. महाराज तो बस आशीर्वाद दे. सबके सामने सौम्य प्रकृति प्रकट होवे और घोर प्रकृति प्रकट ही नहीं होवे. घोर प्रकृति आउट-सोर्स् कर रखी हे. समाधानी पंडानुकी तरह लहु पीवे हें. वाके बाद ठकुरानी घाटपे बैठनो ही मैंनें छोड दियो. तत्त्वज्ञान मिलवेके बाद मोक्ष हो जाय न! संसार-बंधन तभी तक हे जब-तक तत्त्वज्ञान नहीं होय.

"**ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना**" कर्मके जो भी कुछ निर्देश हें वो या बातकु ध्यानमें रखके दिये जाये के बैठे बिठाये एक परिज्ञाता बन गयो. अब जब वो परिज्ञाता बन ही गयो, तो एक चीज नहीं, पचास चीज वाकी जानकारीमें आयेगी. क्योंके एक तो वो "शान्त घोर विमूढ़" प्रकृतिसु ही हे. अब कौनसे समय

वाकी शान्त अवस्था हे, कौन समय वाकी घोर अवस्था हे और कौन समय वाकी विमूढ़ावस्था हे, वा समय दस इन्द्रिय और तीन अन्तःकरण सु उनकु कैसे लेनो वो वाके हाथकी बात हे. कोई फिक्स् बात नहीं हे, वो फ्लक्च्युएट् हो सके हे.

(कर्मसंग्रह त्रिविध, कर्ता-करण-कर्मसु)

"**करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः**" और कुछ करण हे. जैसे आपकु कोई यज्ञकी विधि मिली. शास्त्र केह रह्यो हे यज्ञ करो. आपके परिज्ञाताने यज्ञ तो समझ लियो के करनो हे. यज्ञरहित जीवन, शास्त्र कहे हे के वो आसुरी जीवन हे. 'यज्ञ'को अर्थ आगमें घी झोंकनो नहीं हे अपितु देवपूजन हे. "**देवान् भावयतानेन ते देवाः भावयन्तु वः**" (भग.गीता ३।११) देवपूजनरहित जीवन आसुरी जीवन हे.

'**तप**' व्यक्ति नहीं करे, तो शास्त्र कहे हे के "**अतप्ततनुः न तदामो अश्नुते**" कोई भी फल जब-तक पके नहीं तब-तक वामें मिठास नहीं आवे. जो भी तुम्हारे साधनाचरण हे, वामें जब-तक तुम तपे नहीं तब-तक साधनाचरणको फल नहीं आवे. योगमें भी स्पष्ट बतावें और महाप्रभुजी भी ये ही बात केह रहे हें के योग उतनी देर करनो चहिये के जब-तक पसीना नहीं आवे. जिम्में भी जाओ तो एक पसीना पोंछवेके लिए नेपकिन् साथ ले जानी पड़े. अतः जब-तक तुम तपोगे नहीं तब-तक तुममें मिठास आनेवाली नहीं हे. वो चाहे बाटी होय के चाहे खीर होय के खिचड़ी होय के चाहे रोटी होय, जो स्वाद हे, वो तपवेपे ही आवे. रेडीमेड् स्वादमें वो स्वाद नहीं होवे हे जो तपके आवे हे. मिठास तो तपवेपे ही आवे हे.

'दान' दानमें भी ये ही प्रश्न हे के कौनकु क्या देनो और

क्या नहीं देनो. जो जाके पास होयगो वो ही तो देगो. कोई भाई दारू पी-पीके मर गये तो पुरोहितने कही के इनके शैयादानमें जो भी कुछ इनकु प्रिय लगतो हतो, वो सब रखो. बेटाने कहीके इनकु जीवनमें एक दारू ही प्रिय हती. सो वाने खाली और भरी भयी सब बोतल शैया दानमें धर दीं. महाराज भाग गये वहांसु. अरे! जो पास होयगो वो ही तो बेटा देगो. तुमने कही के जो प्रिय वस्तु होय वो सब धरो. अब उनकु तो सिर्फ बोतल ही प्रिय हती. सो वाने वो ही धर दी. तो समझो के दान देवेमें भी थोड़ी समस्या तो हे ही. अपन् जितनो सरल याकु समझे उतनो हे नहीं. क्योंके पाछे लेवेवालेकी क्या दुर्गति होयगी वाको तो कोई हिसाब ही नहीं हे.

मैं अक्सर एक बात बताऊँ के मैं सर्वोत्तम स्तोत्रके प्रवचन करतो हतो, तो वहां एक भाई केशोदसु आते हते. वो सुनके यों यों झूमते हते. मोकु भ्रांति हो गयी के यासु अच्छो श्रोता मेरो और कोई नहीं हे. क्योंके और सब श्रोता तो डोबा बनके सुनें पर वो तो झूम-झूमके सुनते. मोकु भ्रांति हो गयी के मैं शुकदेव और ये मेरो परीक्षित हे. मैं वाकु ही देख-देखके प्रवचन करवे लग गयो. वाकु और झूमवेको सहारा मिल गयो. एक दिन वाने पूछी के ‘‘तुम्हारो जनमदिन कब हे.’’ मैंने बता दियो, तो बोले ‘‘आऊँगो.’’ मैंने कही ‘‘आइयो!’’ कोई इतनो अच्छो श्रोता जन्मदिनपे आवे, तो वासु अधिक सुखकी बात और क्या हो सके? वो इतनो बड़ो कार्टन् लायो. मैं समझ्यो के कोई बहोत अच्छो उपहार लायो होयगो. खोलके देखी, तो वहां छःह बोटल दारूकी. अब लक्ष्मी मोपे नाराज हो गयी के ये आपने कैसे ली. अरे भई! मोकु क्या पता के या कार्टन्के अंदर क्या हे? मैंनें कही के ‘‘अपन् कोईकु देंगे तो पूछेगो के कहांसु आयी? फेंकेगे और कोईने फेंकते भये देख लियो तो अपनू और फँसेंगे. याको सबसु अच्छो

तरीका हे के याकु संडासमें बहा दो." अब तो लक्ष्मी और नाराज हो गयी के "संडास छू जायगो." "अरे भई! आयी भयी बोटलकु डालनो कहां ये तो बताओ?" वो तो बादमें मोकु पता चल्यो के वो भाई झूम बराबर झूम शराबी हतो. श्रोता कौन हे वो अपनकु क्या पता चले? "**ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः**" जो तुमकु करवेके लिए बतायो हे वाको संग्रह पाछो किनसु होयगो? वो कारण भी त्रिविध होयगो, कर्ता भी त्रिविध होयगो और कर्म भी त्रिविध होयगो. अब आपकु समझ आ गयी होयगी के अहंकार सहस्र फनवालो कैसे हे. इन सबके परम्युटेशन् कॉम्बीनेशन् असंख्य बनेंगे. शास्त्र तो केह रह्यो हे के ये यज्ञ करो पर वाकु आप कैसे समझे हो. देखो, वा भाईकु भी मैंनें ही कही हती के ठीक हे उपहार ले आओ. मैंनें ये थोड़े ही कही हती के बोटल ले आओ. वाने कही के "तुम्हारो जनमदिन कब हे? आपकु गिफ्ट देनी हे." मैंनें कही "ले आइयो! खुशी होयगी मोकु." खुशीके बजाय दुःख हो गयो. अपनकु पता नहीं चले सात्त्विक राजस तामस के कारण केवल सात्त्विकता प्रबल हो रही हे, कब राजसता प्रबल हो रही हे, कब तामसता प्रकट हो रही हे, अपनेमें भी और श्रोतामें भी और अपने बोलवेके टोनमें भी. अपन् समझें के बोलवेके टोनमें सात्त्विक नहीं हे, ऐसी बात नहीं हे. वामें भी सात्त्विक राजस तामसता हे.

मैं एक सभामें गयो, मोकु इतनो आश्चर्य भयो. वामें संन्यासी आये हते. वो संन्यासी केह रहे हते के "भाइयों माताओं और बहनों. अपने भारतकी प्रमुखता हे शक्तिमें. हम लोग शक्तिके पूजक हें. ब्रह्माके पास सरस्वतीकी शक्ति हे, विष्णुके पास लक्ष्मीकी शक्ति हे, शिवके पास पार्वतीकी शक्ति हे. इसलिए मैं सब माताओं और बहनों को कहता हूँ के सब हाथमें एक-एक बंदूक ले लो और मारो सबकु!" अरे! ये कोई संन्यासीको प्रवचन हे. 'माता-बहनों'सु

बात शुरु करी और पहोंच गयी सबकु मारवेपे. मैं तो घबरा गयो. अब देखो बोलवेमें भी राजसता आ रही हे. वो ही बात सात्त्विकतासु भी कही जा सकती हती. "सब देवन्की शक्ति हे. शक्तिको मान करो." वो ही बात सात्त्विक हो गयी. कोई बखत तामसता भी आ सके बोलवेमें. हमारे एक शास्त्रीजी हे उनके बोलवेकी टोन्में एसी तामसता हे. "येऽऽऽऽबात ऽऽऽ सिद्धान्तऽऽऽ मुक्तावलीमें कही" ऐसी तामसता के अपन्कु भी प्रवचनमें नींद आ जाय. मैंने एक दिन उनके प्रवचनकी एक घंटा अध्यक्षता करी. मैं खुद सो गयो. एक शब्द और दूसरे शब्दके बीचमें आदमी दो बार सो ले इतनो अन्तराल. तो समझो के बोलवेके टोन्में भी सात्त्विकता राजसता तामसता हो सके हे. उन सबको पाछो परिज्ञाता कौन हे? 'अहंकार' मानें मिनिस्टर्. मिनिस्टर्को अर्थ समझो हो? जाको स्तर बहोत मिनी होय मॅगा नहीं होय, वो मिनिस्टर्. वहां-तक लोगन्की केवल घूस ही जाय हे तकलीफ नहीं जावे हे. अहंकार भी मिनिस्टर् होवेके कारण परिज्ञान सबको रखे हे पर तकलीफ कोईकी नहीं ले हे. याके कारण जब अपन् कर्मसु ज्ञानसु भक्तिसु योगसु सांख्यसु वाको ईलाज कर रहे हैं, तो भगवान् गीतामें समझा रहे हैं के "**ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः**" (भग.गीता १८।१९) चाहे ज्ञान होय, कर्म होय, कर्ता होय, उन सबमें पाछी त्रिविधता हे. रेज टु थ्री, रेज टु थ्री, रेज टु थ्री की तरह ये गुणा होतो ही जा रह्यो हे.

(विभक्तमें अविभक्तको ज्ञान=सात्त्विक ज्ञान)

यासु अपन् समझ सके के या तरहसु अहंकार हजार फनवालो हो जाय हे. वाको निष्कर्ष भगवान् कितनी खूबसूरतीसु कर रहे हैं. ज्ञान त्रिविध हे तो सात्त्विक राजस अथवा तामस ज्ञान होयगो. वाकी परिभाषामें बता रहे हैं के "**सर्वभूतेषु येन एकं भावम् अव्ययम् ईक्षते अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्**" (भग.गीता १८।२०)

हर वस्तु नाम-रूप-कर्ममें बंटी भयी हे. पर वा बटे भयेपे तुम्हारो ध्यान अधिक हे तो तुम्हारो ज्ञान सात्त्विक नहीं हे. इन नाम-रूप-कर्मके रूपमें बटी भयी वस्तुन्में जो एक अविभक्त हे, वो यदि भूले-चूके तुमकु दिखाई देतो होय तो तुम्हारो ज्ञान सात्त्विक हे. ज्ञान वो ही हे. जैसे ये वृक्ष हे, यामें कितने पत्ता हें. पर अपन् पत्तान्में विभक्त वृक्षकु देखेंगे तो एक वृक्षको ज्ञान नहीं होयगो. अपन् किशनगढ़की बात ही सोचें तो समझ सके हें. किशगढ़में पुरानो शहर हे, नयो शहर हे, मदनगंज हे, ये सब अलग-अलग बस्ती हे. इन विभिन्न बस्तीन्में किशनगढ़ खो जाय. इस सारी वस्तुन्में घूम-फिरके भी आपकु यदि ये ज्ञान हे के हम किशनगढ़में हे तो **''अविभक्तं विभक्तेषु''** इन विभाजनन्में किशनगढ़ अविभक्त हे, ऐसो यदि ज्ञान आपकु हो रह्यो हे, तो भगवान् वा ज्ञानकु सात्त्विक केह रहे हें. प्रकृतिके तीन गुणन्में सारो सात्त्विक राजस तामस करण कर्म कर्ता सब विभक्त हे, पर इन सब विभागन्में एक त्रिगुणातीतको ज्ञान हो रह्यो हे, तो ज्ञान सात्त्विक हे. जो मैंने आपकु प्रारम्भमें ये बात बताई हती के ''ॐ तत् सत्'' वामें 'ॐ'कु त्रिगुणात्मक लो और 'तत्'कु गुणातीत लो, तो वा गुणातीतकु ऐसे देखनो के एक गुणातीत तीन गुणन्में विभक्त भयो हे. **''सर्वभूतेषु येन एकं भावम् अव्ययम् ईक्षते अविभक्तं विभक्तेषु तद् ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्''** (भग.गीता १८।२०) जितनो भी दिखलाई दे रह्यो हे उन सबकु कॅन्सल् मत करो. जैसो हे वैसो ही रेहवे दो पर वाके साथ-साथ वाकी एक होवेकी सामर्थ्य यदि तुम देख पाते होओ, तो ज्ञान सात्त्विक हे.

(अविभक्तकु भूलके केवल विभक्तज्ञान = राजस ज्ञान)

और **''पृथक्त्वेनतु यज्ज्ञानं नानाभावान् पृथग्विधान् वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्''** (भग.गीता १८।२१) जब ये नाम-रूप-कर्म की बटी भई चीजन्कु अपन् केवल नाम-रूप-कर्ममें ही देख रहे हें और ये भूल गये हें के ये कौनके हें और केवल उनकी

विविधता दिखलाई दे रही हे के कुछ पुण्य हे कुछ पाप हे, कुछ सुंदर हे, कुछ असुंदर हे, कुछ देव हे, कुछ दानव हे, कुछ धर्म हे, कुछ अधर्म हे, कोई स्वर्ग हे, कोई नरक हे, इन सबको ज्ञान हो गयो हे और बुद्धि इनमें स्टॅच्यु हो गयी हे, तो सब कुछमें विभक्तको ज्ञान हो रह्यो हे, तो तुम्हारो ज्ञान राजस हो गयो. क्योंके अब तुम्हारो व्यवहार भी सबकु एक-दूसरेसु छांटके देखवेको ही रहेगो. तुम्हारी समझमें अब वो सुविधा उपलब्ध नहीं हे के तुमकु 'एक' समझमें नहीं आ रह्यो हे.

कुमारिल भट्टने मजाक उड़ायो हे. कोईकु पैसाकी आवश्यकता हती, वाने सौ रुपया उधार मांग्यो. नहीं दिये. "कहीं सौ रुपया उधार दिये जाये हें! हां, चाहो, तो एक-एक रुपया सौ बार ले ले." क्योंके ज्ञान विभक्तमें ही चल रह्यो हे. एक-एक रुपया सौ बार देवेकु तैयार हे पर सौ रुपया उधार देवेकु तैयार नहीं हे. वाकु सौकी नोटको माहात्म्य अधिक लगे हे. ये राजस ज्ञान हे. हमारी हवेलीन्में भी ऐसे ही होवे. बहोत सारे वैष्णव दो-दो रुपया, चार-चार रुपया भेंट करते होय हें. समझो दस हजार वैष्णव हें, तो दो रुपयाके हिसाबसु बीस हजार भेंट आयी न! उनकु बीड़ा अपन् नहीं देवें. पर कोई एक हजार भेंट धरे, तो वाकु बीड़ा दियो जाय. वो निगाहमें आ जाय. वो बीस हजार निगाहमें नहीं आवे. पर जो एक हजार भेंट धरे वाकु अपन् भगवदीय समझे हें. इकलाई उढावो, ये राजस ज्ञान हो गयो. कैसे ज्ञान सात्त्विकसु राजस, राजससु सात्त्विक हो रह्यो हे. ये तो मजाकके उदाहरणसु मैं आपकु समझा रह्यो हूं पर गंभीर बातन्में भी ऐसो ही हे.

(विभागमें एकको ही ज्ञान = तामस ज्ञान)

"यत्तु कृत्स्नवद् एकस्मिन् कार्ये सक्तम् अहैतुकम् अतत्त्वार्थवद् अल्पं च तत् तामसम् उदाहृतम्" (भग.गीता १८।२२) तुमकु सिस्टम्के आगे-पीछे कोईको भी ज्ञान नहीं हे. एक छोटीसी बातकु तुमने या

तरहसु जड़तासु पकड़के रख लियो के हमकु तो बस ये ही सब कछु हे. वा ज्ञानकु भगवान् 'तामस' केह रहे हें. मैं जो बातपे आपको ध्यान खिंचनो चाह रह्यो हूँ, वाकी खूबसूरतीपे ध्यान दो. या बाजु तामस ज्ञानमें भी एकको ही ज्ञान हो रह्यो हे और वा बाजु सात्त्विक ज्ञानमें भी एकको ज्ञान हो रह्यो हे. बीचमें राजसमें विभागन्को ज्ञान हो रह्यो हे. यहां भी एक हे और वहां भी एक हे. पर वो ही एक यहां वा ज्ञानकु तामस बना रह्यो हे और वो ही एक वहां वाकु सात्त्विक ज्ञान बना रह्यो हे. वाके पीछे पॉलिसी क्या काम कर रही हे के ये एककु विभाग-रहित देख रह्यो हे और वो विभाग-सहित एककु देख रह्यो हे. यासु ये ज्ञान तामस हे, एक होते भये भी और वहां वो ज्ञान अविभक्त विभागन्के साथ देखवेसु सात्त्विक हे. ये अहंकारकु मॅनेज् करवेकी प्रक्रिया हे.

(अहंकारको स्वास्थ्य : विभक्त-अविभक्त ज्ञानके विवेकसु)

यासु अपनो अहंकार कोई एक इश्युपे बिना कारण इतनो ना अटक जाय के बस अपनकु और कोई भी बात समझ आनी बंद हो जाय. अपनो अहंकार विभागन्में इतनो नहीं खो जानो चहिये के उन विभागन्के पीछे रही भई जो एकता हे, वाकु ही भूल जाय. जैसे सूरदासजी कहे हे के *जैसे श्वान कांच मंदिरमें भ्रमि भ्रमि भूंस मर्यो*. कांचके कमरामें एक कुत्ताकु छोड़ दियो, तो वो वाकु दूसरो कुत्ता समझके भोंक-भोंकके मर ही जायगो. ऐसे ही जब भी अपनी बुद्धि या अहंकार या तरहके राजस भाव ले ले हे, तो अपनी श्वानके जैसी स्थिति हो जाय. अहंकारकु मॅनेज् करवेकी प्रक्रिया हे के वाकु ये बात समझनी चहिये के तू स्वयं इन दस इन्द्रियन्के विभागमें अपने आपकु अविभक्त मान रह्यो हे के नहीं. तू जब अनेकधा विभिन्न होवेपे भी अपने आपकु माफ कर रह्यो हे तो विविध भागन्की रीयलिटीकु क्यों नहीं माफ कर सके! अपन् स्वयंकु माफ कर रहे हें, या प्रक्रियामें, तो वास्तविकताकु भी माफ

कर देनो चहिये. पर अपनकु जिद हो जाय के एक हे तो अनेक नहीं हे और अनेक हे तो एक नहीं हे. वामें अपनो अहंकार ग्रस्त हो जाय. वैसे ग्रस्त अहंकारकु अपन् मॅनेज् नहीं कर सके हें.

यालिए अहंकारमें वा प्रकारको लचीलोपन होनो चहिये के जो विभागकु देख सके और अविभागकु देख सके. दूसरे कोईकु मॉडल् बनावेकी जरूरत नहीं हे. अहंकारकु स्वयंकु मॉडल् बनानो चहिये. इन दस इन्द्रिय देह मन बुद्धि आदिके विभागनमें 'मैं' तो कॉमन् हूं. आर्टीफिशियल् हूं, तो क्या भयो? हूं तो रीयल्. कई लोग आर्टीफिशियल्कु अनरीयल् समझें. वो होनो जरूरी नहीं हे. देखो, मोटर् आर्टीफिशियल् हे पर अनरीयल् नहीं हे. जापानके मोती आर्टीफिशियल् आवे हें. वे अनरीयल् थोड़े हें, रीयल् हें. आर्टीफिशियल्को विलोम शब्द हे, नॅचरल्. कोई चीज नॅचरल् हे, कोई चीज आर्टीफिशियल् हे. जैसे फूलकी सुगंध नॅचरल् हे, क्योंके वो प्रकृतिके द्वारा बनायी गयी हे, अपने द्वारा नहीं. सेंट और परफ्यूम् की सुगंध आर्टीफिशियल् हे क्योंके वो अपने द्वारा बनायी गयी हे. पृथ्वी नॅचरल् हे और घर अन्नॅचरल् हे पर हें दोनों रीयल्. ऐसे ही ब्रह्म नॅचरल् हे और जगत् आर्टीफिशियल् हे. यासु रीयल् नहीं हे ऐसो नहीं हे. आपने सोनामेंसु गहना बना दियो तो वो अनरीयल् हे के रीयल् हे? बनायो आपने हे पर हे तो वो आर्टीफिशियल्. कोई भी तिजोरीमें पड़्यो सोना अपने आप तो गहना नहीं बन सके. वाकु तो बनानो पड़ेगो. जगत् भी रीयल् हे और परमात्मा भी रीयल् हे. परमात्मा नॅचुरली रीयल् हे और जगत् आर्टीफिशियल् रीयल् हे. परमात्माको सारे विभागनमें एक अविभक्त होनो नॅचरल् हे और अपने अहंकारको सारे विभागनमें एक अविभक्त होनो आर्टीफिशियल् हे. गुण वामें परमात्माके ही हें पर आर्टीफिशियल् हे. वहां वो नॅचरल् हे. वो एक होते भये भी सारे विभागनमें प्रकट हो रह्यो हे, नॅचरली. क्योंके

"**तद् आत्मानं स्वयम् अकुरुत**" (तैत्ति.उप.२।७।१) वाने अपने आपकु इतनी विविधताके रूपमें परिणत कियो हे! आपकु अब भी ये कन्सॅप्ट् कठिन लगतो होय, तो दूसरो उदाहरण बीजको हे. एक बीज थड़ बने, जड़ बने, डाल बने, पत्ता बने, फूल बने, फल बने. एक बीज कितनी चीज़ बन रह्यो हे! अपन् बना रहे हें? नहीं. बीज अपनी प्रकृतिसु ही इतने सारे रूप ले रह्यो हे. और अपनकु लौकीकु बड़ी करवेके लिए इन्जेक्शन् लगानो पड़ रह्यो हे. सेबकु लाल करवेके लिए रौगनमें रंगनो पड़ रह्यो हे. वो सब आर्टीफिशियल् हे. नॅचरल् होय के आर्टीफिशियल् होय, रीयल् तो वो हर सेन्स्में हे ही.

ऐसे ही अपने अहंकारकु जा बखत भगवान् केह रहे हें के निरंहकार हो जाओ. निर्मम हो जाओ, वो भी कोई अहंकारसु मॅनेज् करके हो सकेगो. वाके मॅनेज् किये बिना तो हो नहीं सकेगो. यदि आपकु निर्मम होनो हे, तो ममताकु वा तरहसु मॅनेज् करके ही निर्मम हो सकोगे, नहीं तो मॅनेज् नहीं कर सकोगे. ये जो अहंता और ममता की रहस्यमयी कथा हे, वो अपन् समझें तो समझमें आयगो के महाप्रभुजीने क्यों कही "**शास्त्रार्थ तो जीत्यो पर अहंकार मति करियो. जा वस्तुको अहंकार करेगो वाको नाश होयगो.**" याके पीछेको रहस्य हे. कैसे अहंकारकु मॅनेज् करनो. ये मॅनेज् करवेको तरीका गीताके अनुसार संक्षेपमें देख्यो. वैसे ये बहोत लंबी प्रक्रिया हे. याके बाद जो वार्तामें अहंकारकी व्यथाएं और आयी हें, उन व्यथानकु या सिद्धान्तके सन्दर्भमें अपन् देखेंगे. आज यहां रखेंगे.

(सृष्टिरूप अंबोड़ामें प्रकृति (क्रियाशक्ति)-पुरुष (ज्ञानशक्ति) गूंथे भये हें)

"**कार्य-कारण-कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते**" (भग.गीता१३।२०) ये श्लोक कल अपनूने देख्यो हतो. जा श्लोकमें मूल बात बताई के ज्ञान और क्रिया (consciousness

and motion), कई ठिकाने ज्ञान होवे पर क्रिया नहीं होवे और कई ठिकाने क्रिया होवे पर ज्ञान नहीं होवे, पर ये सारी सृष्टिकी रचना सच्चिदानन्द ब्रह्मरूपमेंसु निकली भयी हे. ज्ञान और क्रिया एक-दूसरेके साथ चोटीकी तरह गूंथी गयी हें. वा गूंथी भयी चोटीको ये सारो विश्व एक जूड़ा या अंबोड़ा हे. अंबोड़ा दो तरहसु गूंथे जाये. एक छुट्टे बालके जूड़ा या अंबोड़ा और दूसरे गूंथी भयी चोटीके अंबोड़ा. आजकल तो छुट्टे बालके ही अंबोड़ा बनावें पर पुराने जमानामें गूंथी भयी चोटीके अंबोड़ा होते हते. ये अपन् अजंता-ॲलोरामें देखें तो पता चले. ये जगत् गूंथी भयी चोटीको अंबोड़ा हे, बाकी गूंथनमें जो प्रक्रिया हे वो **"कार्य-कारण-कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते"** जो अन्ततः परिणाम हे जगत्को वामें क्रिया दिखलाई दे रही हे और चेतना भी दिखलाई दे रही हे.

(प्रत्यक्षको प्राधान्य)

अब क्योंके दो चीज दिखलाई दे रही हे वालिए अपनेकु उनके दो होवेको भ्रम हो जाय. दो चीज दिखलाई दें तो ऐसो भ्रम होनो तो कॉमन् फिनोमिना हे. जैसे यदि अपनी दोनों आंखनको ॲलाइन्मॅन्ट् बिगड़ जाय, तो इन्हीं आंखनसु अपनकु दो-दो आकृति दिखलाई देवे लग जाये हें. जब ऐसो होवे, तो अपन् आंखपे अविश्वास करें नहीं हे क्योंके आंखपे विश्वास करके तो सारी दुनिया चल रही हे. एक अद्भुत बात ये भी हे के आंखकु जा बखत 'नेत्र' अथवा 'नयन' कह्यो जाय वा बखत रूढ़ अर्थ इनको आंख ही हे. पर बाकी इटमोलॉजी हे 'नेत्र' मानें जो नेतागिरी करतो होय. पुंलिंगमें होय तो 'नेता' होवे. स्त्रीलिंगमें होय तो 'नेत्री' होवे. जैसे अभिनेता और अभिनेत्री. नपुंसकलिंगमें होय तो नेत्र. नयनको भी ये ही अर्थ होवे. The one which lead you जो आपको नयन करतो होय. प्राणीनमें मनुष्यके साथ ये खास बात रही हे

के मनुष्यने अपनी आंखके साथ अधिक पक्षपात कियो हे. या यों भी केह सके के मनुष्यने आंखको सबसु अधिक माहात्म्य मान्यो हे. कुत्तासु आप बहोत दिन दूर रहो और फिर पास आओ, तो कुत्ता आपकु सूंघे बिना पहचान नहीं सके हे. वो आंखपे विश्वास नहीं करे. ऐसे ही दूसरे जानवर और इन्द्रियनूपे विश्वास करें पर मनुष्य एक ऐसो जानवर हे के जाने अपनी और सब इन्द्रियनूपेसु विश्वास हटाके आंखपे बहोत अधिक विश्वास कियो हे. यासु आंखके लिए वाने शब्द भी ऐसे ही गढ़े के 'नेत्र','नयन'. मानें ये हमारो लीडर हे और हम याके फोलोअर् हे. इन शब्दनूसु ही अपन् समझ सके के मनुष्य-चेतनामें नयनको कितनो माहात्म्य हे! वो माहात्म्य यहीं तक रुक्यो भयो नहीं हे पर खूबसूरती देखो के जाकु 'प्रत्यक्ष' केह रहे हें, या जाकु 'साक्षात्' शब्द केह रहे हें, वहां भी 'अक्ष'को मतलब आंख हे. क्योंके अक्ष अख अखि अंखियां आंख ये सब अक्षमेंसु बने भये शब्द हे. अपनूकु पता नहीं चले पर 'अक्ष' शब्द वहां भी बोल रह्यो हे. जैसे महाप्रभुजी कहें "**साक्षाद् भगवता प्रोक्तम्**" (सि.८.१) मानें आंखके सामने भगवान् बोले. अपन् समझ सके के आंखको कितनो प्राधान्य हे. और बात यहां-तक हे के आंखके सामने कोई दिखतो नहीं होय तो अपन् भूत-प्रेत ही समझें. कानसु सुनवेपे अपनूकु सन्तुष्टि नहीं होय, पर आंखसु दीखवेपे अपन् प्रमाण मानें.

[१०]

(प्रत्यक्ष प्रामाण्यवादी)

ज्ञानेन्द्रियके प्राधान्यके कारण बहोत सारी फिलॉसॉफी ऐसी गढ़ी गयी के जामें बुद्धिको प्रामाण्य भी मनुष्यने इन्कार कर दियो. अपन् यों केहके चले हते के Man is rational animal सौ डेढसौ साल पहले यूरोपमें कुछ बुद्धिजीवी भये. अपने यहां भी चार्वाक बुद्ध वगैरह दार्शनिक भये. उन सबको मत ये हे के जो भी कुछ विचार उनके मस्तिष्कमें आये वाको प्रामाण्य इतनो नहीं हे, जितनो के आंखसु दिखे वो हे. वाके लिए लॉजिकल् पॉझिटिवीस्ट् कहे हें के कोई भी शब्दको सच्चो अर्थ वो हे जो आंखसु दिखतो होय. उन लोगनूकी दलीलको हर बखत मुद्दा एक ही रहे हे के 'गॉड्' शब्द मीनिंगलेस् हे. अपन् वाकु 'ईश्वर' कहे हें. वो कहे हे के ये मीनिंगलेस् हे. अपन् कहे के मीनिंग् हे, तो वो कहे हे के सच्चो नहीं खोटो. वो या अर्थमें के गॉड्कु अपनने कहीं देखके नहीं गढ्यो हे. बिना देखे गढ्यो हे. जा चीजकु अपनने देख्यो नहीं और नाम गढ़ लियो. आपके मनमें तो हे वो अर्थ. पर वा नामके कारण वो सिद्ध नहीं होवे. इतनो जबरदस्त आंखको प्रामाण्य.

बी.बी.सी. चॅनल्पे फादर् कॉपलस्टन् और बर्ट्रेन्ड्-रसॅल् को 'गॉड् हे के नहीं' या विषयपे एक डिस्कशन् भयो. फादर् कॉपलस्टन्ने रसॅल्कु प्रपोज़् कियो के "हर चीजको कर्ता होवे तो युनिवर्स्को भी कोई कर्ता होनो चहिये और वो कर्ता गॉड् हे, ये बात तुम मानो." रसॅल्ने जवाब दियो के "हां मानू हूं पर उतनी ही जितनी के एलिस् इन् वन्डर्लॅन्ड्की कथा हे. ये एक परिकथा हे. परी आयी वो राजकुमारीसु मिली. वाने ये कियो वो कियो. ऐसे ही परिकथासु अधिक कुछ नहीं हे." या बातपे फादर्कु तो आग लग गयी के बाइबल्कु परिकथा केह रह्यो हे! वाने फिर पूछी के "अच्छा!

तो दूसरी धर्मकथाकु सच्ची मान रहे हो के नहीं? तुम बताओ के और धर्मन्‌की कथाकु=इस्लाम हिन्दु आदि धर्मन्‌कु तुम परिकथा मान रहे हो के नहीं? ग्रीक् लोगन्‌की कथाकु परिकथा मान रहे हो के नहीं मान रहे हो?'' अपने जितने देव हें, उतने सब ग्रीक् लोगन्‌में भी हे. नाम अलग हें पर हें वोके वो ही देव. विष्णु रुद्र कामदेव रति मंगल इत्यादि. तो वाने पूछी ''उनकु तुम मानो?'' तो फादर्‌ने कही ''नहीं उनकु तो हम नहीं मानें.'' वाने उत्तर दियो ''तो बस, हो गयी बात. जब वो परिकथा हे तो तुम्हारी भी परिकथा हे. जब-तक तुम आंखसु दिखलाओ नहीं के ये गॉड् हे और याको ये अर्थ हे तब-तक हम गॉड्‌कु मीनिंगलॅस् मानेंगे.'' वो कहे हे के ''हम तो या बातकी चर्चा करनो भी व्यर्थ मानें हें. क्योंके चर्चा तो वा बातकी करनी चहिये के जा बातको कोई मीनिंग् होय. जब 'गॉड्' शब्दको मीनिंग् ही नहीं हे तो वापे चर्चाको लाभ क्या?'' या प्रकारकी डिबेट् दुनियामें, थोड़ी बहोत सबके दिमागमें चलती होय हे.

फिलोसॉफर्‌को तो दोष केवल इतनो ही हे के वो बोलके बदनाम हो जाय हे. मनमें सबके ये कथा चले हे. या तरहकी जो डिबेट् अपने दिमागमें चले हे, वासु अपन् समझ सके हें के मनुष्यने आंखपे विश्वास कौनसी हद तक कियो हे. और सारी इन्द्रियन्‌पेसु विश्वास वाने छोड़ दियो. सुनी भई बातपे विश्वास नहीं, सूंघी भई बातपे विश्वास नहीं, छुई भई बातपे विश्वास नहीं. बस आंखसु दीख जाय, वापे पूरो विश्वास. आप लोगन्‌ने शायद कहावत भी सुनी होयगी. Seeing is beliving ''प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'' जो चीज प्रत्यक्ष दिख गयी, वाकु प्रमाणकी आवश्यकता ही नहीं हे. अरे भई! कांचमें आपको प्रतिबिम्ब प्रत्यक्ष दिख रह्यो हे, तो क्या आप कांचमें हो? प्रत्यक्ष नहीं दिख रह्यो हे, तो क्या कोई और इन्फॉर्मेशन्‌सु दिख रह्यो हे? ये मानो के एक आप बाहर हो और भीतर हो.

उन सब बातनृकी डिस्कशनृमें वो नहीं जाय. और फिर भी झंडा ऊँचा रहे हमारा. प्रत्यक्ष ही प्रमाण हे. या तरहकी जो सोच हे, वा सोचने और भी कई विचार धारानृकु जन्म दियो और वो विचारधारा ऐसी हे के अपनी ज्ञानेन्द्रियनृको प्रमाण ज्यादा और अपनी कर्मेन्द्रियनृको प्रमाण कम.

(कर्म-ज्ञानको व्यर्थ झगड़ा)

वा बातके रॅफरेन्सृमें आपकु बतायो के अपनी कर्मेन्द्रियसु यदि अपनृने कोई चीजकु पैदा कियो होय, तो वो नॅचरल् नहीं हे, आर्टीफिशियल् हे पर रीयल् हे. नहीं तो सोनामेंसु गहना बनायो, वो भी अन्-रीयल् हो जायगो. अपनृने घड़ा बनायो, वो भी अन्-रीयल् हो जायगो. अपनृने ढोकला या बाटी बनाई, वो भी अन्-रीयल् हो जायगी. वो आर्टीफिशियल् हे पर अन्-रीयल् तो नहीं हे. ऐसी-ऐसी फिलॉसॉफी घर कर गई आदमीके दिमागमें के जो आर्टीफिशियल् हे, वो अन्-रीयल् हे. वो अपनी बोल-चालमें भी आ गयो हे. कई लोग कहे हें के जितने भगवान् हे, वो अपनृने बनाये हे. बैठे-बिठाये अपनृने एक भगवान् बना दियो. उर्दूकी गज़ल भी हे के *सिर झुकाओगे तो पत्थर देवता बन जायेगा. इतना मत चाहो कि सनम बेवफा हो जायेगा.* सिर झुकायो तो सबकु लगे के ये देवता हे. व्यवहारमें ये बात सच्ची भी लगे हे. कोई भी रस्तापे एक पत्थरपे अगरबत्ती जलाके कंकु लगाके छ: दिन रोज सिर झुकाओ. दो-चार बेवकूफ ऐसे मिल जायेंगे, क्योंके तुम कर रहे हो, यालिए वे भी करवे लग जायेंगे. भगवान् जितने भी हें, वो अपने बनाये गये देवता हे, ऐसे वे लोग कहे हें. क्योंके वो क्रियासु बने हे. पाछे डिमांड् तो वो ही हे के आंखसु दिखाओ तो माने. पक्षपात कैसो हे? आंख भी अपनी, कान भी अपनो, जीभ भी अपनी, नाक भी अपनी पर आंखको पक्षपात अधिक हे. केवल मनुष्यकु और कोई जानवरकु नहीं. बहोत सारे जानवर आंखको पक्षपात नहीं करके नाकको

करें. बहोत सारे जानवर कानको त्वचाको पक्षपात करें. कई जानवरनुकु तो आंख हें ही नहीं. स्पर्श करें तो उनकु खबर पड़े के कुछ हे. वाको प्रसिद्ध उदाहरण छुई-मुई हे. वाकु स्पर्शको पक्षपात हे. मनुष्यको पक्षपात ज्ञानेन्द्रियन्में भी आंखपे अधिक हे. वा पक्षपातके कारण सच्ची-खोटी सब तरहकी फिलॉसॉफी गढ़ी जायें. झूठे भी कोई आंखसु दिखा दो तो व्यक्ति सम्मोहित हो जाय. कई लोगन्में सम्मोहित करवेकी शक्ति होवे हे. वो आंखसु दिखा दे तो अपन् वाकु मान लें और ये भूल जाये हें के वाने सम्मोहित कियो हे.

अब समझ लो के या तरीकेकी मनुष्यकी ज्ञानकी अवस्था हे और अपने आपकु बहोत बुद्धिमान समझे हें. सब जानवरन्सु अधिक बुद्धिमान अपनेकु माने हें. और सब जानवर मूर्ख हे और हमने समझदारीको ठेका लियो हे. अब प्रकृतिने वाकु ठेका दियो के नहीं दियो पर अपनुकु तो ये माननो ही पड़ेगो के भई! ठेका तो दियो हे. सब जानवरन्कु खतम कर-करके मनुष्य ही अभी बढ़ रह्यो हे और सब जानवरन्कु यदि कोई तकलीफ हे तो वो मनुष्यसु ही हे. जो जानवर दिखाई नहीं दे, वो थोड़ी मनुष्यकी तकलीफ हे जैसे मलेरिया डेंगु इत्यादि. इनकु छोड़के सब जानवरन्की तकलीफ मनुष्य हे. मनुष्यकु कोई जानवरकी तकलीफ नहीं हे. शेरकु चीताकु चूहाकु गायकु भैंसकु शार्ककु व्हेलकु सब जानवरन्कु मनुष्य मार सके. यासु समझ सके हें के प्रकृतिमें कुछ तो पक्षपात भयो ही हे. या पक्षपातके कारण मनुष्यकु लगे के ये तो मेरो ठेका हे. कोई ठेकेदारकु जब ठेका मिल जाय तो वो वा प्रोपर्टीकु जितने दिन ठेका चले, उतने दिन मालिककी नहीं माने, अपनी माने हे. तो ठेका तो दियो हे मनुष्यकु.

पर यामें समझवेकी बात हे के ये जो झगड़ा हे ज्ञान और

क्रिया में, वामें क्रियाको प्राधान्य कम और ज्ञानको प्राधान्य अधिक हे. क्योंके जो भी कुछ हो रह्यो हे वो आर्टीफिशियल् हो रह्यो हे, अनरीयल् हो रह्यो हे और ज्ञानसु जो भी कुछ समझ आ रह्यो हे वो सत्य और रीयल् हे. या तरहकी अपनी संरचना हे. वामें भी पक्षपात हे, कोई दूसरेके साथ नहीं, खुद अपनी मॅन्टल् फॅकल्टीके साथ पक्षपात भर्यो व्यवहार हे.

(श्रीशंकराचार्यको मत—ब्रह्मप्राप्ति ज्ञानसु होवे, कर्मसु नहीं)

या तरीकेके व्यवहारको श्रीशंकराचार्यने बहोत जोरसु हल्ला मचायो. और वे एक बात कहे हें के कोई भी कर्मसु कभी ब्रह्म प्राप्त हो ही नहीं सके हे. क्योंके कर्म तो आर्टीफिशियल् इफेक्ट् पैदा करेगो. ब्रह्मकु प्राप्त करनो हे तो ज्ञानसु ही वो प्राप्त हो सके हे. "**ऋते ज्ञानाद् न मुक्तिः**" कर्म कोई भी करो तुम, पर वा ब्रह्मकु पा नहीं सको हो. वो कर्मके लिए ऐसी आज्ञा करे हें के "**पश्वादिभिः च अविशेषात्**" (ब्र.सू.शां.भा.१।१।१) तुम अच्छे कर्म करवेवाले हो के बुरे कर्म करवेवाले हो, तुममें और जानवरनमें अन्तर क्या हे? वाको इतनो अच्छो वर्णन वे करे हें के अपन् पढ़े तो अपनकु भी लगे के हां बात तो सच्ची हे. वाके वर्णनमें कहे हें के जैसे गधाकु अपन् घास दिखावे तो वो पास आ जाय. डंडा मारें तो गधा भग जाय. ऐसे ही कर्म करवेवालेकु कुछ फल दिखाओ, तुरंत वो कर्म करवे लग जायगो. दंड दिखाओ तो पापकर्म करनो बंद कर देगो. अच्छे अथवा बुरे कर्म करवेवालो तो पशुके समान ही हे. भगवान् भी तो डरा रहे हें न! यदि तू मेरी बात नहीं मानें तो तेरो विनाश हो जायगो. अब अर्जुन क्या करे? झक मारके मानेगो. कर्मकी समस्या भी ये ही हे के डराये बिना कोई कर्म करे ही नहीं हे. अपन् सब जाने हें के अपने यहांसु दुबई बहरीन जावें, वहां कोई थूके नहीं हे रोड्पे. क्योंके थूक्यो नहीं के बस अंदर. वहां डरावे हे. यहां डरावे नहीं हे, यासु एअरपोर्टपे

आते ही सबसु पहले थूके हें. प्लेन्सु उतरते ही सबसु पहले थूके हें. ये ही आदमीके साथ समस्या हे के वाकु डराओ तो कर्म करे. डराओ नहीं तो कर्म नहीं करे.

मोकु अच्छी तरहसु याद हे के अस्सीके दशकमें न्यूयोर्कमें बिजली फेल् हो गयी. जितने भी मॉल् हते, सब लुट गये. जो जाके हाथमें आयो वो वो लेके चल दियो. जा बखत न्यूयोर्कवालेन्ने कबूल कियो के अपनो जो अनुशासित होवेको घमंड हे, वो बिजलीके बलपे हे. बिजली गायब होते ही अपन् सब लुटेरे हें. क्योंके डर निकल गयो न! मोकु अच्छी तरहसु याद हे के जब गोवा स्वतन्त्र भयो, तो वाके एक डेढ महीना बाद मैं वहां गयो. मोकु लग्यो के कितनी साफ जगह हे! इतनो तो भारतको कोई प्रदेश साफ नहीं हे. वहां एक व्यक्ति खड़ो हतो. वाने मोसु कही के गोवाके स्वतन्त्र होवेके तीसरे दिनसु लोगन्ने सड़कपे पेशाब करनो शुरु कर दियो. अब देखो गोवा कितनो गंदो हो गयो हे! क्योंके डर निकल गयो हे.

कर्मके सारे विधि-विधानमें स्वर्ग-नरकके प्राप्त होवेको बहोत बड़ो हिस्सा हे. ये बात शास्त्रने अच्छी तरहसु समझ ली के डराके ही व्यक्तिकु कर्म करायो जा सके हे. सर्कस्में भी अपन् देख सकें के हंटरसु जानवरन्कु डराके कैसे काम करायो जाय हे! जो भी क्रिया अपन् कर रहे हें, वामें डरको बहोत बड़ो रोल् हे. ज्ञान व्यक्तिकु निडर बना दे. यासु ज्ञानमार्गकु लोग अधिक पसंद करे हें कर्ममार्गकी अपेक्षा.

और श्रीशंकराचार्यने एक बात समझा दी के कर्मसु कभी ब्रह्म मिलवेवालो नहीं हे क्योंके कर्म स्वयं क्षयिष्णु हे. 'क्षयिष्णु' मानें खतम होवेवाली चीज हे. कर्म अभी कियो और अभी खतम. जो कर्म खुद खतम हो जा रह्यो हे, वो खतम नहीं होवेवाले ब्रह्मके

साथ तुमकु कैसे मिलायगो. यालिए श्रीशंकराचार्य कहे हें के तुमकु यदि ब्रह्मकु जाननो हे, ब्रह्मकु पानो हे, तो तुम क्रियात्मक साधन नहीं, ज्ञानात्मक साधना करो. ज्ञानात्मक साधन खतम होवेवाले नहीं हे. ये ज्ञानमार्गको मूल सिद्धान्त हे.

(सिद्ध-साधन और साध्य-साधन को हेतु चेतना)

वासु साधनाके दो प्रभेद भये. एक सिद्ध-साधन और एक साध्य-साधन. वे कहे हें के ज्ञान सिद्ध-साधन हे. वाकी दलील भी उनने बहोत मजेदार दी हे. क्योंके आंख खुली हे, तो दिखाई देगो. कान खुले हें, तो सुनाई देगो, गरम कपड़ा नहीं पहरे हे, तो ठंड तो लगेगी. इन सबमें क्रिया करवेकी जरूरत नहीं हे. पर चलनो हे, तो क्रिया करनी पड़ेगी, पकड़नो हे तो हाथ उठानो पड़ेगो. जब अपने आप हो रह्यो हे, वो कोई लफड़ा नहीं हे. वासु दो बात आयी के अपनकु सिद्ध-साधन पकड़नो चहिये न के साध्य-साधन. क्रिया अथवा कर्म साध्य-साधन हे. यज्ञ तप और दान, ये सब साध्य-साधन हे, सिद्ध-साधन नहीं हे. भगवान् बेचारे केह रहे हें; भगवान्कु 'बेचारो' केह रह्यो हूं वैसे कभी भगवान् बेचारे नहीं होंय. 'बेचारे'को अर्थ समझो. 'चारा' याने उपाय. 'बेचारा' मानें जाके पास कोई उपाय नहीं होय. भगवान्के पास याको कोई उपाय नहीं हे के भगवान् क्या केहनो चाह रहे हें और अपन् क्या समझ रहे हें. भगवान् तो सच्ची बात केह दें पर वामें अपन् क्या समझ रहे हें, वाको कोई उपाय बेचारे भगवान्के पास नहीं हे. क्योंके यदि अपन् खोटो समझ रहे हें, तो खोटो ही समझेंगे. भगवान् आज्ञा कर रहे हें के **"कार्य-कारण-कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते"** (भग.गीता १३।२०) तुम्हारे या व्यक्तित्वमें जो कुछ कार्य हे, जो कुछ कारण हे और जो कुछ तुम्हारो कर्तृत्व हे, वो प्रकृतिकी तरफसु आ रह्यो हे. मानें डायनेमिक् सिद्धान्तसु आ रह्यो हे और वो अन्धो सिद्धान्त

हे. वो ॲक्टिव् हे पर कॉग्नेटिव् नहीं हे. और सुख-दुःखको जो भोग तुमकु हो रह्यो हे, वो प्रकृतिके कारण नहीं हो रह्यो हे. वो यालिए हो रह्यो हे के तुम चेतन हो. तुम चेतन नहीं होते तो वा क्रियामें तुमकु सुख-दुःखको अनुभव नहीं होतो. जैसे ये पंखा चल रह्यो हे याकु कोई दुःख नहीं हे. यदि गरम भी हो जाये पंखा, बिगड़ भी जाय, तो भी वाकु कोई दुःख नहीं हे. यदि चेतना होय तो वाकु दुःख होवे. अभी अपन्ने आर्टीफिशियल् चेतना लिफ्टमें डाल दी, तो वो भी बोले के "प्लीज् क्लोज् द् डोर्" वाकु दुःख हो रह्यो हे के आपने दरवाजा खुलो छोड़ दियो हे. जब-तक तुम दरवाजा बंद नहीं करो, वो गिड़गिड़ाती ही रहे हे. कारमें भी चेतना लगा दी बॅल्ट् बांधवेकी, तो वो भी जब-तक बॅल्ट् नहीं बांधो, तो ट्रं ट्रं ट्रं करती ही रहे हे. समझो के थोड़ी भी चेतना आयी, तो सुख-दुःख शुरु हो जाय. अरे, मैंने बॅल्ट् नहीं लगाई तो तेरो क्या गयो? पर नहीं, वो रोनो शुरु कर दे. अभी तो ठीक हे के कार गाली नहीं दे रही हे. दो-चार वर्षमें वो भी प्रोग्राम् आ जायगो. अपन् बॅल्ट् नहीं लगावें तो वो बोले "बेवकूफ समझ नहीं पड़े के बॅल्ट् लगाके ही बैठना चहिये." वाकु आवेमें अधिक देर नहीं हे. अभी ट्रं ट्रं कर रही हे पर थोड़े दिन बाद गाली-गलोच करेगी क्योंके चेतना हे. यदि चेतना हे तो सारे उपद्रव तो होंयगे ही. सिद्ध-साधन और साध्य-साधन को चेतना हेतु हे.

(ज्ञान-ज्ञेय-परिज्ञाताके लिए विधि प्रसक्त)

उन दोनोंनूको निष्कर्ष तथा जो एक श्लोक मैंनें आपकु बतायो हतो वो हे "**ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः**" (भग.गीता१८।१८) कल समय नहीं हतो यासु याको पूरो खुलासा नहीं कियो पर ध्यानसु समझो के ज्ञान ज्ञेय और परिज्ञाता. एक उदाहरणके तौरपे बताऊँ प्रवीणभाईकु ज्ञान

हे के कॅमेराकु कैसे ऑपरेट् करनो. अपनकु नहीं हे. ये इलेक्ट्रोनिक् गॅझेट् प्रवीणभाईके ज्ञेय हे. और इन सबके प्रवीणभाई परिज्ञाता हे. समझो के कर्मकी जितनी भी विधि हे, वो ज्ञान ज्ञेय और परिज्ञाता के रॅफरेन्सूमें दी जा रही हैं. भगवान्ने बहोत बड़ी बात केह दी "**ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना**" जो भी काम करवेकी बात तुमकु बतायी जायगी, वो तुम्हारे कोई ज्ञानकु समझके, तुम्हारे ज्ञेयकु समझके और तुम्हारी जो परिज्ञाता होवेकी प्रकृति हे, वाकु ध्यानमें रखके बतायी जायगी. कोई भी कॉमामें गये भये अविज्ञानार्थ असमर्थ व्यक्तिकु अपन् कोई विधि करवेकी कहेंगे? ये सब कौनकु कहेंगे के जो परिज्ञाता हे. जाकु इन कथनन्को अर्थ पता हे. यदि कोई परिज्ञाता हे, तो वाकु ही कर्मकी विधि-निर्देश दियो जा सके हे. यदि वो परिज्ञाता नहीं हे, तो कोई भी विधि वामें लागू नहीं होवे. जितने भी इलेक्ट्रोनिक् गॅझेट् आवे, वामें मॅनुअल् या लिए आवे के ये गॅझेट कैसे ऑपरेट करनो वाको ज्ञान तुमकु होनो चहिये. ज्ञानके लिए विधि आयेगी, ज्ञेयके लिए विधि आयेगी के याकु गरम जगह मत रखो, धूपमें मत रखो, पानीसु याकु बचाके रखो आदि. ये सारी विधि परिज्ञाताकु आवे हे, कर्ताकु नहीं आवे, करणकु नहीं आवे, क्रियाकु नहीं आवे. क्योंके विधिको विधान केवल ज्ञान ज्ञेय और परिज्ञात के बारेमें ही कियो जा सके.

(गीतामें या ब्रह्मवादमें सिद्ध-साध्यको झगड़ा नहीं)

जब वा आज्ञाकु परिज्ञाता समझ जाय, तो वाकु कार्यरत कैसे कियो जायगो? "**करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः**" परिज्ञाता जानेगो के या विधिकु करवेके लिए मोकु कौनसो उपकरण वापरनो चहिये और कौनसी क्रिया करनी चहिये और मोकु कर्तापनेके अहंकारकु कैसे व्यवस्थित करनो चहिये? भगवान्के अनुसार परिज्ञातासु कर्ता पैदा हो रह्यो हे. ज्ञानसु करण पैदा हो रह्यो हे. और ज्ञेयसु कर्म पैदा हो रह्यो. वा तरीकेको सेट-अप् समझा रहे हैं. ये जो साध्य-सिद्धके

झगड़ा हे के सिद्ध-साधनसु ही ब्रह्म प्राप्त होयगो, साध्य-साधनसु नहीं, क्योंके साध्य तो खुद खतम हो जा रह्यो हे, नश्वर हे वासु अनश्वर ब्रह्म नहीं मिलेगो. पर देखो, भगवान्‌ने वो ऑर्डर् नहीं रख्यो हे.

भगवान् जा बखत केह रहे हें के ब्रह्मकु जानो तो ये बात कौनकु कही जायगी, कर्ताकु के ज्ञाताकु? ज्ञाताकु ही तो कही जायगी. कोई व्यक्ति अपने काममें कर्ताकी तरह लग्यो भयो हे, तो क्या अपन् वाकु ब्रह्म जानवेकी केह सके हें? वो कहेगो, ''मोकु नहीं जाननो हे.'' जो सोचवेके लिए समझवेके लिए तैयार हे, वाहीकु तो अपन् विधि केह सकें. जो अपने कोई काममें लग्यो भयो हे, वाकु विधि कैसे कहें. वाके पास फुर्सत नहीं हे सुनवेकी. भगवान्‌ने भी साध्य-साधन और सिद्ध-साधन के जो झगड़ा हते, वो यहां खतम कर दिये.

याके तहत महाप्रभुजीने अपने सिद्धान्तकु जाकु गुसांईजी विद्वनमंडनमें मस्ती भरे शब्दन्‌में कहे हें ''**वत्स! न वेत्सि किं युक्तिकनकपंकसंघटितं विविधश्रुत्यादि-शास्त्रमणिमण्डितं ब्रह्मवादभवनं मम**'' (विद्वनमं.) अपने पुत्रकु (श्रीगिरिधरजी) सामने बैठाये के तुम शांकरमतको पक्ष लेके मेरे साथ वाद करो और मैं महाप्रभुजीको पक्ष लेके वाको जवाब देऊंगो. ये बाप-बेटाको शास्त्रार्थ हे. वहां तटस्थ मध्यस्थ कोई हे ही नहीं. बाप-बेटाने जमके शास्त्रार्थ कियो हे. कोई पक्ष गिरिधरजीने ऐसो केह दियो हे के गुसांईजीकु तैश आ गयो हे. तैशमें आके गुसांईजी केह रहे हें के ''अरे बेटा तोकु होश नहीं हे क्या! ये मेरो ब्रह्मवादको भवन कैसो हे? जब नींव डाली जाय तो वामें मट्टी पानी आदि डाल्यो जाय हे पीट-पीटके. मेरे ब्रह्मवादके भवनमें मैंने सोनाकी नींव डाली हे और सोनाकु पिघलाके जासु वामें काठ नहीं चढ़े, ऐसी नींव मैंने ब्रह्मवादकी डाली हे और श्रुति आदि

शास्त्रनके रत्न मैंने वामें चौंटा रखे हैं, तेनें समझ क्या रख्यो हे. अरे बेटा! तोकु इतनी समझ नहीं हे!" ये बापने बेटाकु डपट लगाई हे. पर एक बात यामें समझवेकी हे के या डपटमें गुसांईजी कुछ दावा कर रहे हें. वो दावा क्या हे के अपन् कोई भी वाद केवल श्रद्धासु ही नहीं केह रहे हें, बल्कि श्रद्धा और तर्क दोनोंके साथ केह रहे हें. यालिए वहाँ ये बात उभरके सामने आयी के या ब्रह्मवादके भवनमें या तरहकी विचारधाराको के क्या सिद्ध हे और क्या साध्य हे, वा झगड़ाको कोई स्कोप् नहीं हे.

(ब्रह्मवादी दृष्टि)

क्योंके महाप्रभुजीकी फिलॉसॉफीमें एक बात निरंतर मौजूद हे के जाकु संगीतमें 'सा' कहे हें के जासु 'रे ग म प ध नि' पैदा होते होंय वाको नाम 'षड्ज' "षड् अस्माद् जायन्ते" अथवा "षट्सु जायेत इति षड्ज" आगेके छहः स्वर जासु पैदा होते होय वाको नाम 'षड्ज' अथवा जो छहों स्वरन्में प्रकट हो सके वाकु 'षड्ज' कहे. षड्जको अपभ्रंश 'सा', जो अपनो 'सा' हे, ब्रह्मवादको 'सा' वाकु खावे-पीवेके अर्थमें समझनो हे, तो जैसे रसमलाई. रसमलाईको माहात्म्य ये हे के वो दूधमेंसु बने, छैना फाड़के बने. पाछे वो दूधमें डाली जाय. जैसे ही वाकु दूधमें डल्यो वो दूध पी ले. दूधमेंसु बन्यो भयो दूधमें डालवेके बाद पाछो वामें दूध घुसे और वो दूधको स्वाद वा छैनासु अलग होय हे. जैसे दूधमें तुमने केसर डाली और छैनामें नहीं डाली, तो जब वा छैनाकु निचोड़ोगे तो वा दूधमें केसरको स्वाद आयगो पर छैनामें नहीं आयगो. ये मैं स्वादकी बात कर रह्यो हूँ.

तत्त्वकी बात करनी होय तो "**तत् सृष्ट्वा, तदेव अनुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्च अभवत्**" (तैत्ति.उप.२।६) जो बाहरको वातावरण हे जामें भीतर-बाहर कुछ नहीं हतो, वामें अचानक एक कन्डेन्सेशन्

पैदा होवे. जैसे बादल, वो वातावरणको पानी है, कन्डेन्स्ड् होके बादल बने हे. जब बादल बने तो वाको एक आकार होय. और वो आकार बनवेपे वाको तापमान नीचे गिर जाय. भापके रूपमें जो पानी बादल बन गयो हे वामें पाछे पानी प्रविष्ट हो जाय हे, तब वो बरसवे लगे. ये वाकी फिज़िकल् प्रक्रिया हे. कोई भी एक होमोजीनियस् स्ट्रक्चर् हे वामें कुछ मूवमॅन्ट् ऐसी आवे के जिनके कारण वामें कन्डेन्सेशन् होवे. वाके कारण वाको एक शरीर बने. वा शरीरमें पाछो वो प्रवेश करे. जितने टॉरनेडो होवे हें, जाकु अपने यहां 'तृणावर्त' कहे हें, जो ठाकुरजीकु उड़ा ले गयो हतो. वो क्या हे? गरम-ठंडी हवाके कारण हवाको एक सर्कल् बने. फिर वा हवाकी एक आंख बने. वा आंखमें टॉरनेडोको स्पिन् बहोत तेज होय हे. बाहर आते-आते वो थोड़ो धीमो हो जाय हे. वो चल रह्यो हे हवामें. चल क्या रह्यो हे? हवा. वामें भीतर क्या हे? हवा. वाकु 'टॉरनेडो' कहें. अमेरिकामें बहोत आवें. आखे ट्रक विमान गांव सब उठाके ले जायें. हवापे तो विमान काबू पा सके हे पर जा बखत वो हवा कन्डेन्स् होके टॉरनेडो बन जाय, वा बखत विमान लाचार हो जाय. कन्डेन्सेशन्को एक सिद्धान्त हे. जो वातावरण चारों तरफ हे, वो कोई ठिकाने जाके कन्डेन्स् हो रह्यो हे. वाको एक शरीर बन रह्यो हे और वा शरीरमें भी वाको एक ऍलीमॅन्ट् प्रवेश कर रह्यो हे. वाकु उपनिषद् कहे हे **"तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत् तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्च अभवत्"** (तैत्ति.उप.२।६) वो वामें प्रविष्ट होके सब तरहके फन्क्शन् करे हें. जो हवा चल नहीं रही हती, वो इतनी तेज दौड़वे लगे और ऐसे-ऐसे ऊधम करवे लग जाय. ये अपने यहांकी मॅटाफिज़िकल् प्रक्रिया हे. ब्रह्मकी सत्ता चैतन्य और आनन्द वातावरणमें हें और वो जा बखत कन्डेन्स्ड् हो जायें, वा बखत ब्रह्माण्ड बन जाय. ब्रह्माण्ड मानें ब्रह्ममेंसु बन्यो भयो अन्डा. जा ब्रह्माण्डकु अपन् युनिवर्स् केह रहे हें. एक ऐसो अण्डा के जो ब्रह्ममेंसु कन्डेन्सेशन्की प्रक्रियासु बने हे. वो अण्डा

हे पर वो वॅजीटेरियन् अण्डा नहीं हे. अण्डा तो होवे हे पर वामें मुर्गी नहीं होवे हे. मुर्गीनूकु कुछ ऐसी ट्रीटमॅन्ट् दें के वो खूब अण्डा देवे लग जाये. वामें जीव नहीं होवे. ये जो ब्रह्माण्डको अण्डा बन्यो हे ये वॅजीटेरियन् अण्डा नहीं हे वामें जीव हे. जो कुकड्डूकु करतो भयो निकलेगो. वा कुकड्डूकुके जीवकु अपने यहां 'अन्तर्यामी' कह्यो गयो हे. वा अण्डामें एक अन्तर्यामीके रूपसु ब्रह्म मौजूद हे. जैसे छैनामें दूध. वो अन्तर्यामी बनके पाछे वा अण्डाकु कन्ट्रोल् करे हे. ये अपने यहांको मॅटाफिज़िकल् कन्सॅप्ट् हे.

(ज्ञान-क्रियाको परस्पर अन्तर्भाव)

अब यामें "**कार्य-कारण-कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिः उच्यते पुरुषः सुख-दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुः उच्यते**" (भग.गीता १३।२०) ये विभागके पहलेकी कथा हे. याके कारण प्रकृति और पुरुष तो वा अण्डामेंसु पैदा भये हें. वाके पहले ही वहां ज्ञान ज्ञेय परिज्ञाता कार्य कारण को फॉर्मॅट् तो तैयार हो ही गयो हे. सच्चिदानन्दके रूपमें अब वो छुट्टे पड़ रहे हें. फिर बादमें इकट्ठे होवें. वामें अपन् ये मनमें फितूर जगावे के ब्रह्म सिद्ध-साधनसु मिलेगो, साध्य-साधनसु नहीं मिलेगो. मानें रीयलाइज़ेशन्सु मिलेगो ॲक्शन्सु नहीं मिलेगो. ये सब ओछी बात हे. महाप्रभुजीके हिसाबसु हर ॲक्शन्में एक रीयलाइज़ेशन् छिप्यो भयो हे और हर रीयलाइज़ेशन्में एक ॲक्शन् छिप्यो भयो हे. कोई भी चीजकु रियलाइज़् करो वामें एक ॲक्शन् छिप्यो भयो हे.

एक साधारण उदाहरण दूं आपकु. बरसन् अपनूकु नहीं पता हती के जमीनके नीचे पॅट्रोल् हे. अंग्रेजन्ने खोज निकाल्यो. सबकु रीयलाइज़् भयो के जमीनके नीचे पॅट्रोल् हे. वा पॅट्रोल्में ॲक्शन् छिप्यो भयो हे के नहीं. आज जितने भी तरहके मोशन् हे उनमें फ्यूअल् तरीके पॅट्रोल् ही तो काम आ रह्यो हे, तो रीयलाइज़ेशन् ही तो ॲक्शन्में काम आ रह्यो हे. हर ॲक्शन्में रीयलाइज़ेशन् हे.

मैं अपनी बात बता रह्यो हूँ के आजसु पंद्रह सौ बरस पहले जो अपने यहां ब्राह्मी-लिपि चलती हती वो मोकु सीखनी हती. पच्चीस बखत मैनें वा चार्टकु देख लियो और धारण कर लियो के 'क' 'ख' 'ग' ऐसे लिख्यो जाय हे पर दो-चार महिनामें भूल जाऊँ. क्योंके रियलाइज़ेशन्‌के कॉरस्पॉन्डिग् कोई ॲक्शन् नहीं हतो. तब मोकु गुस्सा आयो और मैने अशोकके शिलालेखको फोटो मंगाके दिन-रात लिखवेको अभ्यास कियो. अब नहीं भूलूं. ॲक्शन्‌सु रीयलाइज़ेशन् हो गयो. अब मोकु वो लिपि आवे हे लिखनी. आयी कैसे, ॲक्शन् करवेसु. ये जो कम्पार्टमॅन्टलाइज़ेशन् अपन्‌ने कियो हे ॲक्शन् और रीयलाइज़ेशन् को ये केवल सुपरफीशियल् हे. महाप्रभुजीको मत हे के हर ॲक्शन्‌में रीयलाईज़ेशन् हे और हर रीयलाईज़ेशन्‌में ॲक्शन् भी हे ही. संगीतको आप अभ्यास करो तो आपकु 'सा' लगानो आ जाय. सुनते रहो रेडियोपे तो 'सा' लगानो नहीं आयगो. क्रिकेट सीखवेके लिये हाथमें बॅट् तो पकड़नो ही पड़ेगो. वो रीयलाईज़ेशन् आपकु ॲक्शन्‌सु आयगो. टी.वी.में कितने लोग क्रिकेट देखते रहे हें, उनकु क्रिकेट कहां आवे? छोटे-छोटे बच्चानूकु मोबाईल् चलानो आ जाय क्योंके वे अभ्यास कर रहे हें. बड़ेनूकु इतनो नहीं आवे. बच्चा ॲक्टिव् हे वाके कारण वाकु आ जा रह्यो हे. अपन् बूढे होवेके कारण थोड़े थक जायें. जब ॲक्शन्‌पे कंट्रोल् नहीं आवे, तो अपन् छोड़ दें वाकु. बच्चा बन्दरकी तरह पीछे पड़यो ही रहे, यासु वाकु आ जाय. बच्चा जाकु अपन् बेवकूफ समझते होंय वाकु सब चलानो आवे. क्योंके वो ॲक्शन् कर रह्यो हे. हर ॲक्शन्‌में एक रियलाईज़ेशन् छिप्यो भयो हे और हर रियलाईज़ेशन्‌में एक ॲक्शन् छिप्यो भयो हे.

ऐसे ही भागवतकार एक बात कहे हें के प्रकृतिमें पुरुष छिप्यो भयो हे और पुरुषमें प्रकृति छिपी भयी हे. याही लिए शिव-पार्वतीको स्वरूप अपने यहां अर्ध-नरनारीश्वर माने हें. वो तत्त्व आधो नर

हे आधो नारी हे. नारीमें नर छिप्यो भयो हे और नरमें नारी छिपी भयी हे. समझो के नरमें नारी नहीं छिपी भयी होय तो माँकु बेटा नहीं होनो चहिये. अपनूने जो डिविज़न् कियो हे स्त्री-पुरुषको, वो उपरी डिविज़न् हे पर वस्तुत: दोनों एक-दूसरेके भीतर छिपे भये हैं, ऐसे महाप्रभुजी कहे हैं के गूढ़पुंभाव और गूढ़स्त्रीभाव. ज्ञानमें क्रिया छिपी भयी हे और क्रियामें ज्ञान छिप्यो भयो हे. जो मैंने कल-परसों आपकु बात बताई के ज्ञानेन्द्रियमें कर्मेन्द्रिय छिपी भयी हे और कर्मेन्द्रियमें ज्ञानेन्द्रिय छिपी भयी हे. यदि ये तथ्य आपकु समझमें आ जाय, तो सिद्ध-साधन और साध्य-साधन के टुच्चे झगड़ा हे, ये सब खतम हो जायें.

(क्रियात्मक अहंकारके तीन रूप : शान्त-घोर-मूढ़)

भगवान्ने अहंकारके मॅनेजमॅन्ट्की जो प्रोसेस् बतायी वो शान्त घोर और संमूढ़ रूप क्रिया हैं. क्रियाके ये तीन रूप हैं. कल मैंनें आपकु ये बात बताई हती विस्तारसु के शान्त क्रिया चलवेकी बोलवेकी खावेकी कैसी होवे. खावेमें भी शान्त घोर और मूढ़ क्रिया हो सके.

मेरे एक सरदारजी दोस्त हते. एक दिन मैं बाहर निकल्यो, तो अचानक मिल गये. बोले "चलो चलो! घर चलो." मोसु कही "क्या खाओगे?" मैंनें कही "मैं बाहर कुछ नहीं खाता." बोले "कुछ तो लो." मैंनें कही "अच्छा चलो! फल दे दो." सरदारजी दो अंगूरकी लूम लेके आ गये. एक मोकु दी और एक खुदने रखी. जब-तक मैं दो-चार अंगूर ही खा सक्यो, तब-तक वो अपनी पूरी लूम साफ कर गये. ये हे घोर क्रिया. मैं थोड़ी तहजीबसु खा रह्यो हतो. पर वो तो फटाफट खा गये. फिर मोसु पूछी "और अब कितनी देर लगेगी आपकु?" मैं शान्त क्रिया कर रह्यो हतो और वो घोर क्रिया कर रहे हते. अपन् समझ

सके के खावेमें चलवेमें सबमें घोर शान्त और मूढ़ क्रिया हो सके हे. यहां-तक के भगवत्सेवामें भी शान्त घोर और मूढ़ क्रिया हो सके.

(अहंकारके कारण भक्तिकी मूढ़ता)

हमारे बड़े मन्दिरकी एक हवेली हती वामें एक नये मुखियाजी आये. उनकु शृंगार धराने आते नहीं हते. अब दर्शनार्थीनूकु ये बात अच्छी नहीं लगे. वो ये ही कहे के "पुराने मुखियाजी बहोत अच्छे शृंगार करते हते." हर बखत वो लोग मुखियाजीकु तंग करते रहते. एक दिन मुखियाजीको तमोगुण प्रकट हो गयो. एक दिन दर्शन खुले और लोगनूके केहनो शुरु कर दियो के "पुराने मुखियाजी टिपारा ऐसे धराते हते. तुमने ऐसे क्यों धरायो?" वाकु इतनो क्रोध आयो के वाने ठाकुरजीको मस्तक नीचे, चरण ऊपर कर दिये और वैष्णवनूसु कही "अब ठीक हे?" वैष्णव सब चुप हो गये और कही के "अब नहीं बोलेंगे." ये सेवा तो हे पर घोर सेवा हे. सेवा भी शान्त घोर और मूढ़ हो सके. बहोत प्रसिद्ध कथानक हे, जो मैनें पहले भी कई बार आपकु सुनायो हे. एक ब्राह्मण शालिग्रामजीकी पूजा कर रह्यो हतो. भोग धरवेके लिए जंगलमें सामग्री सिद्ध कर रह्यो हतो. एक कुत्ताकु सुगंध आ गयी और वो बार-बार रसोईकि पास आवेकु करे. दो-चार बार हुड़ हुड़हुड़ करके भगायो पर वो भी भूखो होवेके कारण वहीं आवे बार-बार. अन्तमें तंग आके वाने शालिग्रामकु ही उठाके मार्यो. कुत्ता 'पें-पें' करके भाग गयो. अब ये शालिग्रामकी पूजा घोर हे के नहीं? ये 'विमूढ़' मानें तम क्रिया हो गयी. हर बातमें कोई भी बातमें वामें शांत घोर और मूढ़ता अपनी प्रकट हो सके हे.

(अहंकारकु शुद्ध करवेकी मर्यादामार्गीय प्रक्रिया)

अब अहंकारके मॅनेजमॅन्टके तहत क्या बात कही? धीरे-धीरे

अहंकारकी चिकित्सा करो. यदि मूढ़ हे तो पहले वाकु घोर बनाओ फिर वाकु शान्त बनाओ. शान्त होयगो, तो मॅनेज् हो पायगो. घोर होयगो तो नहीं होयगो. और मूढ़ होयगो तो वो अन्-मॅनेजेबल् ही हे. क्योंके वो तो वन्-वे-ट्रेफिक् ही हे. मूढ़ आदमीकु अपन् क्या केह सकें. अहंकारके मॅनेजमेन्ट्की ये एक विधि हती के यदि आप अहंकारकु शान्त बना रहे हो तो तुम "अविभक्तं विभक्तेषु"कु देख सकोगे, जो ज्ञानमें सात्त्विक अवस्था हे. वरना तुम्हारे घोर अहंकारसु तुमकु विभाग ही विभाग दिखेगो. अविभक्त नहीं दिखेगो. तुम्हारे मूढ़ अहंकारसु तुमकु केवल वो ही दिखेगो के जामें तुम रच-पच गये. एक प्रकारको भैंसवालो सिद्धान्त. याकु मैं भैंसवालो सिद्धान्त क्यों कहूँ? क्योंके बनारसमें मैं दो साल पढ्यो तो जब भी वर-राजा घोड़ापे निकले तो वहांकी छोटी गली होवेके कारण जब बॅंड-बाजावाले जोरसु बाजा बजावें तो उनकी आवाज सुनके भैंस भड़क जाय. जब वो भड़क जाय तो बाराती तो दुकानपे चढ़ जायें पर वर-राजा घोड़ापेसु कैसे उतरे! उतर जाय तो वरराजा नहीं केह सके. भैंस वर-राजाकु टकराके निकले. वर राजाकी बहोत दुर्दशा हो जाय. जब भी बनारसमें कोई बारात निकलती तो मैं वा दृश्यकु देखवेके लिये वहाँ खड़ो हो जातो. भैंसकु ये नहीं दिखे के कोई सामने हे के नहीं. तुमकु बचनो होय तो बचो. वाकु कुछ फरक नहीं पड़े. याको नाम 'विमूढ़ता'. भैंसके सामने अपन् हॉर्न बजावें, तो गाय और कोई और जानवर तो सरक जाय पर भैंस नहीं सरके. मूढ़ताको सबसु अच्छो उदाहरण अपने यहां भैंस हे. अपनी भैंस भजनमें सेवामें संगीतमें परीक्षामें धंधामें आपसी बात-चीतमें कहीं भी प्रकट हो सके हे. वो कब घोर हो जाय, कब शान्त हो जाय, वा वस्तुपे अपनो कंट्रोल् नहीं हे. पर अपन् एक काम कर सके हें के जहां अपनो कंट्रोल् नहीं हे, पर जो अपने भीतर रही भयी कोई डिवाइस् सत्त्वके मोड्में हे, वासु अपन् वाकु टॅकल् कर सके हें. अहंकार भी राजस और श्रद्धा भी राजस हे, तो वो टॅकल् नहीं होयगी. पर समझो

के श्रद्धा राजस हे और अहंकार सात्त्विक हे, तो वो अहंकार राजस श्रद्धाकु कंट्रोल् कर सकेगो. श्रद्धा सात्त्विक हे और अहंकार राजस हे, तो श्रद्धा अहंकारकु टॅकल् कर लेगी. मॅनेजमॅन्टकी जो सिफत हे, वो ये बताई. या सारी टॅक्नीकुमें भगवान् सिद्ध-साधन नहीं बता रहे हें, साध्य-साधन बता रहे हें. यालिए भगवान् केह रहे हें **"यज्ञे तपसि दाने च स्थिति 'सद्'इति च उच्यते कर्म चैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधीयते"**

(तदर्थ कर्म(समर्पण) : सिद्धसाधन)

तदर्थ कर्म भी पाछो सत् हे. ये कर्म ही सत् हे, ऐसो नहीं हे. थोड़े विचारकी आवश्यकता हे के कर्मकी तदर्थता सिद्ध-साधन हे के साध्य-साधन हे. अपन् जो भी काम कर रहे हें वाकी तदर्थता सिद्ध-साधन हे के साध्य-साधन हे? मानें active mode हे के cognitive mode हे?

याकु एक हल्के उदाहरणसु समझाऊँ, तो अच्छी तरहसु समझमें आ जायगी. एक शास्त्रीजी प्रवचन कर रहे हते, बिल्कुल निरर्थक. कोई भी श्लोकको कुछ भी अर्थ कर रहे हते. शास्त्रीजीके दुर्भाग्यसु एक दिन एक श्रोता संस्कृतको जानकार वहां आ गयो. वाने पूछी "शास्त्रीजी! जा श्लोकपे आप प्रवचन कर रहे हो, वा श्लोकमें कर्ता कौन हे, ये आपकु पता हे?" शास्त्रीजी पढ़े-लिखे तो नहीं हते पर चतुर बहोत हते. उनने कही के "ये जो श्रोताने प्रश्न कियो हे के या श्लोकमें कर्ता कौन हे? तो यामें मेरो उत्तर ये हे के जब अठारह पुराणनुको कर्ता वेदव्यास हे, तो या श्लोकको कर्ता कोई अलग हो सके?" अरे भई! यहां कर्ताको अर्थ कुछ और हे. जैसे "राम दशरथके केहवेसु बनवासमें गये." यामें कर्ता दशरथ हे के राम हे, ये प्रश्न हे. यहां वनवास कौन गयो? राम. यालिये यहां कर्ता 'राम' भये. पर कोई कहे के यदि दशरथ ही

पैदा नहीं होते, तो राम कहांसु आते! अरे भई! ये कोई और मायनेमें पूछ्यो जा रह्यो हे पर चतुर लोग तो ऐसी ही बहस करें. अब श्लोकमें आती भई बातको कर्ता कौन हे या बातको उत्तर देनो हे, न के वा श्लोकको कर्ता कौन हे. पर ऐसो उत्तर दे के श्रोताकु मूर्ख सिद्ध करके चुप कर दियो. या तरीकेको उत्तर यदि कोई दे दे, तो मूढ़ता प्रकट हो गयी. क्योंके उनकु खुदकु नहीं पता हे के श्लोकमें कर्ता और अठारह हजार पुराणके कर्तामें भेद क्या हे? अब मैं जो बात आपकु समझानो चाह रह्यो हूँ वो ये हे के ये सिद्ध-साधन हे के साध्य-साधन हे? याही कारणसु मैंने आपकु बतायो के परिज्ञाता कर्ता हो रह्यो हे, अपरिज्ञाता कर्ता हो ही नहीं रह्यो हे. और परिज्ञान तो सिद्ध हे. क्रिया साध्य हो सके पर ज्ञान तो साध्य नहीं हे. ज्ञान तो अपनी खोपड़ीमें होय तो होय, नहीं होय तो नहीं होय.

दूसरी बात. भगवान् जब यों केह रहे हैं के कर्मकी आज्ञा ज्ञाताकु ही दी जा सके हे, कर्ताकु नहीं दी जा सके. अब समझो के कौन ॲलिजिबल् हे यामें? ज्ञाता के कर्ता. समझो के नदी बह रही हे और मैं वाकु कहूँ के "हाँ हाँ, बहो. मेरे हार्दिक आशीर्वाद हे तुमकु के तुम बहती रहो." तो क्या नदी मेरे आशीर्वादसु बह रही हे? नहीं वो तो वैसे भी कर्ता होवेकी हैसियतसु बह ही रही हे. अपन् ऐसी आज्ञा नदीकु नहीं दे सकें. जैसे आप लोग बैठे भये हो और मैं आपकु आज्ञा दे सकूँ के "जरा खड़े हो जाओ." क्योंके आप ज्ञाता हो, यालिए मैं आपकु कर्ता बना सकूं. यदि आप ऐसे कर्ता हो जामें ज्ञाता नहीं होय तो कोई भी क्रिया मैं आपसु करवा नहीं सकू. धकेल सकू हूँ आपकु, पर चला नहीं सकू हूँ. धकेलवे और चलावे में अन्तर हे. जैसे गाड़ी बंद हो जाय तो चला नहीं सके हैं, धकेले हैं. चलावेके लिए तो अपनकु ज्ञाता चहिये. कर्ता होवेके लिए ज्ञाता होनो पहली

आवश्यक्ता हे. या बातकु समझो के ये सिद्ध-साधन हे के साध्य-साधन हे?

"कर्म चैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधीयते" (भग.गीता १७।२७)यज्ञ तप दान तो क्रिया हे और कर्म जो तदर्थ हे, वो ज्ञान हे के क्रिया हे? या बातको यदि अपनूकु निश्चय करनो हे, तो जैसे मैंने आपकु बतायो के श्लोकको कर्ता अष्टादश पुराणके कर्तासु अलग तो नहीं होयगो. ऐसे तुम्हारे कर्मको कर्ता जो आखे विश्वको कर्ता हे वासु अलग तो नहीं होयगो. या बातको उत्तर देवेमें अपनूकु तकलीफ होवे हे. आखी ट्रेन चल रही हे, वामें ट्रेन चलावेको कर्ता इंजिन् हे और चलवेवाले डब्बा हैं. तो उन डब्बान्के चलवेमें क्रिया साधन हे के ज्ञान साधन हे? ज्ञान साधन हे. क्रिया तो इंजन् कर रह्यो हे. चलते डिब्बाको काम तो केवल इतनो हे के वो इंजन्सु जुड़े रहे. **"कर्म चैव तदर्थीयं"** अपनूकु अपने इंजन्सु जुड़े रेहनो हे. वा डब्बासु सब एक-दूसरेसु जुड़े रहें तो चलते रहेंगे. डब्बा चल रह्यो हे इंजन्के कारण पर इंजन् चल रह्यो हे खुदके लिए. उन डब्बान्कु कितनी जरूरत हे? सिद्ध-साधन हे.

(अहंकारकु भगवदर्थ बनावेकी पुष्टिमार्गीय प्रक्रिया)

"क्रीडार्थम् आत्मनः इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यन्तु तत्र कुधियो अपरे ईश! कुर्युः" (भाग.पुरा.८।२२।२०) ये सारो जगत् ब्रह्मने खुदके लिए बनायो हे. वामें तुम्हारे अहंकारकी भैंसने ये समझा दियो के "मैं कुछ कर रह्यो हूँ, याके लिए विश्व बन्यो हे." अब यदि तुमकु ये समझ हे, तो तुम वासु जुड़ नहीं पा रहे हो. यदि तुमकु ये समझ आ गयी के ये आखो जगत् वाने अपने खेलके लिए बनायो हे, मोकु वासु खाली जुड़नो ही तो हे, तो मेरो कर्म तदर्थ हो जायगो. क्योंके मेरो कर्म वाकी सृष्टि रूपी क्रीड़ाको पार्ट हे, न के स्वतन्त्र. यदि मैं स्वयं वाकी सत्तासु स्वतन्त्र नहीं हूँ, वाकी सत्ताको पार्ट हूं. मैं स्वयं स्वतन्त्र नहीं हूँ अपनी चेतनासु,

वाकी चेतनाको पार्ट हूँ, तो मेरो कर्म जो वाको लीलात्मक कर्म हे, वासु मेरो कर्म छुट्टो कैसे हो जायगो. "**कर्म चैव तदर्थीयं**" कर्मकी तदर्थता मानें भगवदर्थताको इश्यु हे. ये बात ध्यानसु समझियो के यहां कर्मकी बात नहीं हे. क्योंके क्रियाकी प्रधानता आयी यालिए अपनो ज्ञान वाकी चेतनाको पार्ट हे, अपनो ज्ञेय वाके सदंशको पार्ट हे और अपनो परिज्ञाता वाके अहंको पार्ट हे. बड़ो अहं वाको हे और वामें अपनो छोटो अहं समायो भयो हे. वो कैसे समावे? जैसे अपने आखे शरीरको एक अहं हे. वा अहंमें अपने हाथको अहं समायो भयो हे के नहीं? कोई अपनो हाथ पकड़े, तो वाकु अपन् कहेंगे "क्यों पकड़ रहे हो मोकु?" क्या इतनो ब्रह्मज्ञान छांटेगे वाके सामने के तुम मोकु नहीं, मेरे हाथकु पकड़ रहे हो. इतनो ब्रह्मज्ञान कोईके सामने छांटोगे तो वो तुमकु पागल ही समझेगो.

ये सारे अंग शरीरके लिए हैं के नहीं? सारो शरीर अपने अहंके लिए हे के नहीं? याकु करनो हे के खाली समझनो हे? ये तो केवल समझवेकी बात हे करवेकी नहीं. ऐसे ही 'मैं' और यासु रिलेटेड् 'मेरे ॲक्शन्' 'मेरे कोग्नीशन्' 'मेरी अंडरस्टेडिंग्', ये सब वाके लिए हें. वामें करवेको कुछ हे नहीं. वो तो वैसे भी वाके ही हे. क्या तुम करोगे के वो वाको हो जायगो और क्या नहीं करोगे जो वाको नहीं रेह जायगो? समझो अपन् ये कहे के "ये सब मेरे लिए हे, भगवान्के लिए नहीं हे." ये समझ तुम्हारी खोटी हे, क्योंके अन्तमें तो सब भगवान्के लिए ही हे.

एक गुजरातीको शायर हे. वाने कही हे के *तारुं बधुज होय तो लईने जा तु अने तारुं न कांई होय तो छोड़ी बताव तु.* तेने जो अपने साथ सामान इकट्ठो कियो हे, वो यदि तेरो हे तो तू लेके जा सके? अपनसु न तो छूटे हे और न अपन् लेके जा सके हें. या रहस्यकु समझो के जब ये सब कुछ भगवदर्थ

हे, तो यामें कुछ करवेकी जरूरत तो हे नहीं. बस खाली समझवेकी जरूरत हे के यामें कुछ मेरो हे नहीं, सब वाको हे. इतनी समझ हो गयी तो सिद्ध-साधन हे.

यदि तुमकु कुछ खोटो अहंकार हे के नहीं मोकु कुछ करनो हे तो वो तो नरसी मेहता भी कहे हे के हूँ करुं, हूँ करुं, *एज अज्ञानता शकटनो भार जेम श्वान ताणे.* वो कहे हे के बैलगाड़ाके साथ बंधे भये कुत्ताकु भी चलनो पड़े हे. पर कुत्ताकु ये भ्रमणा हो सके हे के या बेलगाड़ाकु मैं खींच रह्यो हूँ. तुम भूल गये हो के तुम खींच नहीं रहे हो, खींचे जा रहे हो. यहां किशनगढ़में तो भगवान्की कृपा हे के वो सीन् देखवेकु नहीं मिले हें. पर हमारे मुम्बईमें ये सीन् बहोत देखवेकु मिले हे के कुत्ताके मालिक शामकु कुत्ताकु घुमावे ले जाये. कुत्ताके गलाकी चेन् उनके हाथमें होवे पर कुत्ता उनकु घसीटे हे. चेन् हाथमें इनके हे कुत्ताकी पर घुमावेवालेकु कुत्ताके पीछे-पीछे घिसटनो पड़े हे. कितनी बड़ी लीला हे के कुत्ताकी चेन तुम्हारे हाथमें हे और घसीट तुमकु कुत्ता रह्यो हे! ये विरुद्धधर्माश्रयता देखते ही मोकु ब्रह्मज्ञान हो जाय हे.

या तरहसु अपनी इन्द्रियन्के कुत्ता अपन्कु घसीट रहे हें और अपने अहंकारके हाथमें अपनी इन्द्रियन्की चेन हे. पर अहंकार उनकु घसीट नहीं पा रह्यो हे. इन्द्रियें वा अहंकारकु घसीट रही हें. एक अहंकारकु घसीटवेवाले दस कुत्ता हें. एक होय तो भी कंट्रोल्में नहीं आवे, तो दस होंय तो आदमीकी कैसी दुर्गति होवे. या अहंकारके कारण अपन् ये समझें के मैं घसीट रह्यो हूँ, तो कुत्ता और तुममें अन्तर क्या हे? *हूँ करुं, हूँ करुं एज अज्ञानता शकटनो भार जेम श्वान ताणे.* कुत्ता चल रह्यो हे पर वाकु भ्रम तो हो ही सके हे के "मैं खींच रह्यो हूँ."

ढब्बू जब छोटी हती, तो वाने मोसु सवाल कियो हतो.

हमारी शादीकी फोटो देखके वाने पूछी ''काका यामें मेरो फोटो क्यों नहीं हे.'' अब अपनी शादीमें अपनी बेटीको फोटो कहांसु दिखानो? मैनें वासु कही के ''तु वा समय हती नहीं.'' बोली ''अच्छा! आपके पास नहीं हती. कहीं और हती? कहां हती बताओ.'' मैनें अपने घोर मूडमें केह दी के ''तू हती ही नहीं.'' वाने कही ''ऐसे कैसे हो सके. हती ही नहीं, तो आयी कहांसु?'' अब या रहस्यकु बच्चाकु समझानो कैसे? बच्चा या तरहसु अपनकु असंमजसमें डाल दे हैं.

वा तरहसु ही अपन् अपने अहंकारके कारण असंमजसमें हें. वाके कारण अपन् अपने आपकु कर्ता मान रहे हें. पर कर्मको तदर्थ होनो सिद्ध-साधन हे, साध्य-साधन नहीं हे. वामें करवेको कुछ नहीं हे, खाली समझवेको हे. यदि अपन्ने समझ लियो के सब कुछ तदर्थ हे मानें मैं भी वाके लिए हूँ, मेरे कर्म भी वाके लिए हे और मेरे कर्मको फल भी वाके लिए हे. इतनीसी बात यदि अपन्ने समझ ली, तो वो प्रक्रिया अपने अहंकारके मॅनेजमॅन्टकी शुरु हो जायगी.

[११]

(अपनी शरणागति और समर्पण, सिद्ध-साधन ही हैं)

जो गीतामें ''**कर्म चैव तदर्थीयं**''के द्वारा समझायो गयो हे. वो अहंकारकु मॅनेज् करवेकी प्रक्रिया वहांसु शुरु हो रही हे. ''**यज्ञे तपसि दाने च स्थिति 'सद्'इति च उच्यते कर्म चैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव अभिधीयते**'' यामें सौ प्रतिशत नहीं पर कुछ संख्यामें वो मर्यादा-मार्गीय अहंकारकी मॅनेजमॅन्ट् हे और अपनी पुष्टिमार्गीयन्‌की जो अहंकारकी मॅनेजमॅन्ट् हे. यालिए ब्रह्मसम्बन्धमें ''**भगवते कृष्णाय**'' कह्यो हे. वो **सिद्ध-साधन** हे, **साध्य-साधन** नहीं हे. अपने अहंकारकी मॅनेजमॅन्ट् **सिद्ध-साधन** हे, **साध्य-साधन** नहीं हे. बस समझ लो अच्छी तरहसु के तुम भी तुम्हारे लिए नहीं हो, तुम्हारो ॲक्शन् भी तुम्हारे लिए नहीं हे. तुमकु कुत्ताके जैसे होतो होय, तो ठीक हे. थोड़ी देर घसीटो पर सचमें तो तुम्हारो कर्म भी तुम्हारे लिए नहीं हे. वो कर्म भी वाकी लीलाके लिए हे. और वाकु जो भी सुख-दुःख होवेवालो हे वो भी सचमें तुम्हारे लिए नहीं, वाके लिए हे.

मैं अक्सर एक उदाहरण दऊँ के अपन् जॉगिंग् करें, अपन् जीममें पसीना बहावें, अपन् पहाड़पे चढ़ें, इन सबमें पैरकु कितनो दुःख होवे हे. पर वे हें अपनकु मजा दिवावेके लिए. अपनकु वो दुःख लेवेमें एक लीलात्मक आनंद आ रह्यो हे. अब पैर यदि यों कहे के तुम अपने मजाके लिए मोकु तकलीफ क्यों दे रहे हो, तो सचमें ये एक फिलॉसोफिकल् समस्या हे के अंश उठके अंशीकु ये पूछे के तुम अपने स्वार्थके लिए मोकु क्यों टॉर्चर् कर रहे हो? ये समस्या मोकु भी बहोत कठिन लगती हती. मेरो एक दोस्त हे. वाकुकु भी कुछ पैरमें समस्या हो गयी. वो चल-फिर नहीं सके. खानों छूटे नहीं. पहले तो व्यायाम करतो हतो पर पैरकी समस्याके बाद व्यायाम भी बंद हो गयो. वाके कारण वो बहोत मोटो हो गयो. मैंने उनसु पूछी के ''क्यों आपको शरीर इतनो भारी

हो गयो हे.'' उनने कही के ''क्या करूँ महाराज, चलना-फिरना बंद हे और खाये बिना रहा जाता नहीं. तो ये ही तो होगा.'' बात तो सोलह आना सच हे. पैरकु तो सुख मिल गयो पर मोटापाके कारण सहज सम्भव हे के हार्टअटॅक् भी आ सके. लॅग-अटॅक् बचाके हार्टअटॅक् आवेकी स्थितिमें आ गये. अब पैरकु ये ही तो समझानो हतो के तोकु मरनो नहीं हे, तो थोड़ी तकलीफ झेल. जाकु महाप्रभुजी केह रहे हें के **''त्रिदुःखसहनं धैर्यम् आमृतेः सर्वतः सदा तक्रवद् देहवद् भाव्यं जडवद् गोपभार्यवत्''** (वि.धै.आ.६) थोड़ो दुःख सहन कर लो. यालिए नहीं के दुःख सहन करवेकी नॅगेटिविटी अपनेमें हे पर अपनो दुःख, जो एक पूरे शरीरको सुख हे, वा सुखके लिए अपन् दुःख सहन करे ही हें.

पहले मैं किशनगढ़ आतो हतो तो अकेलो आतो. अब मंदिरसु जो रोटी आती गिनी गिनाई वो मैं खा लेतो. बादमें कोई मेहमान आवे तो मेरे पास खावेके लिए कुछ रहतो नहीं. अभी सुरेशबाबा मोसु या ग्यारसकु आवेकी पूछ रहे हते. मैनें कही ''पधारो भले!'' उनने पूछी ''खावेको तो हो जायगो के नहीं.'' क्योंकि एक बखत वो यहां आये हते तो मेरे पास एक मठड़ीको टुकड़ा ही बच्यो हतो. उनने आके कही के ''दादा! भूख लगी हे.'' वा टुकड़ाकु उनकु दे के कही के ''अभी तो बस ये हे.'' उनने कही ''अभी तो कुछ भी चलेगो.'' अबके पूछी, तो मैनें कही ''अभी तो लक्ष्मी हे. प्रोस्पेरिटी हे. अब चिन्ताकी बात नहीं हे.'' वासु भी अधिक उचित उदाहरण दऊँ. संतरामपुरके राजा साहब जो किशनगढ़के जमाई हते, वो एक दिन मेरे पास आये. मैं अलग अकेलो बैठ्यो हतो. मैं संतरामपुरकी महारानी जो किशनगढ़की हतीं उनकु जीजी केहतो हतो. मैंने सोचीके जीजाजी आये हें तो कुछ खातिरदारी तो करनी चहिये. मैंने उनसु ये समझके पूछी के वो मना कर देंगे, ''कुछ चाय-कॉफी लोगे?'' उनने कही ''हाँ! ले लूँगो.'' मैनें सोची के

अब तो मरे.'' अंदर बुर्जमें गयो वहां थोड़ो दूध और चाय तो हती पर मोकु स्टोव जलानो नहीं आवे. वाके जलावेके चक्करमें सारी दियासलाई खतम हो गयी. अब क्या करनो? मैनें जीजाजीसु पूछी के ''आप सिगरेट पीते हो, अपने लाईटर्से स्टोव् जला दो.'' उनने जला दियो. फिर मैने कही ''अब चाय भी आप बना लो, मोकु बनानी नहीं आवे.'' अब क्या करें नहीं आवे बनानी तो! उनने स्वयं चाय बनाके पी. बात ध्यानसु समझो के कोई बखत दारिद्र्य हो जाय अपनूकु. कोई बखत अपने पास फॅसिलीटी नहीं होवे तो अपनूकु क्या करनो? कोई बखत अपने पास वो फॅसिलीटी ही नहीं होवे तो अपन् या बातकु समझ सकें. फिर भगवान्कु बुलानो पड़े और वाकी शरणागति लेनी पड़े हे ''**श्रीकृष्णः शरणं मम**'' चाह तो रहे हें के तुम्हारे लिए कर्म करें पर वाके लिए भी तुम्हारी शरणकी जरूरत हे. जीजाजीकु चाय पिवावेके लिए उनके लाईटर्की जरूरत हे. क्योंके अपनी दियासलाई तो सारी खतम हो गयी हती. वाके बिना चाय कैसे बने. समर्पित होवेके लिए अपने यहां शरणागतिको विधान कियो. जीजाजीके लाईटर्सु ही चाय तदर्थ बनायी. ''**कर्म चैव तदर्थीयं**'' मैं ये बात मजाकमें समझा रह्यो हूँ पर हे बात बहोत गंभीर.

जब अपनूकु समर्पणको भाव जाग्रत करनो हे, जो सिद्ध-साधन हे, वाके लिए अपनूकु एक-दूसरो सिद्ध-साधन लेनो पड़ेगो जो अपने पास नहीं हे. समझो जीजाजी ना पाड़ देते के ''लाईटर् तो मेरे पास नहीं हे.'' तब तो मोकु कहीं औरसु मंगानी पड़ती और वामें घोर मूढ़ कर्म हो सकते हते. पर वहां सिद्ध-साधन लाईटर्को हतो, चाय बन भी गयी और समर्पित भी हो गयी. अपन् जो शरणागति कर रहे हें वो भी सिद्ध-साधन ही हे क्योंके अपन् सरेंडर् तो हें ही. जब आपने लाईटर् उनसु मांग्यो और कही के चाय भी आप ही बना लो तो सरेंडर् तो हो ही गये. सरेंडर्के बाद समर्पित

भी हो गये. ये अपने यहांकी अहंकारके मॅनेजमॅन्टकी प्रक्रिया हे. "**यज्ञे तपसि दाने च**" वा क्रियाकु अपन् इन्कार नहीं करे हें. पर अपन् इम्प्लीमॅन्ट् दूसरी प्रक्रियाकु करे हें. सबसु पहले शरणागतिसु अपने अहंकारकु सोबर् करे. वाके बाद ममताकु अपन् सोबर् करें वाकु समर्पित करके. वो भी सिद्ध-साधन हे. अपनूकु कहींसु ममता लानी नहीं हे. अपने पास ममता देहमें हे, घरमें ममता हे, पतिमें ममता हे, पुत्रमें ममता हे, धनमें ममता हे, सब चीजमें ममता हे. जो अपने पास हे, वो ही वाके साथ शेअर् करनी हे. वो जब अपनूने शेअर् करी, तो वो अपनो सिद्ध-साधन हो गयो. अब श्रीशंकराचार्य अपनूसु यो नहीं केह सके हें के तुम्हारो साध्य-साधन हे, नश्वर साधन हे. अपन् केह रहे हें के "नहीं! हमने अपने अनश्वर साधनसु अनश्वरकु पायो." ये अपने यहांके अहंकारके रिफाइनमॅन्टकी प्रक्रिया हे. या प्रक्रियाकु समझावेकें लिए महाप्रभुजीने राणाव्यासकु चतु:श्लोकी समझायी.

(अहंकारके रिफाइन्मॅन्ट्की प्रक्रिया समझावेके लिये चतु:श्लोकी)

"**पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं धर्मो**" ये जो चतु:श्लोकीको सिद्धान्त हे के हरिको दास हो जानो, वो धर्म हे. हरि खुद अर्थ हे. वाकी ही शरणमें जानो पड़ेगो. हरिकु देखवेको तुम्हारो काम होनो चहिये. सिर्फ देखवेको नहीं पर वाके समर्पणको काम होनो चहिये. जैसे ही वो दिखे वाकु जो मेरी ममतास्पद वस्तु हे वाको समर्पण मैं करूँ. अपन् पंचाक्षरमें केह रहे हें के "तेरो हूँ." वासु अब तुम कृष्णके हो जाओगे. वैसे तो तुम कृष्णके हो ही पर जब तुम कृष्णके लिए अपनेकु सोचवे लग जाओगे, सिद्ध-साधनके रूपमें, तो फिर वो ही तुम्हारो मोक्ष हे. तुम्हारी अंहता भी शुद्ध हो गयी, तुम्हारी ममता भी शुद्ध हो गयी और सारी प्रक्रिया भी शुद्ध हो गयी. ये अपने यहाँकी प्रक्रिया हे, जो राणाव्यासकु समझाके महाप्रभुजीने शास्त्रार्थमें जितवा दियो. वाके बाद वॉर्निंग भी दे दी के "जितवा

तो मैनें दियो हे तोकु पर याको अहंकार मत करियो.'' ये मैनें आपकु भूमिका समझायी के अहंकारके मलिन होवेकी प्रोसेस क्या हे. वाकु शुद्ध करवेकी मर्यादामार्गीय प्रक्रिया क्या हे. अहंकारकु भ्रष्ट करवेकी प्रवाहमार्गीय प्रक्रिया क्या हे और अहंकारकु भगवदर्थ बनावेकी पुष्टिमार्गीय प्रक्रिया क्या हे! ये वाकी भूमिका हे. वा विषय और वा समझकु महाप्रभुजीने राणाव्यासके जीवनमें कैसे उतारी और कैसे वा राणाव्यासको जीवन या हद-तक पहोंच गयो के उनकु सेवामें सानुभावता प्रकट होवे लगी. उनके जीवनके चरित्रमें जो वाको प्रभाव आयो.

(श्रीशंकराचार्यको मत - कर्मसु ब्रह्मकी अप्राप्ति)

कल अपनूने खास ध्यानमें लेवे लायक बात जो विचारी हती वो ये हती के श्रीशंकराचार्यने जो मापदंड बतायो के नश्वर साधनसु अनश्वर तत्त्वकी प्राप्ति नहीं हो सके. वाके तहत जो भी साध्य-साधन हे, मानें जिनकु अपनूकु साधनो पड़े, उनसु ब्रह्म नहीं मिल सके. क्योंके ब्रह्म अनश्वर हे और साध्य-साधन नश्वर हे.

वैसे जहां-तक इतनेसे मुद्दाको सवाल हे, यामें भारतमें ही बहोत सारी थियोरी हे, विदेशकी तो अलग हे. कर्मको सिद्धान्त ये हे के हर ॲक्शन्को कोई रिॲक्शन् होवे. जो भी अपन् कर्म कर रहे हें, वाको कुछ न कुछ रिॲक्शन् तो होयगो ही. ॲक्शन् अपनो कोई एक टाईम् फ्रेम्में होवे हे. यासु वाको रिॲक्शन् भी एक टाईम्सु दूसरे टाईम् तक होयगो. या सामान्य समझकु लेके ये नश्वर साधनसु अनश्वर ब्रह्म प्राप्त नहीं हो सके, वो स्टेंड प्रमाणित भयो.

(मीमांसकनूको कर्मवाद)

वैसे पूर्वमीमांसकनूने याके पहले एक किला बंदी कर रखी हती.

वो कहे हे के कर्म निश्चित ही नश्वर हे और वाके द्वारा एक अपूर्व या अदृष्ट पैदा होवे हे. कर्म क्योंके दिखलाई देती बात हे पर कर्मके कारण एक अपूर्व अथवा अदृष्ट पैदा होवे हें. वो अपूर्व क्षणिक नहीं हे अपितु दीर्घकाल तक चलवेवालो हे. जब-तक कर्मको फल अपनकु मिले नहीं तब-तक सौ जनमको अन्तराय भी हो सके. ऐसे एक अपूर्व तत्त्वकी उनने कल्पना करी. क्योंके मीमांसक लोग कर्मवादमें मानते हते, ईश्वरवादमें नहीं.

(व्यासजीको कर्म-सिद्धान्त)

वाके विपरीत व्यासजीने एक बात बताई के कर्मवाद खोटो नहीं हे, पर कर्मके फल ईश्वर देवे हे. मानें अपन् जैसे कर्म कर रहे हें, वाको फल अपूर्व होय के नहीं होय, पर वाके कारण भगवान्की कुछ प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता होय हे और वा प्रसन्नताको फल अपन्कु शुभ या अशुभ मिले हें. ये रहस्य यहूदी धर्ममें ईसाईमें मुसलमान धर्ममें सबमें हे.

(जैनन्-बौद्धन्को कर्मसिद्धान्त)

अपने यहांके जो अनीश्वरवादी धर्म हे, उनने याके विरुद्ध एक नई बात और कही के ईश्वर तो कुछ हे नहीं, जो अपने अच्छे अथवा बुरे कर्मको हिसाब रखके अपनकु वाके अनुसार फल दे. पर हर कर्म अपनी आत्माके ऊपर एक आवरण पैदा करे हें और वा आवरणके अनुसार अपनकु फल मिले हें. कर्म तो करवेके साथ ही खतम हो जा रह्यो हे. जैसे अपन् समझ सके के अपनूने भीतपे रंग करवेको कर्म कियो. गुलाबी रंग, तो वा रंगकी कोई कालकी सीमा हे के वो कितने साल रहेगो. उतने समय तक वो आवरण रहे हे अपने पुताईके कर्मके अनुसार. जैसे अपनूने अपनी चमड़ीपे एक खरोंचको निशान बनायो, तो वो अपने कर्मसु दो चार दिन रहे हे फिर मिट जाय हे. उन लोगनूने वो सिद्धान्त अपनायो.

बुद्धको सिद्धान्त यासु भी आगे बढ़के हे. संगके कारण अपन् बुरे कर्म करे हें. उन बुरे कर्मन्के कारण अपन्कु अज्ञान पैदा हो जाय और फिर वो चक्रवत् चलतो रहे हे. या साइकल्में अपन्कु ईश्वरकी आवश्यकता नहीं हे. कितने सारे प्रोग्राम् हें या अहंता-ममताकु सुधारवेके लिए.

(ज्ञान-क्रियाशक्तिको ब्रह्ममें एकीभाव)

उन सारे प्रोग्रामन्में महाप्रभुजीको मत क्या हे? वो अपन् देखें तो पता चले हें के महाप्रभुजीको इन सबसु एक अलग स्टेंड् हे. महाप्रभुजी कहे हें के भगवान् तत्त्वरूप ही नहीं हे, क्रियारूप भी हे. जब क्रियारूप भगवान् प्रकट होवे हें, तो तत्त्वरूप भगवान् पीछे बॅकग्राउन्ड्में रहे हें, प्रकट नहीं होवे हें. जब तत्त्वरूप भगवान् प्रकट होवे हें, तो क्रियारूप भगवान् बॅकग्राउन्ड्में चलो जावे हे पर क्रिया वहां हे तो सही. हर तत्त्वमें कुछ क्रिया हे और हर क्रियामें कुछ तत्त्व हे. ध्यानसु समझो के जैसे अपन् छाछकु मथें तो मथनके कारण माखन प्रकट हो रह्यो हे. क्रियामेंसु तत्त्व पैदा हो रह्यो हे. सूर्यकी किरण आ रही हे वो तो तत्त्व हे पर यदि लेंस् रखके रूईके पास रखें, तो वो रूईकु जलावेकी क्रिया करवे लग जाय हे. या तरहसु तत्त्वमेंसु क्रिया पैदा हो रही हे. जैसी अभी मोकु तकलीफ भयी वैसी ही एक बार बम्बईमें भी भई हती. कोईने सलाह दी के आपके पड़ौसमें एक मशीन् हे, वासु कुछ रेज् निकले हें, वासु आप ठीक हो जाओगे. मैनें वो लेनी शुरु करी, तो वाने पूछी के सहन हो रही हे. मैनें कही "हाँ. अभी तो कोई तकलीफ नहीं हो रही." पर अन्तमें वाने इतनो जला दियो के हड्डी तकमें खड्डा हो गयो. तो समझो के क्रिया तो कर रहे हें रेज् देवेकी पर जो खड्डाको तत्त्व वहां नहीं हतो वो पैदा हो गयो. या तरह क्रियासु तत्त्व पैदा हो जाय, तत्त्वसु क्रिया पैदा हो जाय. महाप्रभुजी यों नहीं माने हें के जो ब्रह्मको ज्ञानरूप तत्त्व

हे, वो क्रिया नहीं कर सके. अथवा जो क्रियारूप तत्त्व हे, वो ज्ञानरूप नहीं हो सके. जहां ज्ञान और क्रिया एक हो रहे हें, वाको नाम 'ब्रह्म'. यालिए महाप्रभुजीने पहले ही केह दी "**क्रियाशक्तिज्ञानशक्ती संदिह्योते परस्थिते**" (ब्र.सू.१।१।२) ब्रह्म जगत्को कारण हे के नहीं, ब्रह्म जगत्को स्थापक हे के नहीं, ब्रह्ममें जगत् लीन होयगो के नहीं ये सब छोटी बात हे.

सबसु पहले महाप्रभुजी केह रहे हे के "**अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा**" (ब्र.सू.१।१।१)में या बातकी जिज्ञासा हो रही हे के ब्रह्ममें क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति हे के नहीं, अथवा क्या ब्रह्म एक ऐसो तत्त्व हे के जामें न ज्ञानशक्ति हे और न क्रियाशक्ति हे. ये एक बहोत फन्डामॅन्टल् इश्यु हे.

(वैश्विकचेतना या ज्ञानशक्ति की स्वीकृति विज्ञानद्वारा)

आज भी वैज्ञानिक या बातकी चिन्ता कर रह्यो हे. वो ब्रह्मकु नहीं माने हे पर युनिवर्स माने, ब्रह्माण्डकु माने हे. या युनिवर्समें एक डिज़ाइन् भी दीख रही हे. यदि अपन् अपने छोटेसे लेवल्पे सोचे तो अपनूकु वो चक्ररूप डिज़ाइन् दिखे हे. इतनी छोटी बातमें इतनी बड़ी डिटेल् वर्क-आऊट् की गयी हे.

एक उदाहरणके तौरपे बता रह्यो हूं के जैसे प्रकृतिने ये अंगुली बनायी. टूथ्-ब्रश्के डिज़ाइन् करवेवाले वाकु मोड़ भी दे, उभार भी दे पर जहां-तक अंगुली पहोंच सके, वहां-तक टूथ्-ब्रश् नहीं पहोंच सके हे. या अंगुलीको डिज़ाइनर् कितनो मॅथोडिकल् हे. अपन् अपने हर अंगमें डिज़ाइन्की खूबसुरतीकु निरख सके हें. अपन् ऐसी बेवकूफीकी बात भी नहीं करे हें के भगवानूकु पहलेसु ही पता हती के आदमीकु टी.वी. देख-देखके चश्मा आ जायगो, तो वो टिकायगो कहाँ. यालिए वाने नाक ऐसी बनाई के चश्मा टिक सके. बनावेवालेकी सोच कितनी

बड़ी हे के जब अपन् चल रहे हे तो हवा सामने आयगी. जाकु कहे के डिज़ाइन् बनावेके पहले यूज़र् फ्रेन्डली होय ऐसो सोचनो. ऐसे ही अपने प्रत्येक अंगकी जो डिज़ाइन् बनाई हे वो कितनी यूज़र् फ्रेन्डली हे के जब अपन् दौड़ रहे हें, तो हवा अपनेसु उतनी तेजीसु टकरायगी और यदि नाक सीधी बनायी होती तो सारो हवाको कचरा नाकमें नहीं जातो. और थोड़ो बहोत जाय भी तो वहां बालन्की फिल्टर् प्रोवाइड् कर दी. देखो कितनी यूज़र् फ्रॅन्डली डिज़ाइन् हे ये समझो. फिर भी चले जायें तो नाकके बाद एक टॉन्सिल् बना दिये. सूज जायें और सूजके श्वास नलीकु डॅमेज् होवेसु बचा लें. देखो कितनो कल्क्युलेशन् हे नाकके डिज़ाइन्में! कभी शांतिसु सोचो तो या पैरकी डिज़ाइन्में भी कितनो बड़ो कल्कुलेशन् हे. क्यों आगेसु चौड़ो हे और पीछेसु सिकड़ो हे. अंगुली सपाट क्यों नहीं हे. अपन् जब खड़े होवे हें, तो गुरुत्वाकर्षणके कारण अपनो सारो वजन एड़ीपे आवे, तो वो स्ट्रोंग् बनायी हे जो अपनो वजन ले सके. वाकु काउन्टर्-बॅलेन्स् करवेके लिए आगे पंजा बनायो हे जासु जमीनपे अपनी पकड़ बराबर बनी रहे. कितनी बारीकीसु हर बातकु सोचके डिज़ाइन् बनायी हे. तो अब बताओ के अपनी क्रियेशन्के प्रति प्रकृति कॉन्शियस् हे के नहीं? भगवान् होय के नहीं होय पर जो भी चीज अपन्कु पैदा कर रही हे वो इन सब यूज़र् फ्रॅंडली डिज़ाइन्के बारेमें कॉन्शिअस् होनी चहिये.

अपन्कु तो नहीं दी हे ऐसी सामर्थ्य क्योंकि अपन्ने दूसरे सब उपाय कर लिए हें पर पक्षी और जानवरन् कु कैसे-कैसे केमॉफ्लेज् करवेके उपाय दिये हे. वो जा वातावरणमें रहे हें, उनकी चमड़ी वा ढंगकी बनायी के वो अपने वातावरणमें आसानीसु छिप जायें. पोलर भालूकु सफेद बना दियो जासु वो बरफमें छिप सके. अपने जंगलके शेरकु ऐसो रंग दियो के वो घासमें अच्छी तरहसु छिप सकें. जो भी या तरहको काम कर रह्यो हे, चाहे वाकु भगवान्

कहो के प्रकृति कहो, वो कॉन्शियस् तो हे ऐसी डिज़ाइन् बनावेके लिए. अपन् राजस्थानमें हें. यदि अपने सरपे बाल नहीं दिये होते, तो गरमीमें टांट कितनी गरम हो जाती? जो भी गरमी आवे वाकु बाल सहन कर ले और टांट उतनी गरम नहीं होय. हर कदमपे प्रकृतिने कितनी सावधानी रखी हे के गिनावें तो अन्त नहीं आवे. जो इतनी सावधानी रख रही हे प्रकृति हर प्राणीके साथ, वो अन्-कॉन्शियस् तो हो नहीं सके. वो अपने हर प्रोडक्ट्के बारेमें कॉन्शियस् हे के अपने हर प्रोडक्ट्कु मोकु या तरहसु सर्वाइवल् किट् देनी हे के जासु अपनी सुरक्षा कर सके. अन्-कॉन्शियसली बनायी होती तो प्रकृति कैसे भी बना देती. याके बारेमें कई संप्रदाय हें. कोई बिजनेसवालो यदि याके बारेमें सोचेगो, तो वो ये ही सोचेगो के जैसे वाकु भावके ऊपर-नीचे जावेकी कॉन्शियसनेस् हे, ऐसी ही प्रकृतिकु होयगी. अपन् पुष्टिमार्गीय जब याके बारेमें सोचेंगे तो ये सोचेंगे के प्रकृतिकु ब्रह्मसम्बन्धकी कॉन्शियसनेस् हे के नहीं? अरे! ये सब कॉन्शियसनेस् वा होलिस्टिक् कॉन्शियसनेस्की एक पार्ट हे. वो इन छोटी-छोटी कॉन्शियसनेस्में घिरवेवाली नहीं हे.

एक छोटीसी बात आपकु बताऊँ के अपनी पृथ्वी सूर्यसु जा दूरीपे हे, उतनी दूरीपे ही प्राणीके जीवनको फार्मूला सर्वाइव् कर सके हे. यदि दूरी थोड़ी भी यहाँ-वहाँ हो जाय, तो प्राणीमात्र खतम हो जायगो. वो दूरी निश्चित हे के जासु पृथ्वी जल भी नहीं जाय और ठंडी भी नहीं पड़ जाय. अब यदि एक ही तापमान रहे, तो व्यक्तिकी तबियत बिगड़ सके हे. याके कारण पृथ्वीकु सर्कल्में घुमावेके बजाय अंडाकारमें घूमतो कर दियो के जासु अलग-अलग ऋतुएं आवे. यामें कितनी प्लानिंग् हे! या प्लानिंग्में जीव सर्वाइव् कर रह्यो हे. अपन् या ॲन्गल्सु सोचें, तो अपन्कु समझ पड़े हे के कुछ कॉन्शियसनेस् तो हे. पृथ्वीकु सौर मंडलके बीचमें रख दियो के जासु कोई बाहरी ग्रहसु उल्का पिंड आवे, तो पहले उन

ग्रहन्‌सु टकरावे क्योंके जीव पृथ्वीपे हे. बाहर बृहस्पतिके जैसे संत्री खड़े कर दिये के जिनको गुरुत्वाकर्षण पृथ्वीसु नौ गुनो हे. बाहरसु कोई उल्का आवे तो वाकु अपनेमें मिलाके वहीं खतम कर देंगे. वाके बाद भी यदि कोई पृथ्वी तक पहोंच जाय, तो तीन सौ मील तक वातावरणकी सुरक्षा भी हे के जासु वो जलके वामें ही राख हो जाय. इतनी प्लानिंग्‌ कोई अन्‌-कॉन्शियस्‌ तो कर नहीं सके हे. वैज्ञानिक भी सोच रहे हें के कुछ न कुछ तो कॉन्शियसनेस्‌ यामें झलक रही हे.

(हर क्रियामें ज्ञान, ज्ञानमें क्रिया छिपी हे)

एक लेवल्‌पे ही नहीं कई लेवल्‌पे झलक रही हे. बताओ क्या क्रिया नहीं झलक रही हे मॅटर्‌में? झलक रही हे और कॉन्शियसनेस्‌ भी झलक रही हे. अब यहां या लेवल्‌पे तुमकु आपत्ति नहीं हे, तो ब्रह्माण्डके लेवल्‌पे क्यों आपत्ति हे के क्रिया हे तो कॉन्शियसनेस्‌ नहीं हो सके और कॉन्शिसयसनेस्‌ हे तो क्रिया नहीं हो सके. या कारणसु ही अपने महाप्रभुजीने ये बात ब्रह्मजिज्ञासाके पहले कही के पहले ये नक्की करो के ब्रह्ममें क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति हे के नहीं? ब्रह्मकु हटा दो तो वो ही बात युनिवर्सपे लागु हो जायगी के युनिवर्समें ज्ञानशक्ति हे के नहीं? जो भी चीजकु वो पैदा कर रह्यो हे, वाके पास वाको प्लान हे के नहीं हे? वा प्लानकु एक्सीक्यूट्‌ करवेके लिए वाके पास सॅट-अप्‌ हे के नहीं? प्रकृतिमें वो सारी बात हें. ये प्रश्न सबसु पहले महाप्रभुजीने खड़ो कियो हे. याके जवाबमें वे कहे हें के यदि ब्रह्ममें क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति साथमें नहीं होती तो अपनमें क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति आ कहांसु रही हे! यदि अपन्‌ वाके प्रोडक्ट्‌ हें तो तो वामेंसे ही आ रही हे और यदि अपन्‌ एलियन्‌ हे तो ये खोजो के अपन्‌ आये कहांसु हे. ये महाप्रभुजी मूल मुद्दा मानके चले हें. याके कारण वे कहे हें के हर क्रियामें ज्ञान छिप्यो भयो हे और

हर ज्ञानमें क्रिया छिपी भयी हे. अपने अहंकारमें अपनी एक सॅल्फ्-अवेयरनेस्‌को ज्ञान छिप्यो भयो हे और उन सॅल्फ्-अवेयरनेस्‌के ज्ञानमें सॅल्फ्-ॲक्टिवीटीके रूट्स हें, जाकु गीतामें भगवान् केह रहे हें **''स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य''** (भग.गीता १८।४६) अपने फन्क्शन् अपनी अवेयरनेस्‌सु डिसाइड् होयगी और अपनी अवेयरनेस् कुछ फंक्शन्‌पे डिपेन्ड् कर रही हे.

(ब्रह्म कर्मरूप और ज्ञानरूप भी)

जैसे ताशके दो पत्तान्‌कु अपन् खड़े करें, तो एक-दूसरेके सहारापे दोनों खड़े हो जायें. अकेले दोनों गिर जायेंगे. ऐसे ही अपने क्रिया और ज्ञान, एक-दूसरेपे टिकके खड़े भये हें. ऐसेमें अपन्‌कु ऐसो दुराग्रह नहीं रखनो चहिये के नश्वर क्या हे और अनश्वर क्या हे. एक बात अपन्‌कु सरलतासु समझनी चहिये के वो अनश्वर हे और नश्वर भी हे. ज्ञानके रूपमें अनश्वर हे और क्रियाके रूपमें नश्वर हे. ये झगड़ा खोटे हे के नश्वरसु अनश्वर नहीं मिल सके. नश्वरसु अनश्वर पैदा हो सके हे और अनश्वरसु नश्वर भी पैदा हो सके. क्योंके ये दोनों पहलु ब्रह्मके ही हे. ये घोषणा महाप्रभुजीने **''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा''**में करी हे. जैसे अपन् कागजपे दो सर्कल बनायें. एक तत्त्व-रूप सर्कल हे और वाके आगे एक क्रियारूप सर्कल हे.

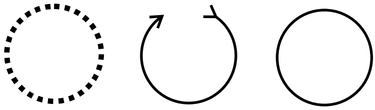

कोई भी फिगर्‌को एक स्टार्टिंग् पॉइन्ट् होवे और एक टर्मिनल् पॉइन्ट् होवे. यदि स्टार्टिंग् और टर्मिनल् में कोई ब्रेक हे, तो वो क्रियारूप सर्कल् हे और यदि मिले भये हें तो वो तत्त्वरूप हो जायगो. अब मानों के तत्त्वरूप सर्कल्‌के कोई एक भागकु मैं मिटा दऊँ, तो वो तत्त्वमें क्रिया प्रकट हो जायगी और टूटी भयी कड़ीन्‌कु

मैं जोड़ दऊँ तो तत्त्व प्रकट हो जायगो. इन छोटे-छोटे डॉट्कु यदि मैं जोड़ दूँ तो तत्त्व बन जायेंगे, क्रिया नहीं दिखेगी. यदि छोटे डॉट् हें तो क्रिया दिखेगी. होवे क्या हे के अपनी बुद्धिकु अपन् ऐसे बंद कर लें के यदि ये पक्ष हे, तो वो हो नहीं सके और यदि वो हे, तो ये नहीं हो सके. आवश्यकता बुद्धिकु खुले रखवेकी हे. यदि अपनूने बुद्धिकु खुली रखी, तो बहोत सारी समस्याके समाधान तुरंत हो जायें. जैसे ही अपन् याकु कोई भी एक पॉइन्ट्पे बंद करें, वा बखत समस्याको मल्टीप्लीकेशन् करे हें. वैज्ञानिकनूने अपनी बुद्धिकु बंद कर रख्यो हे. वे सोचे हें के जो भी चीज अपनकु मिलेगी वाको ॲनेलिसिस् हम कर देंगे. यदि तुम हर चीजको ॲनेलिसिस् करवेको अभिमान रखोगे तो वामें तुमकु ब्रह्म मानें होल् नहीं मिलवेवालो हे.

एक डॉक्टर् साहब व्यस्त रहते हते मरीज़नूकु देखवेमें. उनकी पत्नी घरमें अकेली रोती रहती. कोई मित्रने उनकु कह्यो के ''डॉक्टर् साहब! आप अपने काममें इतने व्यस्त रहो हो और घरमें आपकी पत्नी आंसू बहा रही हे. घरमें कुछ समय दिया करो.'' अब डॉक्टर् साहबने आंसूनूकी ॲनेलिसिस् करी और वाके बाद कही के ''भई! आंसूमें पानी हे, क्षार हे पर दुःख तो मिल्यो नहीं हे, तो बताओ यामें दुःख कहां हे?'' अरे भई! आंसूनूके कॅमिकल् ॲनेलिसिस्में दुःख कहां दिखेगो? आंसूकु आंसू रहवे दोगे तो दुःख दिखेगो. ऐसे कोई भी चीजको ॲनेलिसिस् कर दें, तो वामेंसु तत्त्व गायब हो जाय. या कारणसु उनकी बुद्धि बंद हे. याके विपरीत कोईकी बुद्धि या तरहसु बंद हो जाय के हम कोई भी चीजकु ॲनेलाइज़् करेंगे ही नहीं. जो जैसी हे, वाकु वाही तरहसु ले लेंगे. कई लोग यों समझें के सन्देह करनो पाप हे. सन्देहके बिना यदि कोई बातको निश्चय अपन् कर लें, तो वो कच्चो निश्चय हे. यदि सन्देहको निराकरण करके कोई चीजको निश्चय हो रह्यो हे, तो

वो पक्को निश्चय हे. सन्देह होनो तो अपने निश्चयकु पक्के करवेकी नींव हे. वा सन्देहको अपनेकु गिल्टी फील् क्यों करनो? दूसरे शब्दन्में यों केह सकू के सन्देह करनो निश्चयके बच्चाकु पैदा करवेकी प्रसवपीड़ा हे. यदि तुम प्रसवपीड़ाकु सहन नहीं करनो चाह रहे हो, तो छोटे-छोटे टेंणिया प्रकट होंयगे, जो कोई कामके नहीं रह जायेंगे. यदि हृष्ट-पुष्ट बालककु जनम देनो हे, तो प्रसवपीड़ाकु सहन करनो पड़ेगो. या बुद्धिमें कोई ठोस निर्णय लेनो हे तो कुछ तो सन्देह करनो पड़ेगो. जब प्रसवपीड़ा ही नहीं भोगी तो वा निश्चयकी कीमत ही आपकु नज़र नहीं आयगी. पड्यो भयो पैसा जाकु मिल जाय वाकु पैसाकी कीमत नज़र नहीं आवे हे. यासु सन्देह कहाँ नहीं करनो याको विवेक अपनूकु आनो चहिये. पर जब कोई बात समझनी हे, तो सन्देह करनो ही चहिये. या तरहसु भी अपनी बुद्धिकु बंद नहीं करनो चहिये.

पंचतंत्रमें मूर्खन्की एक कहानी आवे हे. एक गुरुजीने मूर्खनूकु शास्त्र रटा दियो और कही के या शास्त्रके हिसाबसु तुम जीयो. सन्देह मत करियो. घर जावेके लिए वे मित्र एक साथ निकलें, तो बीचमें चार रस्ता आ गये. उनने विचार कियो "महाजनो ये गतः ते पन्थाः" जहां बनिया जातो होय वहाँ जाओ. 'महाजन' शब्दको एक अर्थ होवे महापुरुष और दूसरो होवे हे बनिया. वो बनियाके पीछे-पीछे चल दिये. थोड़ी देर बाद वहांसु एक ऊँट निकल्यो. वाकु देखके एक विद्यार्थीने कही के "गुरुजीने पढ़ायो हतो के धर्मकी बहोत त्वरित गति हे. हो न हो ये ऊँट धर्म ही हे, तो याके पीछे चलो." सब लपकके वाके पैरन्पे लटक गये. क्योंके सन्देह तो करनो नहीं हे, सिद्धान्त तो ये ही हे. अब वा ऊँटके समझ नहीं आयो के वाके पैरसु वे क्यों लटक रहे हें. वाने दो-चार बार पैर फटकारे, तो दो एक जने तालाबमें जाके गिरे, तो बाहर खड़ेन्ने कही के "लगे हे अपनो साथी डूब रह्यो हे." तब दूसरेने

कही ''सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडित:'' यदि सब नाश हो रह्यो हे, तो आधो बचा लेनो चहिये. बस वाकी गर्दन काटके रख ली. वचनपे सन्देह नहीं करनो. अरे भई! सन्देह नहीं करो तो ऐसे-ऐसे उपद्रव होंयगे. हर चीजको स्वत: अप्रामाण्य अथवा हर चीजको स्वत: प्रामाण्य नहीं होवे. कुछ सन्देह भी करनो चहिये. बुद्धिकु हर बखत खुलो रखनो पड़ेगो. ॲनेलिसिस् करवेके लिये भी और सिन्थेसिस् करवेके लिये भी. वा ॲनेलिसिस् और सिन्थेसिस् की प्रक्रियासु महाप्रभुजीने ये निश्चय कियो के ब्रह्म कर्मरूप भी हे और ज्ञानरूप भी हे. देखो, नीचे या फिगरकी तरफ. यामें क्या दिख रह्यो हे. यदि आप कहो के सूंड दिख रही हे गणेशजीकी तो आप याकी सिंथेसिस् कर रहे हो और यदि आपकु ये पान दिख रह्यो हे तो आप याकी एनालिसिस् कर रहे हो.

क्योंके आपने होलके रूपमें या फिगरकु देख्यो हे. क्या कोई ये इन्कार कर सको के ये पान नहीं हे अथवा गणेश नहीं हे. जो व्यक्ति पान देख रह्यो हे वो ये जिद्द पकड़के बैठ जाय के नहीं ये पान ही हे और कुछ नहीं, तो आप वाकु पूर्ण रूपसु समझे नहीं. और जो व्यक्ति यों कहे के ये गणेशजी ही हे पान नहीं हो सके, वो भी याकु पूर्ण रूपसु नहीं समझ्यो. ये भी समझनो पड़ेगो के पान और गणेश कभी एक हो नहीं सके. पान पान हे और गणेश गणेश हे. पर यदि बुद्धिकु खुली रखें तो जापे अपनी निगाह पड़ी और जापे अपनी निगाह नहीं पड़ी, उन दोनों बातनपे अपनी बुद्धिकु खुली रखनी चहिये. अब एक जिदकु तुम पकड़के बैठ जाओ के नहीं वो क्रियारूप हे के नहीं ज्ञानरूप हे.

अरे ज्ञानकु भी देखो और क्रियाकु भी देखो. वो तो दोनों ही हे. समझवेकी ये छोटी-सी बात हे पर अपनी दृष्टि जा बातपे पड़े, वाकु ही अपन् सत्य माने हें. जो बात मैं आपकु समझानो चाह रह्यो हतो वो ये हे के अपने यहां गुणसु द्रव्य पैदा होवे, द्रव्यसु गुण पैदा नहीं हो रह्यो हे. या तरहसु अपनी बुद्धिकु अपनूकु खुलो रखनो चहिये. ये खुली बुद्धि अपनूकु प्रकृतिसु मिली हे पर अपन् वाकु अपने जड़ाग्रहसु बंद करे ले हें. जब भी अपन् ऐसो सोचे, तो तत्त्वकु अपन् पूरो नहीं समझ पा रहे हें. या बॅक्ग्राउन्ड्में महाप्रभुजीने अपनूकु एक बात समझायी के अपने अहंकारकु न तो खतम करनो हे और न वाकु पॅम्पर् करनो हे. वाकु अनुपातमें रखवेके लिए सबसु पहले महाप्रभुजीने अष्टाक्षरकी दीक्षा बताई के जासु अपनो अहंकार अनुपातमें आ जाय.

(अहंकारके शोधनकी प्रक्रिया)

जिनकु ज़ॅन् ताओको सिद्धान्त पता हे वो या बातकु अच्छी तरहसु समझ पायेंगे के अहंकारकु माइल्ड् करवेमें ममकारकु रख दियो. "**श्रीकृष्णः शरणं मम**" अहंकारकु झुका दियो और ममकारकु पॅम्पर् कियो. देखो ये ताओ हे. सफेदमें कालो बिन्दु हे और काले बॅक्ग्राउन्ड्पे सफेद बिन्दु हे.

ताओ सिद्धान्त

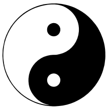

वाको साइकल् हे ऐसे ही शरणागतिमें मम डाल रख्यो हे जोके समर्पणको सिम्बॉल् हे. और ममर्में अहं डाल रख्यो हे जो शरणागतिको अॅलीमॅन्ट् हे, ताओके सिद्धान्तकी तरह. ताओको सिद्धान्त कहे हे के कालो यालिए कालो हे क्योंके वामें काले रंगकी अधिकता

हे. पर वामें सफेद नहीं हो सके, ऐसो हे नहीं. याही तरह सफेद याही लिए सफेद हे क्योंके वामें अधिकता सफेद रंगकी हे. पर वामें कालो भी हो सके हे. बस इतनो दिमाग खुलो रहे तो बात बन गयी. जब या विषममें दिमाग बंद हो जाय, तो ताओके बजाय ताव आ जाय हे. या तरहसु ही हर क्रियामें कुछ ज्ञान छिप्यो भयो हे और हर ज्ञानमें कुछ क्रिया छिपी भयी हे. हर अहंकारकु डाइल्युट्र करवेमें ममकारकु छिपाके रख्यो हे और हर ममकारकु डाइल्युट्र करवेमें अहंकारकु छिपाके रख्यो हे. ब्रह्मसम्बन्धके आद्य-अन्तमें दोनों जगह 'अहं' जोड़ दियो हे. समस्या वहां अहंकी हे ही नहीं. समस्या वहां ममकी हे, 'समर्पयामि'की हे. जो मोसु संबंधित हे वाकु समर्पित कियो जा रह्यो हे. वहां एक रिमार्केबल् बात कही गयी हे "**आत्मना सह समर्पयामि**" समर्पणकी क्रियामें आत्मा मुख्य नहीं हे "**सहयुक्ते अप्रधाने तृतीया**" (पाणि.सू.२।३।१९) जैसे लक्ष्मणके साथ राम जा रह्यो हे, तो जावेकी क्रियामें मुख्य राम हे, लक्ष्मण गौण हो गयो. ऐसे ही आत्माके साथ समर्पण कर रह्यो हूं. यहां आत्मा गौण हो गयी. जाको समर्पण कर रहे हें, वो मुख्य हो गयो. दारा आगार वित्त वगैरह ममके विषय हें. खूबसूरतीसु वामें सारो ताओको सिद्धान्त आयो भयो हे. जब अहंको समर्पण कर रहे हें वामें मम डाल दियो.

(शरणागति और समर्पण सिद्धसाधन हे)

इन सबन्को हेतु ये के अपन् अपनी बुद्धिकु खुली रखें. यासु अपनी मूल दो दीक्षा हे, शरणागति और समर्पण की, ये अहंकार और ममकार कु डाइल्यूट्र करवेकी प्रक्रिया हे और ये सिद्ध-साधन हे, साध्य-साधन नहीं हे. क्योंके ये तो अपने पास हे ही. अपन् अपने अहंकारकु भगवान्के सामने समर्पण करें के न करें; अपनो अहंकार और भगवान् के स्वरूपकु कॉम्पेयर् करें, तो अपनो अहंकार सरेंडर् होयगो ही. जैसे अपने अंग अपने अहंके आगे सरेंडर् हे.

मैं इच्छा करूं के हाथ नीचे जाय, तो नीचे जायगो. मैं इच्छा करूं के हाथ ऊपर उठे, तो ऊपर उठेगो. मेरो हाथ मेरे अहंकारकु सरेंडर् हे. ऐसे प्रत्येक चेतना पारमात्मिक चेतनाकु सरेंडर् तो हे ही. यामें सिद्ध क्या कर सको! जहां-तक समर्पणकी बात हे तो जो भी चीज हे वो ब्रह्मके सच्चिदानन्दको पार्ट हे. पार्ट तो होल्कु समर्पित हे ही. ये हाथ मेरे शरीरकु समर्पित हे ही. मेरो हाथ ऑफ् द् बॉडी और बाई द् बॉडी हे. शरीरको हर अंग शरीरकु समर्पित हे. ये तो सिद्ध हे ही.

(शरणागति और समर्पण को स्वरूप)

अब ये सवाल आयो के शरणागति और समर्पण को स्वरूप क्या? शरणागतिमें समर्पणके बीज रहे भये हे और समर्पणमें शरणागतिके बीज रहे भये हे. याके लिए ही अपने यहां ऐसो नियम हे के जब ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा दे, तो एक बखत शरणमन्त्र पाछो बुलावे हे. दो कंठी यालिए दे हें के एक शरणागतिकी कंठी और एक समर्पणकी कंठी. सचमुच दो कंठी पहरनी पड़े. आज-कल वो नियम नहीं हे पर पुराने जमानामें ये हतो के शादीके पहले ब्राह्मण एक जनेऊ पहरे और शादीके बाद दो जनेऊ पहरे. मानें पत्नीके प्रति शरणागति भी और समर्पण भी. पत्नीके अर्थमें शरणागति केहवेमें शरम आती होय तो वाकु कुछ और शब्द दे दो. पर तथ्य इतनो हे के अपन् पहले ब्रह्मचर्यावस्थामें होवेके अहसासकु माइल्ड् करें. और गृहस्थ होवेके बाद अपने होवेके अलावा दूसरेके होवेको भी अहसास होवे. वाकी दूसरी जनेऊ हे. ये ही बात कंठीमें भी हे के अब मैं मेरो नहीं हुं, भगवान्को हूं. भगवान्के सम्बन्धमें जो बात दासपनेकी कही जा रही हे, वो ही बात पत्नीके सम्बन्धमें पति होके, माँके सम्बन्धमें संतति केहके कही जायगी. समर्पणमें मुद्दा इतनो ही हे के अपन् सिर्फ अपने नहीं हें, और कोईके भी हें. शरणागतिमें अहसास इतनो हे के मेरो रक्षक मैं नहीं हूं, मेरो रक्षक

कोई और हे. समर्पणमें मैं कोई औरके लिये हूं, ये माद्दा माता-पितामें पति-पत्नीमें गुरु-शिष्य सभीमें हे. कोई गुरु सोचे के मैं गुरु हूं. अरे! गुरु हे तो शिष्यके लिये हे. कोई शिष्य सोचे के मैं अपने लिए हूं, अरे भई, शिष्य होयगो तो गुरुके लिए ही तो होयगो. कोई पत्नी ऐसे सोचे के मैं मेरे लिए ही हूं, तो वो पत्नी नहीं होके स्त्री हो सके. पत्नी होवेको अर्थ हे के वो पतिके लिए हे. वा तरहसु ही पति भी पति तब ही हे के जब वो पत्नीके लिए होय, अन्यथा वो पुरुष हे. समर्पणको मूल भाव क्या हे? भगवान्‌के सम्बन्धमें कहें तो शब्द वा तरहसु आ जायें के मैं दास हूं, तू स्वामी हे. ये मूलभाव समर्पणको नहीं हे. समर्पणको मूल मुद्दा हे तदाश्रय और तदीयत्व को. "**तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित् समाचरेत्**" (बा.बो.१९) तदीयको रूप कुछ भी हो सके. माता-पिता-संततिको भाव, स्वामी-सेवकको भाव, पति-पत्नीको भाव, गुरु-शिष्यको भाव, मालिक-नौकरको भाव. कुत्ता और मालिक में भी वो ही भाव हे. जब भी कोई कुत्ता पाले तो वाकु लगे के मैं कुत्ताको हूं और कुत्ताकु भी लगे के मैं मालिकको हूं. वाको कोई निश्चित रूप नहीं हे. तदीयता वाको मुख्य रूप हे. अपन् कोईके हें. अपन् एक युनिट् हें. अपनो ये भाव के मेरी ये युनिट् केवल मेरे लिये नहीं हे, मैं जाकी युनिट् हूं वा होल्‌के लिए हूं. जैसे पंखामें एक डंडा हे, तीन पंखुड़ी हें, अब पंखाको डंडा या पंखुड़ी स्वयंके लिए हे के पंखाके लिए हे? जो भी जाको पार्ट हे, वो होल्‌के लिए हे. इतनी सी सॅन्स् आ जाय के मैं और वो मिलके एक होल् बना रहे हें, एक सिस्टम् बना रहे हें और जब सिस्टम् बन रही हे, तो अपन् एक-दूसरेके लिए हें, वो समर्पणको भाव हे. यदि वो ईश्वर और जीव के सम्बन्धमें हे, तो भक्ति और भगवान् को रूप ले लेगो. माता-पिता और संतति के सम्बन्धमें हे, तो वात्सल्यको भाव ले लेगो. गुरु-शिष्य हे, तो उपदेशको भाव ले लेगो. मूलमें समर्पणको भाव ये हे के अपन् अपने लिए नहीं होके

कोईके लिए हें. जैसे अपन् राष्ट्रमें पैदा भये हें, तो राष्ट्रके लिए हें. मछली पानीमें पैदा भयी, तो यदि मछली यों समझे के पानी मेरे लिए हे, तो पानी गंदो हो जायगो. जब तुम यों समझोगे के पानी मेरे लिए हे और मैं पानीके लिए हूँ, तो दोनों एक-दूसरेकी सम्भाल रखेंगे.

पाश्चात्य संस्कृतिकी सबसु बड़ी खामी ये रही हे के उनकु यहोवाने भी और अल्लाहने भी, क्यों ऐसे केह दी के सारी दुनिया तुम्हारे लिए हे. जब उनकु ये समझ आयो तो या दुनियाकु एक्सप्लोइट् कर-करके उनने बिगाड़ करनो शुरु कर दियो. सारे जंगल काट ड़ाले, जानवरनकु खा गये. वो यालिए खा गये क्योंके वे समझे हें के जानवर तो अपने लिए हे. बात सच हो सके पर शेर भी तो तुमकु खा रह्यो हे तो तुम भी तो शेरके लिए हो. इतनी बात समझ जाओ तो बात सम्भल जायगी. पर जब तुम समझ रहे हो के हमारे ही खावेके लिए हे, तो बात बिगड़ जायगी. अपन् यों समझे के पेड़ अपने लिए हे, अपन् पेड़के लिए नहीं हे, तो बात बिगड़ जायगी. क्योंके पेड़ ऑक्सीजन् छोड़ रह्यो हे जापे अपन् निर्भर हे और अपन् कार्बन् छोड़ रहे हें जापे पेड़ निर्भर हे, तो दोनों एक-दूसरेके लिए हें.

या बातको अहसास करके महाप्रभुजीने भक्तिकी नींव गढ़ी हे. अपन् भगवान्के लिए हे और भगवान् अपने लिए हे. या बातकु केहवेके लिए महाप्रभुजीने एक खुलासा ये कियो के हर भोक्ताके भीतर एक भोग्यभाव छिप्यो भयो हे और हर भोग्यके भीतर एक भोक्ताको भाव छिप्यो भयो हे. भोक्ताको भाव मानें ये मेरे लिये हे. भोग्यभाव मानें मैं वाके लिए हूँ. वो ही ताओको सिद्धान्त हे. ये अपने अहंकारके और ममकारके शोधनकी प्रक्रिया महाप्रभुजीने बतायी.

(सेवामें सिद्ध-साध्यसाधन)

या प्रक्रियाकु बताके याके बाद अगले स्टेप्में महाप्रभुजी सेवा बता रहे हें. वा सेवामें भी यदि तुम देखोगे तो 'चित्तकी भगवत्प्रवणता' साध्य-साधन हे और 'तत्सिद्धयै तनुवित्तजा' सिद्ध-साधन हे. पहलो भावरूप हे और दूसरो क्रियारूप हे. अपने तनुवित्तसु अपने चित्तकु भगवान्में चौंटानो हे. यदि जगत्के सब नाम-रूप-कर्म भगवान्के ही नाम-रूप-कर्म हें, तो तुम्हारो जा नाम, जा रूप, जा कर्म में चित्त चोंट्यो भयो हे तो भगवान्में ही तो चोंट्यो भयो हे. चित्त तो चोंट्यो ही भयो हे, पर जा जगह वो चित्त चोंट्यो भयो हे वामें अपन्की समझ ही तो सुधारनी हे के ये नाम-रूप-कर्म भगवान्को हे. यदि ये समझ आ गयी, तो वो भक्ति हो गयी और यदि वो समझ डॅवलप् नहीं भयी और चित्त केवल उन नाम-रूपमें ही उलझ गयो. तो तुम चाहे ठाकुरजीकी सेवा कर रहे हो और ठाकुरजीके नाम-रूपमें ही चित्त उलझ्यो रह्यो, मानें मन लग्यो रह्यो, क्रिया होती रही और चित्त नहीं चोंट्यो, तो वार्तामें आवे हे के सेवा कर रहे हते पर कोईने पूछी के "घरमें हे?" तो वाने कही के "मोचीके यहां जूता सिवावे गये हे." फरक केवल इतनो पड़्यो के चित्त सेवामें नहीं, जूतामें चोंट्यो भयो हे. चित्त तो अपनो चोंट्यो भयो ही हे. वहां नहीं तो यहां, यहां नहीं तो वहां.

(ज्ञानमार्गमें सिद्ध-साध्यसाधन)

चित्त तो चोंट्यो भयो ही हे पर यदि ये समझ आ जाय के जाको ये नाम हे, जाको ये रूप हे, जाको ये कर्म हे वो परब्रह्म हे. वो चित्त साधनसु नहीं चोंटेगो, समझसु ही चोंटेगो. समझकु इतनी खुली कर लो, तो ये सिद्ध-साधन हे. अपनो ज्ञानमार्ग नहीं हे, यालिए ज्ञान नहीं आ रह्यो हे. जहां ज्ञानमार्ग हे, वहां ये ही प्रक्रिया ज्ञानमें आ रही हे. अपन्कु जगत्को ज्ञान हे, तो ब्रह्मको ज्ञान ही हे यदि ब्रह्म जगद्रूप बन्यो हे तो. पर जगत्को ब्रह्म

तरीके ज्ञान नहीं हे, ब्रह्मको जगत् तरीके ज्ञान हे. तब शास्त्र कहे हे के चलो थोड़ी क्रिया करो. जो मैंनें आपकु बताई हती के अॅक्शन्सु रियलाइज़ेशन् होयगो. श्रवणकी क्रिया करो, मननकी क्रिया करो, निदिध्यासनकी क्रिया करो, तुम्हारो या अॅक्शन्सु रियलाइज़ेशन् हो जायगो.

(नवधाभक्तिमें सिद्ध-साध्यसाधन)

भक्ति क्या केह रही हे? भक्तिकी डिमांड श्रवण मनन और निदिध्यासन सु थोड़ी अधिक हे. वामें श्रवण कीर्तन स्मरण करो. पादसेवन अर्चन और वंदन करो. दास्य सख्य और आत्मनिवेदन करो. अब यामें देखें तो श्रवण कीर्तन स्मरण क्रिया हे. करोगे तो होयगी, नहीं करोगे तो नहीं होयगी. अर्चन पाद-सेवन और वंदन भी क्रिया हे. जैसे अपने घरमें कोई मेहमान आयो और अपन् वाकु वंदन मन ही मनमें करें तो वाकु बुरी लगेगी के नहीं? बाहर प्रकट करोगे तो ही तो वो वंदन हे.

जयपुरमें एक कन्हैयालाल हतो. महापुरुष हतो. इतनो मोटो के कारकी स्टेरींग् और सीट् के बीचमें समावे नहीं. कार चलावेको शौकीन बहोत. शौकके कारण साइडवाली सीटपे बैठके कार चलातो. मैं जयपुर गयो तो मोसु मिलवे आयो. मैं पहली मंजिलपे ठहर्यो हतो, तो सीढी चढ़के आयो. बहोत हांफ रह्यो हतो तो मैंनें पूछी के "आपकु बहोत तकलीफ हुयी सीढी चढ़वेमें?" बोले "महाराज! ऐसे क्यों समझते हो के तकलीफ हुयी. क्या मैं फुटबॉल् खेलके दिखाऊँ?" अब फुटबॉल् तो खुद हते. मोसु बोले "आपकु अहंकार हो गया लगता है के आप ही कसरत करते हो. मैं भी कसरत करता हूं." मैं भी आश्चर्यचकित रेह गयो के कसरतके बाद भी इतनो मोटो शरीर! मैंनें पूछी के "आप क्या कसरत करते हो?" तो उनने अपनी अंगुली हिलाके दिखा दी के "देखो, ये कसरत.

बोलो हे के नहीं ये कसरत.'' बस समझमें आ गयो के पेट इतनो मोटो क्यों हे. या कसरतसु पेट कैसे घटेगो! या बातकु समझो के कुछ तो कसरत करनी पड़ेगी, अर्चनकी वंदनकी पादसेवनकी. कुछ कसरत करोगे तो ये अहंता-ममताकी तोंद घटेगी, नहीं तो वो तोंद बढ़ी भई रहेगी. ये सीधोसो सिद्धान्त हे और जब दास्य सख्य आत्मनिवेदन अपन्ने कियो, तो ममताको अनुपात भी सही ठिकाने आ जायगो. अपन् क्षुद्रके दास नहीं हे, वाके दास हे. अपने जैसे कोई व्यक्तिके सखा नहीं हे, अपन् वाके सखा हे. अपन्ने कोई अपने जैसे व्यक्तिकु आत्मनिवेदन नहीं कियो हे, अपन् वाके सामने आत्मनिवेदन कर रहे हें. देखो अहंता भी सिद्ध हे, ममता भी सिद्ध हे पर वो ही अहंता-ममता अपनी नवधा भक्तिके माध्यमसु वासु जुड़ जा रही हे. याके कारण वो सिद्ध-साधन हो गयो. पाछी क्रिया भी वहां प्रकट हो रही हे.

(अहंता-ममताको स्वास्थ्य भक्तिके कारण)

भक्तिमें श्रवण मनन निदिध्यासन नहीं होके श्रवण कीर्तन स्मरण अर्चन वन्दन पादसेवन दास्य सख्य आत्मनिवेदन हो जा रह्यो हे. क्योंके स्नेहको रूप रूखे चिन्तन करवेको नहीं हे. स्नेहको रूप ऐसो हे के जासु अपन्कु स्नेह हो जाय, वाके बारेमें अपन्कु बोलवेकी इच्छा होवे. जो गाना अच्छो लगे वाकु गुनगुनावेकी इच्छा होवे. जो कहानी अच्छी लगे वाकु दूसरेके साथ शेयर् करवेकी इच्छा होवे. जो चीज आदरणीय लग रही हे, वाके चरण छूवेकी इच्छा होवे, वाकु वंदन करवेकी, वाकु पूजवेकी इच्छा होवे. स्नेहकी ये सब बॉडी-लॅन्वेज् हे. वा भक्तिकु अपनी बॉडी-लॅन्वेज्की तरह लो तो सारी बात समझमें आ जायगी. वो भगवान्के सन्दर्भमें आ रही हें. पर कोईके प्रति भी अपनो स्नेह या रीतिसु मानें श्रवण कीर्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वंदन सख्य दास्य आत्मनिवेदन सु ही तो कर रहे हें. कहीं भी अपनो स्नेहसम्बन्ध यदि बढ़ानो हे, तो नवधा

भक्ति ही एक वाको उपाय हे. वा डॉक्टर्‌की तरह या बातको मनन करनो के इन आंसूमें कितने कॅमिकल्‌ अॅलीमॅन्ट्‌ हे और फिर ये कन्क्लूज़न्‌ लानोके यामें दुःख तो हे ही नहीं, यासु दुःख मिथ्या हे, श्रीशंकराचार्यकी तरह. पर दुःख मिथ्या नहीं हे, वो सत्य हे. जाकु आंसू आ रहे हे, वाकु पता पड़े के आंसूमें कितनो सत्य प्रकट हो रह्यो हे! या बातकु समझो ये सारी सिद्ध-साधना हें और ये अहंता-ममताकु घटावेके साधन हे. इन घटाई भयी अहंता-ममतासु जब अपन्‌ भक्ति करेंगे तो अपनी सेवा चाहे क्रियात्मिका होय पर अपनी भक्ति भावात्मिका हो जायगी. यदि भक्ति भावात्मिका हो गयी तो शरणागति समर्पण सेवा और भक्ति इन चारको प्रोग्राम्‌ अपनी अहंता-ममताकु बॅलेन्स्‌ रखेगो. न तो बहोत अॅनेलेटिक्‌ करेगो और न ओवर्‌ सिन्थेटिक्‌ कर देगो.

या बातकु समझो के सन्देह नहीं करनो और सन्देह अत्यधिक करनो, दोनों ठीक नहीं हे. एक बात और समझो के जा चीजसु अपनकु प्यार होय वाही चीजपे सन्देह अपनकु होवे. जासु प्यार नहीं हे, वापे सन्देहकी कोई गुंजाइश ही नहीं हे. पत्नी कोईसु बात करे, तो पतिकु सन्देह होवे. पति कहीं घूम रह्यो हे, तो पत्नीकु सन्देह होवे. वो या कारणसु के स्नेह हे. सन्देह करनो बहोत अच्छी चीज हे. याकु बुरो मत मानो. सन्देह हो रह्यो हे, तो वो या बातको प्रमाण हे के वाके साथ आपको स्नेह हे. जा दिन सन्देह टूट गयो वा दिन स्नेह नहीं रह जायगो. जो करनो हे सो करो. भगवान्‌के जगत्‌में सन्देहको बहोत बड़ो रोल्‌ हे और अच्छो स्नेह और अच्छो निश्चय सन्देहकी अपेक्षा तो रखे ही हे. सन्देहमें कभी गिल्ट्‌ फील्‌ नहीं करनो चहिये. बस इतनी केयर्‌ रखनी के सन्देहकु वाके मुकाम तक पहोंचानो चाहिए. सन्देहकु सन्देह तक नहीं छोड़के वाकु निश्चय तक पहोंचानो चहिये. याके साथ एक बात और समझो के निश्चयपे भी कभी अटक नहीं जानो चहिये. जब भी निश्चय

हो जाय और वामें कोई सन्देह हो रह्यो हे तो सन्देह करनो ही चहिये. कहीं भी अटकनो नहीं चहिये क्योंके जीवनको नाम एक प्रवाह हे वा प्रवाहमें बहते रेहनो चहिये. जहां कहीं भी अपन् अटक जायें, तो वहां पानी खड़ो रेह जाय और आखिरमें वो सड़ जाय. बहतो पानी निर्मल रहे हे तो सन्देहसु निश्चय में, निश्चयसु सन्देहमें प्रवाहित होते रेहनो चहिये. वामें घबरावेकी कोई बात नहीं हे. या प्रक्रियाकु अपन् अपनावें तो अपनी अहंता-ममता सोबर् होवे. या प्रक्रियाकु नहीं अपनावेके कारण राणाव्यासकु क्या तकलीफ होती हती, वो आप देखो.

[१२]

(अहंकारके विभिन्न प्रसंग राणाव्यासकी वार्तामें)

प्रसंग.१ **"सो माता-पिता बहोत वृद्ध भये. आठ बरस पाछे राणाव्यास घर आये, तो माता-पिताने कही के बेटा तू कहां निकसि गयो हतो. घर रहतो तो तेरो ब्याह करते. अपनी ज्ञातिकी रीति चलो, तो ब्याह होय."** आज-कल तो गूगल् गुरूसु ब्याह हो रहे हे पर पुराने जमानामें पुरोहित ब्याह कराते हतें और वो ज्ञातिमें ही होते हतें. माता-पिता केह रहे हें के अपनी ज्ञातिके नियमनुसु चलो, तो ज्ञातिकी कोई लड़की मिल जायगी. **"तब राणाव्यासने कही के हों तो सदा ब्रह्मचारी रहूँगो."** मैं जा जातिमें पैदा भयो हूँ वा जातिकी रीतिसु नहीं चलूंगो. जातिके सन्दर्भमें अतदीयता ये अहंकार हे. "जाति जो समझती होय सो समझे. मैं जातिके लिए नहीं हूँ. मैं तो ब्रह्मचारी हूँ." ये उनको पहलो अहंकार हतो. "मैं तो इन्द्रियजीत हूँ." क्या ऐसो हे के जो शादी कर रह्यो हे वो इन्द्रियजीत नहीं हे. शादी करवेवालेनुकु तो इतनी इन्द्रिय जीतनी पड़े हें के जाको ठिकानो नहीं हे. पति-पत्नी दोनोंनुकु एक-दूसरेकी जिम्मेदारी उठानी पड़े हे. विना इन्द्रिय जीते वो क्या जिम्मेदारी उठा पायेंगे? अफगानिस्तानमें तालिबान आवेके बाद उनने जमीनमें जगह-जगह बम छिपाके रखे. पहले वहां नियम ऐसो हतो के पति आगे चलतो और पत्नी पीछे चलती क्योंके वो पत्नी हे. तालिबानके आवेके बाद पति केहवे लगे के पत्नीकु आगे चलनो चहिये क्योंके रस्तामें बम बिछे भये हे. जो आगे चले वो उड़ जाय. ये अतदीयताको भान हे. अच्छी बात क्या होती के दोनों हाथमें हाथ डालके चलते के जीनो साथ हे और मरनो भी साथ हे. तब तो तदीयता भयी. सो या तरह राणाव्यासकु इन्द्रियजीत होवेको अहंकार हतो. अब देखो अहंकारकी विकृति कैसी हे.

प्रसंग.२ **"तब माता-पिता चुप होय रहे. पाछी माता-पिताकी**

देह छूटी.'' माता-पिताकी देह छूटवेपे संस्कार करके प्रसन्न हो गये. क्योंके माता-पिताको अंकुश गयो और उनकी संपत्ति हाथ आ गयी. मेरे साथ एक लड़की पढ़ती हती. वाने आके एक दिन मोकु कह्यो के ''महाराज! मेरी छोटी बहनको पुष्टिमार्गने जीवन बिगाड़ दियो.'' मैनें पूछी के ''कैसे?'' वाने कही के ''आप ही वासु पूछो. मैं वाकु आपके पास लाऊँ.'' एक दिन वो अपनी छोटी बहन और वाके पति कु लेके आ गयी. मैनें पूछी ''क्या बात हे?'' तो छोटी बहनने कही ''ये भंगी कोई अपरस पाले ही नहीं हे. मोकु क्या याके साथ रहके अनाचार करनो चहिये?'' देखो पतिकु भंगी केह रही हे. मेरे तो या बातपे होश-हवास गायब हो गये के पतिकु फेस्पे ही भंगी केह रही हे. वो पति केह रह्यो हतो के ''मैं जा चीजकु हाथ लगाऊँ वाकु खासा करे. फ्रिजकु कपड़ाकी ड्रॉअरकु, सबकु खासा करे.'' मैनें कही के खासा करवेको सिद्धान्त तो हे पुष्टिमार्गमें पर इतनो भी नहीं हे. मैनें वा लड़कीसु पूछी ''क्या तुम ठाकुरजीकी सेवा करो हो.'' वाने कही ''या भंगियाके होते ठाकुरजीकी सेवा हो कैसे सके हे?'' मेरो तो दिमाग अब चलनो बंद हो गयो. मैनें पूछी ''फिर इतनी अपरस क्यों पालो हो?'' वाने कही ''भीतपे ठाकुरजीको चित्र टांग रख्यो हे, वाकु फूल माला धरा दऊँ और हाथ जोड़ दऊँ.'' ठाकुरजीके चित्रकु फूलकी माला धरावेके लिए इतनी अपरस पालनी और पतिकु 'भंगिया' केहनो बहोत अत्याचार हे. मैनें उनसु कही के दोनों शांतिसु मेरे पास अलग-अलग आओ, तो मैं शांतिसु समझूंगो के लफड़ा क्या हे. सबसु पहले छोटी बहन आयी. वो पुष्टिमार्गीय वैष्णव हती ही नहीं. वाके पड़ौसमें कोई पुष्टिमार्गीय वैष्णव रहतो हतो, वासु अपरस तो सीख गयी, सेवा नहीं सीखी. मैनें वाकु कही ''तु या भंगियाके साथ रेह क्यों रही हे. तलाक ले ले.'' वो तो बहोत खुश हो गयी राणाव्यासकी तरह. बोली, ''हां, हां महाराज! आप तलाक दिवा दो. एक फ्लेट्‌ और महीनाको खर्चा दिवा दो तो वाकु अभी

तलाक दे दऊं." मैनें कही "पर तू वा भंगियाको पैसा कैसे लेगी?" बोली "तो फिर कहाँ जाऊं." मैनें वासु कही के "ये ही तो लाचारी हे. जब तू कहीं जा नहीं सके हे, तो वाकु 'भंगिया' केहके वाके साथ झगड़ा करके क्यों रेह रही हे. वाकु पति मानके शांतिसु जी न!" अन्तमें वाके पतिने ही वाकु तलाक दे दियो. वो कहींकी नहीं रही. ऐसी ट्रेजेडी भयी. अपन् समझ सके हें के जा बखत अपनी बुद्धिकु अपन् या तरहसु बंद करे हें, वा बखत अपनी तकलीफकु अपन् बुला रहे हें, या अहंकारके कारण. अपरस तो बहोत सारे लोग पाल रहे हें पर इतनी सीमा तक अपने अहंकारकु बढ़ा लेनो के पतिकु भंगिया केहनो, वा अहंकारके अनुपातकु बिगाड़ रह्यो हे. वो नाशको हेतु होवे हे.

प्रसंग.३ वो ही बात राणाव्यासकु महाप्रभुजीने कही के "**शास्त्रार्थ तो जीत्यो सो अच्छो कियो पर जीतवेको अहंकार मति करियो जा वस्तुको अहंकार कर्यो सोई वस्तुको नास होइगो.**" भक्ति करनो, ज्ञान करनो, कर्म करनो कोई नाशको हेतु नहीं हे पर जा बखत अपन् वा कर्म ज्ञान भक्ति को अहंकार करें, वा बखत वो अपने नाशको हेतु होवे हे. वो ही इनकी स्थिति हे के माता-पिताके मरवेपे दुःखी होवेके बजाय खुश हो गये. इतने ईगो-सॅन्ट्रिक् हते. प्रसन्न भये पाछे पैसा क्यों ले लियो? अभी तक तो इन्द्रियजीत हते, अब धनिक और हो गये. धनी होवेको अहंकार इतनो बढ़्यो के गाममें कोईसु बोलते ही नहीं. सारे गामकु दरिद्र और मूर्ख मानते. एकके बाद एक, उनको अधःपतन कैसे भयो! कोई आदमी यदि कोईसु बोले नहीं तो फिर चले कैसे! बोले बिना तो कोई काम चल नहीं सके. तो बोलवेके लिए जानो हे काशी "मेरे लायक तो काशीके विद्वान होंयगे" काशी शास्त्रार्थ करवे गये. वहां पहले राउन्ड्में ही हार गये. हार गये तो आत्महत्या करवे गये. आत्महत्या करवेमें भी शरम आ रही हे के दिनके उजालामें करेंगे तो लोग पहचान

जायेंगे. जब कोई नहीं देखें तो आत्महत्या करे. अब मरवेवालेकु ये चिन्ता क्यों हो रही हे के कोई अपनी निंदा करेगो के स्तुति करेगो! ये सब चिन्ता अहंकारकी विकृतिके कारण हो रही हे. वा समय महाप्रभुजीके सेवकने महाप्रभुजीसु पूछ्यो के ''आत्महत्या करवेको फल क्या?'' वा समय लोगनकु भ्रांति हो गयी हती के गंगा सबको उद्धार करे. तो वासु लोगनूने एक सिद्धान्त वार्मेसु काढ्यो के जब भी आत्महत्या करनी होय, तो गंगामें जाके करो. अरे भई! गंगा आत्मघातीको उद्धार नहीं करे. गंगा तो तुमकु जीवेकी केह रही हे. यदि तुम नेंचरली वहां मर रहे हो, तो ही गंगा तुम्हारो उद्धार करेगी. 'गंगा'को मतलब समझो. गं-गा. जाको स्वभाव चलते रहवेको हे, अटकवेको नहीं हे. गं=गच्छति. जैसे 'चंचल' जाको चलवेको स्वभाव होय वो चंचल. जाको गमनको स्वभाव होय वो गंगा, वाको स्वभाव जीवन हे, मरण नहीं हे. वाके माथेपे क्यों बल डाल रहे हो. वहां महाप्रभुजीने एक बहोत पतेकी बात कही के **''जो आत्महत्या करे गंगामें वाकु तो सर्पयोनि मिले. पर जो गंगाके भावसु डूबे वाकु दिव्ययोनि मिले.''** वो ही गंगा जो देवयोनि और सर्पयोनि दोनों दे रही हे. **''गंगातीरस्थितो यद्वद् देवतां तत्र पश्यति तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन् ज्ञानी प्रपश्यति, संसारी यस्तु भजते सः दूरस्थो यथा तथा, अपेक्षितजलादीनाम् अभावात् तत्र दुःखभाक्''** (सि.मु.१३-१५) तुमकु यदि गंगापे भक्ति नहीं हे और व्यर्थमें तुम गंगाको सेवन कर रहे हो, तो ये गंगा तुमकु मारवेवाली भी हो सके. जैसे इलेक्ट्रीसिटी कितनी कम्फर्ट प्रोवाइड् कर रही हे, पंखाके रूपमें फ्रिज्के रूपमें लाइट्के रूपमें. पर तुमकु यदि इलेक्ट्रीसिटीको माहात्म्य नहीं पता हे और मूर्खकी तरह हाथ लगायो तो वो ही इलेक्ट्रीसिटी मारवेवाली भी हो सके. अपन् ये सोचें के जो मारवेवालो हे वो जिवावेवालो कैसे हो सके? जो जिवावेवालो हे वो मारवेवालो कैसे हो सके? अरे, जो मारवेवालो हे, वो ही जिवावेवालो हे. जो जिवावेवालो हे वो ही मारवेवालो भी हे. याही लिए मैनें कही हती के जो

पोषक हे वो ही मारे हे, और जो मारे हे, वो ही पोषक भी हे. जब महाप्रभुजीने ये बात कही तब उनके अहंकारकु झटका लग्यो. क्योंके वो मरवेके लिए गये हते. अपन् समझें के उनको अहंकार खंडित हो गयो. खंडित नहीं भयो वो और बढ़ गयो के मेरे जैसो विद्वान, मेरे जैसो धनवान यहां पंडितनूसु हार कैसे गयो. कैसे नॅगेटिव् अहंकार बढ़ गयो! वो ही अहंकार उनकु डूबवेके लिए केह रह्यो हे. वा नॅगेटिव् अहंकारपे महाप्रभुजीने चोट करी के जो अहंकारके वश होयके गंगाजीमें आत्महत्या कर रह्यो हे, वाकु तो सर्पयोनि मिलेगी. जो भक्तिके वश गंगाजीमें डूब रह्यो हे, वाकु दिव्ययोनि मिल सके.

यद्यपि प्रसंग नहीं हे फिर भी एक बात तुमकु बताऊँ के मेरे एक भतीजाने ये विधान कियो के महाप्रभुजीकु महाप्रभुजीके सिद्धान्त पले नहीं यालिए शर्मके मारे वे गंगाजीमें डूब गये. मैं तो या बातकु सुनके वाकी शादीमें भी नहीं गयो. महाप्रभुजी शर्मके मारे गंगाजीमें नहीं डूबे, भक्तिभावसु डूबे हते. उनने गंगामें समाधि ली हे. या तरहसु डूबवेवालेकु तो महाप्रभुजीने टोक्यो हे. यहां स्पष्ट अपन् देख सके हें के महाप्रभुजी अपने अहंकारके कारण गंगाजीमें नहीं डूबे हें. वे भक्तिभाववश गंगाजीमें गये. वा बातकु समझे बिना अंड-बंड बात तुम करो तो वाकु भतीजा कैसे मान्नो, जो महाप्रभुजीको वंशज होके महाप्रभुजीके लिए ऐसे सोचे!!! महाप्रभुजी भी गंगाजीमें ही पधारे. कैसे? भक्तिके विरहतापकी तीव्रतासु गंगाजीमें पधारे. और राणाव्यासकु रोक रहे हें के अहंकारवश कोई गंगाजीमें डूबे वाकु तो सर्पयोनि मिले. कितनो क्लीयर् कन्सॅप्ट् हे! एक न्याय नहीं दे रहे हें के गंगामें सब डूबवेवालेकु सर्पयोनि मिले. महाप्रभुजी ऐसी भी नहीं केह रहे हें के गंगामें डूबवेवाले सबनूको उद्धार ही होयगो. गंगामें तो मछली कछुआ सब मर रहे हें. वे सब गंगाकी भक्तिसु थोड़े ही मर रहे हें? उन सबनूको उद्धार थोड़े ही होयगो? गंगाकी

भक्तिसु जो गंगा तटपे रहे हे वाकु गंगा मुक्ति दे हे. भगवान्‌की भक्तिसु जो भगवत्सेवा कर रह्यो हे वाकु सेवा फलात्मिका होयगी. जो भक्तिसु सेवा नहीं कर रह्यो हे, वाके लिए भगवत्सेवा बाधक होयगी. बाधक ही नहीं नाशक होयगी.

(महाप्रभुके उपदेश अपने अहंकार और ममकार कु रिमोल्ड् करवेवाले)

''भक्त्यभावेतु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः अन्यथाभावम् आपन्नः तस्मात् स्थानात् च नश्यति'' (सि.मु.२०) महाप्रभुजी केह रहे हैं. वाको तो सेवा करवेके कारण नाश होयगो. ये सारे उपदेश महाप्रभुजीके न केवल राणाव्यासके अहंकार और ममकार कु रीमोल्ड् करवेके उपदेश हैं, पर अपने भी हे. वा रीमोल्डेड् अहंकारके कारण अपन् देख सके हैं के जब वो क्षत्राणी सती होवे जा रही हती और वा समय राणाव्यासने माथा हिला दियो, तो एक माथा हिलावेसु सती होवे जाती भयी क्षत्राणीको सत उतर गयो और वाने आके कही के "अब मैं सती नहीं होऊँगी." राणाव्यासकु पूछी के "क्यों तुमने माथा हिलायो?" राणाव्यासने कही के "तुम्हारो पति मर गयो ये तो बहोत दुःखकी बात हे. पर इतनो अच्छो देह तोकु मिल्यो वाकु पतिके पीछे क्यों फूंके हे, भगवत्सेवामें क्यों नहीं लगावे?" वाने कही के "चलो मोकु भगवत्सेवा पधरा दो." राणाव्यासने भगवत्सेवा पधरा दी. दोनों सानुभावतासु सेवा करवे लगे. यद्यपि यहां वार्ताकार या बातपे चुप हे पर यहां थोड़े हल्के रूपमें या समस्याकु उद्धृत कियो हे के राणाव्यासपे सबको सन्देह हतो के वा विधवाके साथ उनको सम्बन्ध हतो. वाकी शिकायत भी भयी हे, वाकी चॅकिंग् भी भयी हे. पर उनको सम्बन्ध हतो के नहीं हतो वो एक दूसरी कथा हे. अपन्‌कु वाके पॉज़िटीव् ॲंगल्पे ध्यान देवेकी आवश्यकता हे. दोनों पति-पत्नी नहीं हते पर दोनों मिल-जुलके ठाकुरजीकी सेवा करते हतें. दोनों मिल-जुलके सेवा करवेके लिए साथ भये हतें.

मैं अलमोड़ाके ऊपर एक खाली एस्टेट्‌में गयो. वहां नवनीतभाई

हते वो ऐसे महापुरुष हते के उनने नक्की कियो हतो के "पच्चीस बरस मैं पढूँगो." पच्चीस बरस तक वो पढ़े भी और अच्छे विद्वान भये. "पचास बरस तक बिज़नेस् करूँगो." खूब पैसा कमायो. "पचास बरस बाद मैं व्यापार बंद करके शांतिसु हिमालयमें जीऊँगो." हिमालयको इतनो एक्सपर्ट के सरकार वाकु पूछती के कौनसो पहाड़ कहां हे, कौनसी नदी कहां हे, इतनो जानकार. जब साठ बरसको भयो तो वाकु लग्यो के अकेले जीवन जीयो नहीं जायगो. तो वहांकी एक पैतालीस बरसकी औरतके साथ वाने ब्याह कियो. सब लोग समझते हते के ब्याह कोई लफड़ासु कियो हे. हिमालयमें रेहनो हे, तो अकेले कैसे रहे? दोनों साथ रहते हतें और मिलके ठाकुरजीकी सेवा करते हतें. तो बातकु समझो के अपनकु पीलिया होवे, यालिए अपनकु पीलो पहले दिखलाई देवे. जरूरी नहीं हे के वो पीलो ही होय. हकीकत कुछ और भी हो सके हे. वो साथ रेह रहे हें पति-पत्नीकी तरह पर ठाकुरजीकी सेवाके लिए साथ रेह रहे हें. साथ रहवेके कारण राणाव्यासकी जो बदनामी भयी वाके कारण राणाव्यासके इन्द्रियजीत होवेके अहंकारपे तो चोट लग ही गयी. वा हद तक महाप्रभुजी ले गये के इन्द्रियजीत होवेके अहंकारकु सीधो ऑपरेट् करके नहीं तुड़वायो. पर अपने आप ऐसो झटका लगवायो के "बड़े इन्द्रियजीत बन रहे हते पर रेह तो विधवाके साथ रहे हो!" आज ये कोई बड़ी समस्या नहीं हे पर वा जमानामें विधवाके साथ रेहनो बहोत बड़ी बेइज्जती हती. वो भी खुदकी जातकी नहीं. बिचारे मां-बाप केह रहे हते के "ज्ञातिकी लड़कीसु विवाह करो ज्ञातिके नियम पालके." पर रेह रहे हें एक निष्कासित क्षत्री औरतके साथ जो के विधवा हे. निष्कासित यालिए क्योंकि क्षत्रीन्में एक कायदा हे के यदि स्त्री सती होवे जा रही हे और कोई कारणवश नहीं भयी, तो वाकु जातिसु बाहर कर दियो जातो हतो. वा औरतके साथ रहवेके कारण उनको इन्द्रियजीत होवेको अहंकार खतम हो गयो पर महाप्रभुजीने प्रोग्राम् ऐसो गढ्यो के दोनों साथ रहके ठाकुरजीकी

सेवा करते हतें. और ठाकुरजी उन दोनोंन्कु सानुभाव जताते हतें. ये महाप्रभुजीकी पॉझिटिव् प्रोसेस् हे, जाकेद्वारा महाप्रभुजीने अहंकार और ममकार कु हेंडल् कियो हे. उनकु ममकार हे, वा विधवाके प्रति. पर या बातको नहीं हे के ये मेरी प्रेमिका हे, या बातकी हे के ये मेरी सेवाकी सहयोगी भी हे. वाकु भी ये ममकार हे के पतिकु तो छोड़ ही दियो हे और याके साथ रेह रही हूं. वाकु या बातको अहंकार नहीं हे के ये अच्छो दिखवेवालो पुरुष हे अथवा इन्द्रियजीत हे. पर या बातको हे के हिल-मिलके अपन्कु भगवत्सेवा करनी हे. उनके जीवनमें अहंता-ममताकु एक विशाल क्षेत्रमें ले जाके छोड्यो हे महाप्रभुजीने.

ये उनको प्रोग्राम् हे. राणाव्यासकी कथा जो अपन् सबकी व्यथा हे, वाके महाप्रभुजीके द्वारा दिये गये समाधान कुछ या ढंगके हें. ये सब महाप्रभुजीकी कृपासु अपन्ने देखे. अब आश्रयके पदको गान करके या सत्रको समापन अपन् यहां करेंगे.

दृढ इन चरनन केरो भरोसो।
श्रीवल्लभनखचन्द्रछटा बिन सब जग मांझ अन्धेरो।।
साधन और नहीं या कलिमें जासों होत निवेरो।
सूर कहा कहे द्विविध आंधरो बिना मोलको चेरो।।

[१३]

पुष्टिसौरभ

(१)

प्रेमरस पान तु मोरना पीछधर
तत्त्वनुं 'हुं'पणुं तुच्छ लागे
दूबळा ढोरनुं कूशके मन चले
चतुरधा मुक्ति तेओ न मांगे. (प्रेम)
प्रेमनी वात परीक्षित पीछ्यो नहीं
शुकजीये समजी रस संताड्यो
ज्ञान वैराग्य करी ग्रन्थ पूरो कर्यो
मुक्तिनो मार्ग सूधी देखाड्यो (प्रेम)
मारीने मुक्ति आपी घणां दैत्यने
ज्ञानी विज्ञानी बहु मुनि रे जोगी
प्रेमनो जोग तो व्रजतणी गोपीका
अवर विरला कोई भक्त भोगी (प्रेम)
प्रेतने मुक्ति तो परम वल्लभ सदा
हेतुना जीव ते हेतु तूटे
जनमोजनम लीलारस गावता
लहाणना वहाण जेम द्वार छूटे (प्रेम)
में ग्रह्यो हाथ गोपीनाथ गरवा तणो
अवर बीजुं कांईये न भावे
'नरसैयो' महामति गाय छे गुण कथि
जती सतिने तो स्वप्ने न आवे (प्रेम)

श्रीनरसी महेता

(वल्लभविज्ञान. सप्टे.१९७१)

(२)

तोमाय आमार प्रभु करे राखि
आमार आमि सेई टुकु थाक बाकि
तोमाय आमि हेरि सकलदिशि
सकल दिये तोमार माझे मिशि
तोमार प्रेम जोगाई दिवा निशि
इच्छा आमार सेई टुकु थाक बाकि
तोमाय आमार प्रभु करे राखि
तोमाय अमि कोथाओ नाहि ढाकि
केवल आमार सेई टुक थाक बाकि
तोमार लीला हबे ए प्राण भरे
ए संसारे रेखेछ ताहि धरे
रइब बांधा तोमार बाहु डोरे
बांधन आमार सेई टुक थाक बाकि
तोमाय आमार प्रभु करे राखि

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

(श्रीवल्लभविज्ञान ऑक्टो.१९७१)

(३)

अय जलवागर निहा अयांशो बदरा
दर फिक्रे बिजुस्तं कि हस्ती तू कुजा
खव्वाहम कि दर आगोश कनारत गीरम
ताचन्द तू दरपरदा नुमाई खुदरा
मशहूर शुदी दिररूबाई हमाजा
बेमिस्ल शुदि दर आशनाई हमाजा
मन आशिके ई तोर तुरा मी बीनम
खुदरा न नुमाई व नुमाई हमाज़ा

'सरमद' अगर उ वफास्त खुद मी आयद
वर आमदनश ख्वास्त खुद मी आयद
बेहुदा चरा दरपए ऊ मी गरदी
अगर उ खुदास्त खुद मी आयद

सूफी सरमद
(श्रीवल्लभविज्ञान मार्च १९७२)

(४)

ना निन्नोळु अन्य बेडुवुदिल्ल
एन्न हृदयकमलदोळ निन्दिरु हरिय्!
नहिं चाहिये अन्य और कुछ हे करुणाकर!
रूप तिहारा निश्चल होवे इस अन्तर पर

शिर निन्न चरणके एरगली
एन्न चक्षु सदा निन्न नोडलि हरिय्!
सदा रहे यह शीश तुम्हारे चरणयुगलपर
नयन निहारे हरपल तुमको हे राधावर!

कर्ण गीतंगळ केळलि निन्न
निर्माल्य नास वाघ्राणि सलि हरिय्!
सुने कान यशगीत तुम्हारे नित्यनिरन्तर
बने गन्धमादक उरहारोंकी निसिवासर

नालिगे निन्न कोन्डाडलि
एन्न करगळेरडु निन्न अर्चिसलि हरिय्!
वाणी गाये गुण तेरे हि मेरे प्रभुवर!
सेवा करते रहे तुम्हारी ये मेरे कर

चरण तीर्थयात्रे माडली
एन्न मन निन्न अनुदिन स्मरिसलि हरिय्!
तीर्थोंमें मैं रहूं विचरता तेरे गिरिधर!
ध्यान धरे मेरा मन अनुदिन तेरा नटवर!

भक्तजनर संग वागलि
पुरन्दर विठ्ठलने इष्टे दयामाड़ो हरिय्!
भक्तसंग दो सदा दासको नाथ पुरन्दर
विठ्ठल होवे कृपा तुम्हारी यह अनुचरपर

मूल : श्रीपुरन्दरदास (माध्वभक्त कवि)
समय : १४८४-१५६४ जन्मस्थल पुरन्दरगढ़ कर्णाटक
अनुगायक : श्रीनन्दकिशोर मित्तल
(श्रीवल्लभविज्ञान. एप्रिल १९७२)

(५)

भेटीलागीं जीवा लागलीसे आस
पाहे रात्रदिवस वाट तुझी
पूर्णिमेचा चन्द्र चकोरा जीवन
तैसे माझे मन वाट पाहे
दिवालीच्या मूळा लेखी आसावली
पाहतसे वाटुली पंढरीची
भूकेलिया बाल अति शोक करि
वाट पाहे परि माउलीची
तुका म्हणे मज लागलीसे भूख
धावूनी श्रीमुख दावी देवा

तुकाराम
(महाराष्ट्रके महान सन्त एवं भक्तकवि)
समय : शके संवत १४९०-१५७१

अनुवाद

मिलनकी लगी जीमें लगी एक आस
देखूं रात ओ दिवस बाट तेरी
पूर्णिमाका चन्द्र चकोरका जीवन
ऐसे हि मेरा भी मन देखे बाट
दिवालीके बुलावेकी बाला करती चाह
मैं भी निहारुं राह पंढरी की
भूखा-प्यासा बालक अति शोक करता
रहे बाट तकता जननीकी
'तुका' कहे मुझको लगी है भूख
दौड़कर श्रीमुख दिखावो देव!

अनुगायक श्रीनन्दकिशोर मित्तल
(श्रीवल्लभविज्ञान मई १९७२)

उद्धरणतालिका

अफलाकांक्षिभि यज्ञो विधिदृष्टो	(भग.गीता १७।११)	२१६
अत: सर्वात्मना शश्वद्	(चतु.४)	८७
अत्याग्रहप्रवेशे	(त.दी.नि.२।२४७)	७६
अन्धन्तम: प्रविशन्ति ये अविद्याम्	(ईश.उप.९)	१६४,१८०
अपरेयम् इतं तु अन्यां	(भग.गीता ७।५)	१०४
अभिसन्धायतु फलं दम्भार्थमपि	(भग.गीता १७।१२)	२१६
अभ्यासाद् रमते यत्र दु:खान्तं	(भग.गीता १८।३६)	२३३
अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्य-साधन	(बा.बो.३)	२३
अहं कृत्स्नस्य जगत: प्रभव:	(भग.गीता ७।६)	६५
अहं भक्तपराधीनो हि अस्वतन्त्र	(भाग.पुरा.९।४।६३)	१३७,१९८
अहं मद्रक्षणभरो मद्रक्षणफलं	(न्यासदशक.१)	१६६
अहं विश्वं भुवनम् अभ्यभवाम	(तैत्ति.उप.३।१०।६)	१४४
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता	(भग.गीता ९।२४)	६५
अहंता-ममता नाशे सर्वथा	(बा.बो.७)	१६५
अहमेव अक्षय: काल:	(भग.गीता १०।३३)	६५
अहम् अन्नम् अहम् अन्नम्!!	(तैत्ति.उप.३।१०।६)	१४४
आकारै: इंगतै: गत्या चेष्टया	(मनुस्मृ.८।२६)	६६
आहार-निद्रा-भय-मैथुनम्	(सुभाषित)	९४
इति श्रीकृष्णदासस्य	(अन्त:.प्र.१०)	१७६
उदयति दिशि यस्यां भानुमान्	(न्या.कु.भू.पृ.६६)	२३७
ऋते ज्ञानाद् न मुक्ति:	( )	२६८
एवं सदा स्म कर्तव्यं	(चतु.२)	८६
कर्म चैव तदर्थीयं 'सद्'इत्येव	(भग.गीता १७।२७)	२८८
कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु	(भग.गीता२।४७)	१५६,१५८
कार्य-कारण-कर्तृत्वे हेतु:	(भग.गीता १३।२०)	२२३,२६२,२८१
किं नो राज्येन गोविन्द! किं	(भग.गीता १।३२-३३)	१४७
किम् आसनं ते गरुडासनाय	(त.दी.नि.मं.प्र)	२२८

कृषि-गोरक्ष्य-वाणिज्यं	(भग.गीता१८।४४)	१७४
कैः मया सह योद्धव्यम्	(भग.गीता१।२२)	१४२
क्रियाशक्तिज्ञानशक्ती संदिह्येते	(ब्र.सू.१।१।२)	२९९
क्रीडार्थम् आत्मनः इदं	(भाग.पुरा.८।२२।२०)	२८८
गंगातीरस्थितो यद्वद् देवतां	(सि.मु.१३-१५)	३१४
गंगात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादि	(सि.र.८)	२४९
गुणदोषदृशिः दोषः गुणस्तु	(भाग.पुरा.११।१९।४५)	३७,३८
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा	(मनु.स्मृ.८।३५०)	१०
गोप्यः कामाद् भयात्	(भाग.पुरा.७।१।३०)	२३९
'चर्षणी' शब्दवाच्यास् ते	(पु.प्र.म.२२)	११४
'न' इति-'न' इति नहि एतस्माद्	(बृह.उप.२।३।६)	२५०
'ॐ' 'तत् 'सद्' इति	(भग.गीता १७।२३)	२४५
चिन्ता कापि न कार्या	(नव.१)	१३२
चिन्ता-सन्तान-हन्तारो यत्पादाम्बुज	(मंग.१)	१३२
जीवाः स्वभावतो दुष्टाः	(बा.बो.१६)	३३,४१,५३,५५
ज्ञानं कर्म च कर्ता च	(भग.गीता १८।१९)	२६१
ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा	(भग.गीता १८।१८)	२५५,२७६
ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात्	(भग.गीता ४।३९)	२२५
डिण्डिस्तु वादितो द्वारि	(पत्रा.३८)	५४
तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशद्	(तैत्ति.उप.२।६।१)	२७५,२७९
तद् आत्मानं स्वयम् अकुरुत	(तैत्ति.उप.२।७।१)	२६६
तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित्	(बा.बो.१९)	३१०
तस्माद् युद्धस्व भारत!	(भग.गीता २।१८)	२३१
तेषाम् अहं समुद्धर्ता	(भग.गीता१२।७)	७१
त्रिदुःखसहनं धैर्यम् आमृतेः	(वि.धै.आ.६)	२१३
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां	(भग.गीता १७।२)	२०१
देवान् भावयतानेन ते देवाः	(भग.गीता ३।११)	२५८
न तद् अस्ति पृथिव्यां वा	(भग.गीता १८।४०)	१७२

न भूमि न तोयं न तेजो	(दशश्लो.१)	१८१
नमो भगवते तस्मै कृष्णाय	(त.दी.नि.१।१)	५३
नहि कश्चित् क्षणमपि जातु	(भग.गीता३।५)	१५१
निर्ममो निरहंकारः	(भग.गीता२।७१)	२४१
पश्वादिभि च अविशेषात्	(ब्र.सू.शां.भा.१।१।१)	२७३
पापमेव आश्रयेद् अस्मान्	(भग.गीता १।३६)	१८५
पुरुषएव इदं सर्वं यद् भूतं	(तैत्ति.आर.३।१३।२)	१४३
पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा विशेषेण	(पु.प्र.म.१-२)	१९३
पुष्टिमार्गे हरेः दास्यं	(वृत्र.चतु.१)	१००
पृथक्त्वेनतु यज्ज्ञानं नानाभाववान्	(भग.गीता १८।२१)	२६२
प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति	(ब्र.सू.३।२।२२)	२५०
ब्रह्म-सम्बन्ध-करणात् सर्वेषां	(सि.र.२-३)	१७९
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्राणां	(भग.गीता १८।४१)	१७२
भक्त्यभावेतु तीरस्थो यथा	(सि.मु.२०)	२२९,३२२
भूमिः आपो अनलो वायुः	(भग.गीता ३।४)	१०४,१५२
मम योनिः महद् ब्रह्म	(भग.गीता १४।३)	१२१,२२२
यच्छृणवतो अपेति अरतिः	(भाग.पुरा.१०।७।२)	२२७
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः	(भग.गीता १७।२९)	२२२,२३१,२४१
'यज्' देवपूजासंगतिकरणदानेषु	(पाणि.धा.१।११५७)	२१५
यतः प्रवृत्तिः भूतानां येन	(भग.गीता १८।४६)	१७४
यत्तु कृत्स्नवद् एकस्मिन्	(भग.गीता १८।२२)	२६३
यत्र तार्किकाः तत्र शाब्दिकाः	(सुभाषित)	९३
यथा-यथा समारोपा जायन्ते	( )	२४५
यथासंख्याम् अनुदेशः समानाम्	(पाणि.सू.१।३।१०)	२४१
यद् अन्नेन अतिरोहति	(तैत्ति.आर.३।१३।२)	१४६
यद् अहंकारम् आश्रित्य	(भग.गीता १८।५९)	१३९,१४८, १५१,१४८
यदि पथि विपथेः वा	(न्या.कु.भू.पृ.६६)	२३८,२३९

यदि माम् अप्रतीकारम्	(भग.गीता १।४६)	१४७
यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः	(चतु.३)	८६
यद्यपि एते न पश्यन्ति	(भग.गीता १।३८)	१४७
यद्वा श्रमावधि यथामति वापि	(आळवन्दारस्तोत्र.११)	१८७
यस्तु विद्याम् अविद्यां च	(ईशा.उप.११)	१७७
यस्मात् क्षरम् अतीतो	(भग.गीता १५।१८)	११६,११७
यस्यै देवतायै यविः	(निरु.८।२२)	२२०
या प्रीतिः अविवेकानां विषयेषु	(विष्णुपुरा.१।२०।१९)	११७
लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे	(नव.६)	८२
वत्स! न वेद्मि किम्	(विद्वन्मण्डन)	२७८
वयम् इह पदविद्यां तर्कम्	(न्या.कु.भू.पृ.६६)	२३६,२३७
वरं वृन्दावने अरण्ये	(न्यायभूषणपृ.५९४)	९७
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या	(भाग.पुरा.९।४।६६)	११८
विद्यां च अविद्यां च यः	(ईशा.उप.११)	१८०
विधिहीनम् असृष्टान्नं मन्त्रहीनम्	(भग.गीता १७।१३)	२१९,२२१
विश्वासः प्रार्थनापूर्वम्	(न्यासदशक.२)	१६७
शमो दमः तपः शौचं क्षान्तिः	(भग.गीता १८।४२)	१७३
शिष्यः ते अहं शाधि	(भग.गीता २।७)	२३४
शौर्यं तेजो धृतिः दाक्ष्यं	(भग.गीता १८।४३)	१७३
श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः	(भग.गीता १८।४७)	१७७,१८५
संकल्पादपि... दर्शनं स्पर्शनं	(नि.ल.१७-२०)	१७४
सकृदेव प्रपन्नाय तव अस्मि	(वा.रामा ६।१८।३३)	२०२
सखेति मत्वा प्रसभं	(भग.गीता ११।१४)	१११
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा	(भग.गीता१७।३)	२०६
समसम्बन्धी विधि यथासंख्यं	(पाणि.सू.वृ.१।३।१०)	२४१
सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो	(चतु.१)	८६
सर्वभूतेषु येन एकं भावम्	(भग.गीता १८।२०)	२६१,२६२
सहजं कर्म कौन्तेय!	(भग.गीता १८।४८)	१७७

सहयुक्ते अप्रधाने तृतीया	(पाणि.सू.२।३।१९)	३०८
साक्षाद् भगवता प्रोक्तम्	(सि.र.१)	२६८
सेवको अहं नच अन्यथा	(अन्त:.प्र.७)	१७६
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य	(भग.गीता १८।४६)	३०३
स्वभावप्रभवै गुणै:	(भग.गीता १८।४१)	१७२
स्वस्मिन्नेव एतन्मार्गीयगुरुत्वं	(त.दी.नि.आ.२।२२८)	१७६
स्वाधिकारानुसारेण मार्गा: त्रेधा फलाय	(त.दी.नि.१।१८)	१६
स्वे-स्वे कर्मण्यभिरत: संसिद्धिं	(भग.गीता१८।४५)	१७४

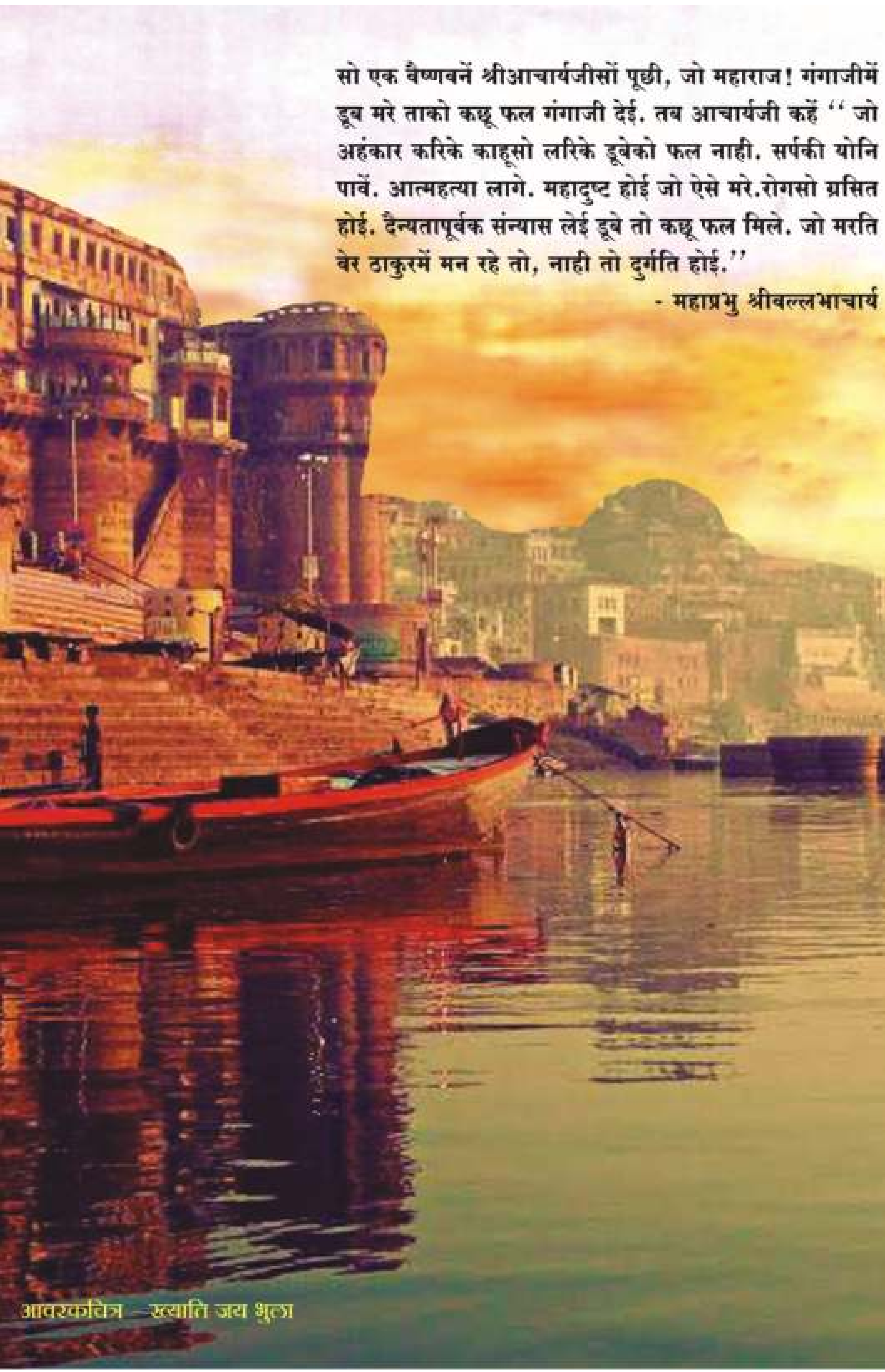

सो एक वैष्णवनें श्रीआचार्यजीसों पूछी, जो महाराज! गंगाजीमें डूब मरे ताको कछू फल गंगाजी देई. तब आचार्यजी कहें '' जो अहंकार करिके काहूसो लरिके डूबेको फल नाही. सर्पकी योनि पावें. आत्महत्या लागे. महादुष्ट होई जो ऐसे मरे.रोगसो ग्रसित होई. दैन्यतापूर्वक संन्यास लेई डूबे तो कछू फल मिले. जो मरति वेर ठाकुरमें मन रहे तो, नाही तो दुर्गति होई.''

- महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य

आवरणचित्र – ख्याति जय भुला